उसे ही सौंप दिये थे। बच्चोंकी देख-रेख, लड़कियोंको क़सीदा सिखाना और रसोई बनवाना इत्यादि सब काम वे सुमतिसे या उसकी देख-रेखमें ही करवाते थे। सुमति भी बड़ी सुशील और विचारशील थी। वह अपना धर्म समझकर सब कार्योंको ठीक-ठीक निभाती। गाँवके स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े सभी सुमतिकी बड़ाई करते थे। कहा करते 'सुमति बड़ी अच्छी लड़की है, सब काम बड़ी होशियारीसे करती है।' कोई कहता, 'रसोई बहुत स्वादिष्ट बनाती है।' कोई कहता, 'इसका क़सीदा तो देखने ही योग्य होता है।'

सुमति भी सबको खुश रखनेका ही यत्न करती थी। वह अपने मानसिक दुःखको हृदयमें छिपाये रखती। जिस समय फुरसत पाती एकान्तमें धरतीपर लेटकर आँचलसे अपना मुँह ढककर रोने लगती। सुमति इस बातका बहुत ध्यान रखती थी कि उसे कोई रोती न देख ले, परन्तु उसकी भर्रायी आँखें छिपाये नहीं छिपतीं। उसे उदास-उदास देखकर बूआ, दादी, भाभी आदि सभीकी आँखोंमें आँसू आ जाते। जब सुमति अपने दुःखसे दूसरोंको दुखी देखती तो सोचने लगती—'ऐसे जीवनसे क्या लाभ, जो अपने दुःखसे दूसरोंको भी दुखी करे? धिक्कार है ऐसे जीवनको! मैं पृथ्वीका भार हो रही हूँ। हाय! इस संसारमें सुख कहाँ है? मुझे तो संसार सूना और दुःखरूप ही जान पड़ता है। इस दुःखभरे जीवनसे क्या लाभ? इस प्रकार जीवित रहनेका क्या प्रयोजन? हे मृत्यु! आ, शीघ्र मुझे अपनी गोदमें सुला ले! मैं एक क्षण भी जीना नहीं चाहती। मैं अब नाममात्रका भोजन करूँगी। रोग

निवेदन

संत विश्वकल्याणके परम आधार हैं, उनकी प्रत्येक चेष्टा स्वाभाविक ही विश्वके कल्याणके लिये होती है। उनकी वाणीसे अमर ज्ञानामृत झरता है, उनके नेत्रोंसे प्रेमकी शीतल सुखद ज्योतिधारा वहती रहती है, उनके मस्तिष्कसे अखिल जगत्का कल्याण प्रसूत होता है, उनके हृदयसे आनन्दका प्रवाह वहता है। जो कोई भी उनके सम्पर्कमें आ जाता है, वही पाप-तापसे मुक्त होकर महात्मा वन जाता है। वे जिस स्थानमें रहते हैं वही स्थान पुण्यतीर्थ वन जाता है, वे जो उपदेश करते हैं वही पावन सत्कर्म शास्त्र वन जाता है, वे जिन कर्मोंको करते हैं, वे ही कर्म आदर्श समझे जाते हैं। संत सभी देशों, सभी धर्मों और सम्प्रदायोंमें होते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि सभी मतोंमें सच्चे संत हुए हैं। किसी देश या कालविशेषसे संतोंका सङ्कोच नहीं किया जा सकता। सभी देशोंमें सभी समय कोई-न-कोई संत रहते हैं और वे छिपे या जाहिरा तौर-पर जगत्का कल्याण करते रहते हैं। ऐसे ही संतोंके ढाई हजार 'अनमोल वोल' इसमें संग्रहीत हैं। ये वोल ऐसे हैं जो दुःख-सागरमें डूबे हुए पापी-से-पापी प्राणीको भी तारनेमें समर्थ हैं।

इसमें प्रायः सभी देशों और जातियोंके संतोंकी वाणीका संग्रह है। अधिकांश संग्रह भाई श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव', एम्० ए०का किया हुआ है; आशा है पाठक-पाठिकागण इससे विशेष लाभ उठावेंगे।

गीताप्रेस, गोरखपुर
भाद्र कृ० १-१९९६ — हनुमानप्रसाद पोद्दार

है। इसलिये बेटा ! देहका मोह छोड़ो। जिस सत्य वस्तुकी सत्ता-से यह जडदेह खाती-पीती, चलती-फिरती नजर आती है उसी सद्वस्तु परम तत्त्वको जानो। जिस तत्त्वके विलग हो जानेपर यह देह मरी कही जाती है उस तत्त्वका कभी नाश नहीं होता। तुम उस परम तत्त्वको नहीं जानती, इसीसे दुखी रहती हो। बेटा ! असलमें न तुम दुःखरूप हो और न यह संसार ही दुःखरूप है। यह तो सब परमात्माके सङ्कल्पसे रचा गया है। वह परमात्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। इसलिये वस्तुतः सब जगह आनन्द ही भरा हुआ है और वही आनन्द तुम्हारा-हमारा सबका असली स्वरूप है।

जिसको तुम 'मैं' कहती हो, वह आत्मा है। वह अविनाशी और आनन्दस्वरूप है। यह देह नाशवान् है और अज्ञानवश इसमें 'मैंपन'का मिथ्या आरोप होनेके कारण जब इन्द्रियोंका विषयोंसे सम्बन्ध होता है तब दुःख-सुखका अनुभव होने लगता है। अपने स्वरूपको न जाननेके कारण यह मन अपने प्रतिकूल विषयकी प्राप्ति-में अपनेको दुखी और अनुकूलकी प्राप्तिमें सुखी मानने लगता है। ये दुःख-सुख अज्ञानमें हैं और आने-जानेवाले हैं। प्रारब्धके कारण हर एक जीवको दुःख-सुख भोगने पड़ते हैं। जो विचारवान् हैं वे न तो दुःखमें दुखी होते और न सुखमें इतराते ही हैं। वे किसी भी हालतमें अपने स्वरूपको भूलते नहीं। वे सदा शान्त रहते हैं। तुम भी अपने आनन्दस्वरूपके चिन्तनका अभ्यास करो और सदा सन्तुष्ट रहकर इन सुख-दुःखरूप द्वन्द्वोंको सहो।

सुमति ! जिससे यह सारा जगत् व्याप्त है उसे तुम अजर-अमर जानो। उस तत्त्वका कोई किसी प्रकार भी नाश नहीं कर

संत-वन्दना

हे पवित्रकीर्ति संतगण ! आकाशमणि सूर्य पृथ्वीको ऊपरसे आलोक प्रदान करता है, किन्तु आपलोग पृथ्वीपर रहकर उसपर ईश्वरीय प्रकाशको प्रसारित करते हैं; अतः हम आपकी वन्दना करते हैं।

भगवान् सविता पृथ्वीको ताप प्रदान करते हैं और आपलोग अपने भीतरी खजानोंमेंसे ज्ञानरूपी अमृत देकर जीवात्माको सुखरूप उष्णता प्रदान करते हैं ! हम जिधर आँख उठाकर देखते हैं, जिस किसी देशमें जाते हैं, हम आपके पावन पादपद्मोंसे आनन्दरूप मकरन्दको निरन्तर झरता हुआ पाते हैं। आपके चरणोंमें हमारे कोटिशः प्रणाम हैं !

तापसन्तप्त संसारको मुक्तिरूप निरतिशय आनन्दका सन्देश सुनानेवालो ! यह पृथ्वी आपकी पावन चरणधूलिके सम्पर्कसे ही हमारे रहनेयोग्य बनी हुई है। मेसोपोटेमिया और अरबके सूखे रेगिस्तानमेंसे यदि मूसा, ईसा और रसूल-जैसे अमृतनिर्झर पैदा न होते तो वहाँकी तप्त वालुकामें झुलसने कौन जाता ? योरपके रणक्षेत्रमें यदि हमें सुकरात, प्लेटो, अरस्तू और संत फ्रांसिस-जैसे महान् आत्माओंके दर्शन न होते तो वहाँके लोगोंको शान्तिका पाठ कौन पढ़ाता ? ब्रह्मज्ञानी लाँत्सो और महात्मा कनफ्यूशसके नामका चीन देश अब भी गौरवके

पवित्र श्रीरामनामके जपमें अपनी मनोवृत्ति जमाओ। तुम्हारा जीवन सुखमय होगा, अवश्यमेव होगा।

जाओ बेटा! अब सो रहो, बहुत रात हो गयी है।'

सुमति उठी और सीधे पूजागृहमें पहुँची। वह विष्णुभगवान्‌की मूर्तिके सामने हाथ जोड़कर बैठ गयी और बड़ी ही करुणाके साथ प्रार्थना करने लगी—

'प्रभो! मैं अनाथ, अशरण, निराधार, असहाय, अबला आपकी शरण हूँ। हे दयालो! हे दीनबन्धो! हे दयानिधे! दया करो, दया करो, मुझे इस दुःखके अथाह समुद्रसे निकालनेवाले केवल आप ही हो। कोई कैसा ही पापी, पतित या नीच क्यों न हो, शरण आ जानेपर आप उसे उसी क्षण दुःखसे छुड़ा देते हो। हे नाथ! मैं आपकी शरण हूँ, मेरी रक्षा करो! रक्षा करो!'

फिर वह रो-रोकर भगवान्‌से पुनः कातर स्वरमें प्रार्थना करने लगी—

'प्रभो! मेरी यह जीवन-नैया जर्जर हो रही है। फिर भी विषयासक्तिके कारण मन विषय-सुखोंके लिये ही ललचा करता है। सुख-भोगकी इन प्रबल कामनाओंको चित्तसे कैसे हटाऊँ नाथ! जैसे भँवरमें पड़ी हुई नैया डूबने लगती है वैसे ही यह लोभ-मोह-रूपी भँवर मुझे डुबाना चाहते हैं। हे प्रभो! इन काम, क्रोध, लोभ, मोहसे मेरी रक्षा कीजिये, मुझे बचाइये। सिवा आपके मेरी पुकार सुननेवाला और कौन है? हे नाथ! मैं अबला आपकी शरण हूँ।'

सुमति रोते-रोते फिर इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—

भगवान ! अपनी मायाका दृश्य हटा देना ।
अपनी छटाका मुझको सुप्रकाश दिखा देना ॥ टेक ॥

अज्ञानसे अँधेरा छाया जो मेरे मनपर ।
अपनी कृपासे भगवन् ! उसे दूर हटा देना ॥ १ ॥

माया यह आपकी है सबको लुभा रही ।
करके कृपा कृपामय ! मुझे इससे बचा लेना ॥ २ ॥

कबतक जगतमें भगवन् ! मैं यों पड़ी रहूँगी ।
अपराध भूलकर सब मुझे पार लगा देना ॥ ३ ॥

॥ श्रीहरिः ॥

संत-वाणी

[प्रेम, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं सदाचारपर प्राचीन संतोंके वचनोंका संग्रह]

१—सच्चिदानन्द प्रभुके अनेक रूप हैं, जिस साधकने हरिके जिस रूपको देखा है वह उनके उसी रूपको जानता है। यह सारे रूप उस एक ही बहुरूपिया हरिके हैं।

२—आँखमिचौनीके खेलमें 'गोल' छू लेनेपर फिर चोर नहीं होना पड़ता, उसी प्रकार ईश्वरको छूनेपर फिर सांसारिक बन्धन नहीं बाँधते।

३—लोहा जब एक बार पारसको छूकर सोना हो जाता है तब चाहे उसे मिट्टीके भीतर रखो या कूड़ेमें फेंक दो वह जहाँ रहेगा सोना

संसार मुझे शून्य जान पड़ता है। हाय! माया बड़ी मोहिनी है। इसने पहले मेरे लिये सुखके अनेक साधन इकट्ठे करके बड़ा मोहजाल बिछा दिया था। मैं नाना प्रकारकी इच्छाएँ करके उनकी पूर्तिकी प्रतीक्षा कर रही थी कि अचानक मेरी आशाकी डोरी कट गयी। मेरा सुनहरा संसार लुट गया। कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? जिधर देखती हूँ अँधेरा-ही-अँधेरा दीखता है। सच मानो बहिन! अब तो मेरा चित्त यही चाहता है कि मैं किसी प्रकार मर जाऊँ।'

इतना सुनकर शान्तिदेवी बोलीं, 'वाह बहिन! खूब कहा! क्या तुमने मायाको कभी देखा है?'

सुमति—'देखा तो कभी नहीं, केवल सुना है कि यह सब मायाका ही पसारा है। क्या आपने मायाको देखा है? कुछ भी हो, जैसे भी हो, मेरे दुःखको अगर दूर कर सकती हो तो करो; नहीं तो, मुझे कोई ऐसी युक्ति बताओ जिससे मैं तुरंत मरकर शान्ति पाऊँ।'

शान्तिदेवी—'मैं तुम्हें मायाका स्वरूप बताऊँगी और जीते-जी मरना भी सिखाऊँगी। अब तुम शोक छोड़कर मनको स्थिर करो और मेरी बात ध्यान देकर शान्तिपूर्वक सुनो।

यह तो तुम जानती ही हो कि इस जगत्‌में जीव अकेला ही आता है। धन-दौलत इत्यादि कुछ भी साथ नहीं लाता और जाता है तब भी खाली ही हाथ जाता है।'

सुमति—'हाँ, यह तो मैं जानती हूँ। एक दिन इसपर पिताजीने मुझे बहुत कुछ समझाया था।'

१२—मनुष्य देखनेमें कोई रूपवान्, कोई कुरूप, कोई साधु, कोई असाधु देख पड़ते हैं परन्तु उन सबके भीतर एक ही ईश्वर विराजते हैं।

१३—दुष्ट मनुष्यमें भी ईश्वरका निवास है परन्तु उनका संग करना उचित नहीं।

१४—साधनावस्थामें ऐसे मनुष्योंसे, जो उपासनासे ठट्ठा करते हैं, धर्म तथा धार्मिकोंकी निन्दा करते हैं, एकदम दूर रहना चाहिये।

१५—मायाके पहचान लेनेपर वह तुरन्त भाग जाती है।

१६—दूधमें मक्खन रहता है पर मथनेसे ही निकलता है। वैसे ही जो ईश्वरको जानना चाहे वह उसका साधन-भजन करे।

१७—एक ज्ञान ज्ञान; बहुत ज्ञान अज्ञान!

१८—ईश्वर साकार, निराकार और क्या-क्या है यह हमलोग नहीं जानते। तुम्हें जो अच्छा लगे उसीमें विश्वास कर उसे पुकारो, तुम उसीके द्वारा उसे पाओगे। मिसरीकी डली चाहे जिस ओरसे, चाहे जिस ढंगसे तोड़कर खाओ, मीठी लगेगी ही।

१९—मन सफेद कपड़ा है, इसे जिस रंगमें डुबाओगे वही रंग चढ़ जायगा।

२०—व्याकुल प्राणसे जो ईश्वरको पुकारते हैं उनको गुरु करनेकी आवश्यकता नहीं है।

२१—सच्चा शिष्य गुरुके किसी बाहरी कामपर लक्ष्य नहीं करता। वह तो केवल गुरुकी आज्ञाको ही सिर नवाकर पालन करता है।

सब जीवोंकी आयु निश्चित होती है। जिसकी आयु जितनी है वह उतने ही दिनतक इस सरायमें रह सकता है।'

इतना कहकर शान्तिदेवीने सुमतिको यह भजन सुनाया—

कोई दममें दम जब यह आता रहेगा।
तो ऐ दिल ! बता, किससे नाता रहेगा॥ टेक॥
जरा ख़्वाबे ग़फ़लतसे बेदार हो तू।
फिर कौन तुझको जगाता रहेगा ?
होवे भलाई तो कर ले मुसाफ़िर।
यहाँ कौन फिर-फिरके आता रहेगा ?
दुनिया सराये सरासर है फ़ानी।
सभी जब गये तो तू ही क्या करेगा ?
जो करता रहेगा सुमिरन हरीका।
तो बेशक 'वह' तुझको जगाता रहेगा॥

'देखो बहिन ! ये संसारके सम्बन्ध यहीं बनते हैं और यहीं छूट भी जाते हैं। यह तो स्वप्नका-सा खेल है। स्वप्न देखनेके बाद जब आँखें खुलती हैं तब मनुष्य जानता है कि मैंने जो देखा था वह सब झूठ ही था। इसी तरह ये संसारके पदार्थ भी झूठे हैं। संसारी वस्तुओंको देख-सुनकर और भोगकर मन उनको अपनानेके लिये लालायित हो जाता है। विषयोंकी यह कामना ही दुःख देती है। जब इच्छाएँ बढ़ जाती हैं तभी मन बात-बातमें सुख-दुःखका अनुभव करके अपनेको सुखी-दुखी मानने लगता है। चित्तमें जैसा संकल्प दृढ़ होता है, वैसा ही संसार दीख पड़ता है। हे बहिन ! जब तुम अपने असली स्वरूपको जान लोगी तब तुम्हें भी दुःख और सुख समान हो जायँगे। अपने स्वरूपका ज्ञान वेदान्तके

रखकर साधना करते रहो, यथासमय अवश्य ही तुम्हारे ऊपर ईश्वरकी कृपा होगी ।

३०—साधु-संगको धर्मका सर्वप्रधान अंग समझना चाहिये ।

३१—मरनेके समय मनमें जैसा भाव होता है दूसरे जन्ममें वैसा ही आकार, वैसा ही शरीर मिलता है; इसीलिये साधनाकी आवश्यकता होती है । क्रमशः अभ्याससे मनमें और कोई भाव नहीं उठता, केवल ईश्वर ही याद आते हैं ।

३२—बालककी नाईं रोना ही साधकका एकमात्र बल है ।

३३—फलके बड़े होनेपर फूल अपने-आप गिर जाता है; इसी प्रकार देवत्वके बढ़नेसे नरत्व नहीं रहता ।

३४—मनुष्य तभीतक धर्मके विषयमें तर्क-वितर्क करता है जबतक उसे धर्मका स्वाद नहीं मिलता । स्वाद मिलनेपर वह चुपचाप साधन करने लगता है ।

३५—साधक जब गद्गद हो पुकारता है तब प्रभु विलम्ब नहीं कर सकते ।

३६—ईश्वरके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त भाव हैं । उसे किसी नामसे, किसी रूपसे और किसी भावसे कोई पुकारे वह सबकी पुकार सुन सकता है, वह सबकी मनःकामना पूरी कर सकता है ।

३७—परमात्मा एक है, उसको अनेक लोग अनेक भावोंसे भजते हैं ।

रहे थे। छोटी-छोटी चिड़ियाँ डालियोंपर चहचहा रही थीं। पास ही एक बड़का पेड़ था। नीचे तोतेका पिंजरा रक्खा था। उस समय मेरे मनमें विचार आया कि क्या यह सब रचना प्रभुकी है? अहा! मैं उस आनन्दमय भगवान्को कब जानूँगी? क्या उपाय करूँ जो मैं प्रभुको जानकर सुखी हो जाऊँ? बस, इसी समय सामनेके वृक्षपर दो छोटी-छोटी काली चिड़ियाँ आकर बैठीं। वे फुदक-फुदक-कर इस प्रकार गाने लगीं—

'प्रभुजी! प्रभुजी! तुम सच्चिदानन्द हो'

तीन-चार बार इस प्रकार बोलीं और उड़ गयीं। चिड़ियोंकी बात सुनकर मेरे मनमें विचार हुआ कि अवश्य ही ये पहले जन्ममें ईश्वर-भक्त रही होंगी। कर्मवश चिड़ियाँ बनी हैं। कर्मभोग समाप्त होनेपर फिर मनुष्यदेह पावेंगी, तब मोक्षपद प्राप्त करेंगी, पर हे प्रभो! मैं इस आनन्दरूपको किस युक्तिसे जानूँ? इतनेमें पिंजरेका तोता बोल उठा—

'मिट्ठू! राम राम कहो'

उस समय तोतेसे 'राम-नाम' सुनकर मेरे चित्तमें इतनी प्रसन्नता हुई कि मैं उसको कह नहीं सकती। मिट्ठूके वचनसे मुझे विश्वास हो गया कि प्रभुका नाम जपनेसे ही मैं उस आनन्द-मय पदको पाऊँगी।

किन्तु बहिन! इतना होनेपर भी, बहुत समझाने-बुझानेपर

४८—ईश्वरमें भक्ति और अटूट निष्ठा करके संसारका सब काम करनेमें जीव संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता ।

४९—जो ईश्वरका चरण-कमल पकड़ लेता है वह संसारसे नहीं डरता ।

५०—ईश्वरके चरण-कमल पकड़कर संसारका काम करो, बन्धनका डर नहीं रहेगा ।

५१—पहले ईश्वर-प्राप्तिका यत्न करो, पीछे जो इच्छा हो कर सकते हो ।

५२—जो ईश्वरपर निर्भर करते हैं उन्हें ईश्वर जैसे चलाते हैं वे वैसे ही चलते हैं, उनकी अपनी कोई चेष्टा नहीं होती ।

५३—गुरु लाखों मिलते हैं पर चेला एक भी नहीं मिलता । उपदेश करनेवाले अनेकों मिलते हैं पर उपदेश पालन करनेवाले विरले ही ।

५४—ईश्वरका प्रकाश सबके हृदयमें समान होनेपर भी वह साधुओंके हृदयमें अधिक प्रकाशित होता है ।

५५—समाधि अवस्थामें मनको उतना ही आनन्द मिलता है जितना जीती मछलीको तालाबमें छोड़ देनेसे ।

५६—ज्ञान पुरुष है, भक्ति स्त्री है । पुरुष मायानारीसे तभी छूट सकता है जब वह परम वैरागी हो । किन्तु भक्तिसे तो माया सहज ही छूटी हुई है ।

५७—काजलकी कोठरीमें कितना भी बचकर रहो, कुछ-न-

नाना प्रकारकी अज्ञानपूर्ण इच्छाएँ ही काले बादल हैं, जिन्होंने सूर्यके समान प्रकाशमान हमारे आत्माको ढक रखा है। जिस समय विचार करके तुम जान लोगी कि मैं शरीर नहीं बल्कि शरीरका स्वामी और शरीरसे अलग हूँ उस समय तुम भी आनन्दमें लीन हो जाओगी। हे बहिन! तुम्हारा स्वरूप आनन्द है। बस, इसीको जानकर तुम आनन्दमें लीन हो जाओ!'

६७—सभी मनुष्य जन्म-जन्मान्तरमें कभी-न-कभी भगवान्‌को देखेंगे ही ।

६८—सूईके छेदमें तागा पहनाना चाहते हो तो उसे पतला करो । मनको ईश्वरमें पिरोना चाहते हो तो दीन-हीन-अकिञ्चन बनो ।

६९—भक्तका हृदय भगवान्‌की बैठक है ।

७०—संसारमें जो जितना सह सकता है वह उतना ही महात्मा है ।

७१—जिसका मनरूप चुंबकयंत्र भगवान्‌के चरणकमलोंकी ओर रहता है उसके डूब जाने या राह भूलनेका डर नहीं ।

७२—साधनकी राहमें कई बार गिरना-उठना होता है फिर समय आ जानेपर साधन ठीक हो जाता है ।

७३—सर्वदा सत्य बोलना चाहिये । कलिकालमें सत्यका आश्रय लेनेके बाद और किसी साधनका काम नहीं । सत्य ही कलिकालकी तपस्या है ।

७४—संसारके यश और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वरके पथमें चलना चाहिये ।

७५—एक महात्माकी कृपासे कितने ही जीवोंका उद्धार हो जाता है ।

७६—साधकके भीतर यदि कुछ भी आसक्ति है तो समस्त साधना व्यर्थ चली जायगी ।

दिखायी नहीं देता। पहले तुम इन शत्रुओंको जीतनेका प्रयत्न करो। भगवान् तुम्हें बल देगा।

सुनो, संसारमें जितने प्राणी हैं, सब सुख ही चाहते हैं। सुख मिल जाय इसलिये अधिक-से-अधिक सुखकी सामग्री इकट्ठी करते हैं। जितना ही बाहरी वस्तुओंमें सुख दीखता है, उतना ही मनुष्यका लालच बढ़ता जाता है और जितना लालच बढ़ता है उतना ही विक्षेप बढ़ता जाता है। विद्यमान सुख उसे सुखी नहीं बनाते, बल्कि उलटे दुखी करते रहते हैं और अन्तमें पहले सुखोंसे भी उसे हाथ धोना पड़ता है। असल बात यह है कि परमात्मा या आत्माको छोड़कर बाहरकी वस्तुओंमें जो सुख प्रतीत हो रहा है वह वास्तवमें उन वस्तुओंमें नहीं; वह तो तुम्हारे आत्मसुखकी ही परछाईं मात्र है। उनमें सुख देखना ही गलती है। इसी ग़लतीके कारण जीव बार-बार दुखी होता है। अच्छा, तुम्हीं बताओ, जैसी दुखदायी दुनिया तुम्हें इस समय जान पड़ती है, क्या विवाहके समय भी वैसी ही जान पड़ती थी?'

सुमति—'नहीं बहिन! उस समय तो जान पड़ता था कि संसार सुखसे परिपूर्ण है, किन्तु मेरा वह सुखका स्वप्न बहुत शीघ्र भंग हो गया।'

शान्तिदेवी—'ठीक है, जबतक मनुष्यकी सांसारिक इच्छाएँ पूरी होती रहती हैं तबतक उसको सुख प्रतीत होता है। किन्तु है यह भूल! वस्तुओंमें सुख है ही नहीं, सुख तो उस इच्छा-पूर्तिके समय स्थिरचित्तमें भासित होनेवाले अपने आत्मामें है।

८६–अहङ्कारकी आड़ होनेसे ईश्वर नहीं देख पड़ते। अहं-बुद्धिके जाते ही सब जंजाल दूर हो जाते हैं।

८७–मैं प्रभुका दास हूँ, मैं उसकी सन्तान हूँ, मैं उसका अंश हूँ—ये सब अहङ्कार अच्छे हैं। ऐसे अभिमानसे भगवान् मिलते हैं।

८८–जिसका (साधन) यहाँ ठीक है उसका वहाँ भी ठीक है और जिसका यहाँ नहीं है उसका वहाँ भी नहीं है।

८९–जिसका जैसा भाव होता है उसको वैसा ही फल मिलता है।

९०–सफेद कपड़ेमें थोड़ी भी स्याहीका दाग पड़नेसे वह दाग बहुत स्पष्ट दीखता है उसी प्रकार पवित्र मनुष्योंका थोड़ा दोष भी अधिक दिखलायी देता है।

९१–जिस घरमें नित्य हरि-संकीर्तन होता है वहाँ कलियुग प्रवेश नहीं कर सकता।

९२–जब भगवान्‌के आश्रित हो रहे हो तो यह न हुआ, वह न हुआ आदि चिन्ताओंमें मत पड़ो।

९३–विश्वासी भक्त आजीवन भगवान्‌का दर्शन न मिलनेपर भी भगवान्‌को नहीं छोड़ता।

९४–संसार कच्चा कुँआ है। इसके किनारेपर खूब सावधानी-से खड़े होना चाहिये। तनिक असावधान होते ही कुएँमें गिर पड़ोगे, तब निकलना कठिन हो जायगा।

प्रार्थना किया करो। वह सर्वान्तर्यामी सब कुछ करनेमें समर्थ है।'

इतना सुनते ही सुमतिकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह रोती हुई कातरस्वरसे इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—

हे मेरे भगवन्! दया-दृष्टिसे टुक,
इधर देखकर अब तो अपनी बना लो।
दयासिन्धु स्वामिन्! दया दान देकर,
इसे नाथ! सत्तामें अपनी मिला लो॥ टेक॥
अनेकों विपद्से उबारी हूँ जैसे,
उसी भाँति संसार-सागरसे तारो।
मुझे मोह-ममतासे जगकी बचा कर,
अहो प्रेमधन! अपनी प्रेमिन बना लो॥ १॥
विषयकी सभी वासनाओंको हर कर,
निकालो हृदयसे यह अज्ञानका तम।
वह ज्योती जरा अपनी जगमग जगाकर,
यह जीवन मेरा नाथ! अपना बना लो॥ २॥
हरे! तत्त्व अपना जताकर इसे सब,
हरो मोह-रजनी महा मोहकारी।
सुनाकर मधुर तान मुरलीकी मोहन!
मुझे नाथ! चरणोंकी चेरी बना लो॥ ३॥
कृपामय! करो अब तो इतनी ही करुणा,
इसे आपके जन भी अपनी ही मानें।
सदा चित्त रमता रहे आपहीमें,
जगज्जालसे नाथ! जल्दी छुड़ा लो॥ ४॥

यह प्रार्थना सुमतिने ऐसे करुणाभरे शब्दोंमें की कि शान्ति-देवीके भी रोम खड़े हो गये। उन्होंने दोनों हाथोंसे सुमतिको पकड़-

१०३—ईश्वरके पानेका उपाय केवल विश्वास है। जिसे विश्वास हो गया, उसका काम बन गया।

१०४—मुँहमें राम बगलमें छूरी मत रखो।

१०५—ईश्वरके नाममें ऐसा विश्वास चाहिये कि मैंने उसका नाम लिया है इससे अब मेरे पाप कहाँ? मेरे अब बन्धन कहाँ?

१०६—एक ईश्वर ही सबका गुरु है।

१०७—जबतक अज्ञान है तभीतक चौरासीका चक्कर है।

१०८—दूसरेको सिखानेके लिये व्याकुल मत हो। जिससे तुम्हें ज्ञान-भक्ति प्राप्त हो, ईश्वरके चरण-कमलमें मन लगे वही उपाय करो।

१०९—परनिन्दा और परचर्चा कभी न करो।

११०—विश्वास तारता है और अहङ्कार डुबाता है।

१११—पहले संसार करके पीछे भगवान्की प्राप्तिकी इच्छा करते हो। ऐसा न करके पहले भगवान्को लेकर पीछे संसार करनेकी इच्छा क्यों नहीं करते? इससे बहुत सुख पाओगे।

११२—सात्त्विक साधकमें बाहरी दिखावेका भाव तनिक भी नहीं रहता।

११३—जो मूर्ख वासनाके रहते गेरुआ वस्त्र धारण करता है उसका यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं।

इस विषय-तृष्णाने ही मुझे बहुत दुखी बना रक्खा है। मैं कब इस तृष्णाको जीतकर स्वतन्त्र हो सकूँगी ?'

शान्तिदेवी—'जिस विषयको मनुष्य चाहता है उसके मिलनेपर एक बार तो सुख और शान्ति-सी दिखलायी देती है परन्तु वह ठहरती नहीं; तुरंत ही नष्ट हो जाती है और फिर शान्तिके बजाय तृष्णा और भी बढ़ जाती है। इसलिये भोगोंकी प्राप्तिमें कभी सुख या शान्ति हो ही नहीं सकती। बुद्धिमान् मनुष्यको तो भोगोंकी इच्छासे ही चित्तको हटानेकी कोशिश करनी चाहिये, और कोई रास्ता है नहीं।

बहिन! खूब जान लो, यह मन जिस ओर लग जाता है उसीका रूप बन जाता है। मनुष्य जब क्षण-क्षणमें बदलनेवाली, नाशवान् संसारी चीजोंका चिन्तन करता है तब वैसा ही बनकर अपनेको दुखी-सुखी मानने लगता है और जब यही मन आत्म-चिन्तन करता है तब नित्य अखण्ड आनन्दस्वरूप आत्माकार बनकर सुख-दुःखसे रहित केवल अनिर्वचनीय आनन्दका ही अनुभव करता है। इसलिये तुम अब अपने चित्तको विषय-चिन्तनसे हटाकर केवल आत्मचिन्तनमें लगानेका अभ्यास किया करो। इससे तुम्हारा सारा शोक मिट जायगा और तुम नित्यसुख प्राप्त करोगी।'

सुमति—'क्या ऐसा हो सकता है कि मेरा मन संसारसे उपराम होकर आत्मामें ही स्थिर हो जाय ?'

शान्तिदेवी—'हाँ हाँ! हो तो सकता ही है। जब हमें मनुष्य-जीवन मिला तभी इसकी संकल्प-शक्ति भी मिली थी। अब

१२४–ईश्वर हैं—इस बातका जिसे ठीक बोध हो गया वह फिर सांसारिक मायामें नहीं पड़ता ।

१२५–पुस्तकें हजार पढ़ो, मुखसे हजार श्लोक कहो पर व्याकुल होकर उसमें डुबकी नहीं लगानेसे उसे पा न सकोगे ।

१२६–पहले ईश्वरको प्राप्त करनेकी चेष्टा करो । गुरुवाक्यमें विश्वास करके कुछ कर्म करो । गुरु न हों तो भगवान्‌के पास व्याकुल-प्राणसे प्रार्थना करो । वह कैसे हैं यह उन्हींकी कृपासे माल्रम हो जायगा ।

१२७–सांसारिक पुरुष धन-मान-विषयादि असार वस्तुओंका संग्रह कर सुखकी आशा करते हैं, परन्तु वह सब किसी प्रकार भी सुख नहीं दे सकते ।

१२८–भगवान् जीवको पापमें लिपटा रहने नहीं देता । वह दया कर झट उसका उद्धार कर देता है ।

१२९–भगवान् सबको देखते हैं किन्तु जबतक वे किसीको अपनी इच्छासे दिखायी नहीं देते तबतक कोई उनको देख या पहचान नहीं सकता ।

१३०–पूर्व दिशामें जितना ही चलोगे पश्चिम दिशा उतनी ही दूर होती जायगी । इसी प्रकार धर्मपथपर जितना ही अग्रसर होगे, संसार उतनी ही दूर पीछे छूटता जायगा ।

१३१–कलियुगमें प्रेमपूर्ण ईश्वरभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ तथा सार वस्तु है ।

वह अपने पुरुषार्थसे बड़ा विचारवान् और अत्यन्त सहनशील बन जाता है। हे सुमति! तुम भी सदा भगवान्के स्मरण-भजनद्वारा मनको भगवान्में ही लगाये रखनेका अभ्यास करो और अपने पाप-तापसे रहित शुद्ध रूपको पहचाननेके लिये विचार और जतन किया करो। ऐसा करोगी तो तुम भी पारस बन जाओगी। पुण्यकर्मसे मिले हुए इस दुर्लभ मनुष्य-जीवनको, जो अनमोल रत्न है, दुःख देनेवाली और कल्याणसे हटानेवाली संसारी इच्छाओंमें मत गँवाओ। चेतो! चेतो!! सुमति! समय बीता जाता है। कालको तुम सर्वथा ही भूल बैठी हो। सोचो तो भला, क्या तुम्हें सदा इस संसारमें ही रहना है? क्या यहाँसे कभी जाना नहीं है? आँखें खोलो, अपनेको पहचानो।'

सुमति—'बहिन! जो पैदा हुआ है वह तो अवश्य मरेगा—यह बात तो मेरे मनमें बैठ गयी है।'

शान्तिदेवी—बस, तो फिर संसारको मृत्युके मुखमें पड़ा देखकर यहाँके भोगोंसे चित्तको हटा लो। परमात्माका स्मरण करो। मनको सदा शुद्ध संकल्पोंसे भरनेकी चेष्टा करो। जैसे संकल्प जीवनमें बनाये रखोगी, वैसा ही परिणाम भी देखोगी। देखो, तुम्हें जो यहाँ अन्धे, कोढ़ी, लँगड़े, अपाहिज, गरीब और दीन दीखते हैं उनकी यह दशा उनके अपने ही पहले किये हुए कर्मोंका परिणाम है। यह निश्चित जानो कि हम जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल पाते हैं। दूसरी तरफ़ देखो, ये अमीर, वज़ीर, राजा, साहूकार जो नाना प्रकारके भोग भोग रहे हैं यह भी उन्हींके पूर्व-

१४१—इन कानोंसे तेरा नाम और गुण सुनूँगा। इन पैरोंसे तीर्थोंके ही रास्ते चलूँगा। यह नश्वर देह किस काम आवेगी?

१४२—भगवन्! मुझे ऐसी प्रेमभक्ति दे कि मुँहसे तेरा ही नाम अखण्डरूपसे लेता रहूँ।

१४३—अपनी स्तुति और दूसरोंकी निन्दा, हे गोविन्द! मैं कभी न करूँ। सब प्राणियोंमें हे राम! मैं तुम्हें ही देखूँ और तेरे प्रसादसे ही सन्तुष्ट रहूँ।

१४४—भगवान्का आवाहन किया पर इस आवाहनमें विसर्जनका कुछ काम नहीं। जब चित्त उसीमें लीन होता है तो गाते भी नहीं बनता।

१४५—जो सब देवोंका पिता है उसके चरणोंकी शरण लेते ही सारी माया छूट गयी, सब भेदाभेद नष्ट हो गये। जीव शिवमें लीन होकर मुक्त हो गया।

१४६—वह ज्ञानदीप जलाया जिसमें चिन्ताका कोई काजल नहीं और आनन्दभरित प्रेमसे देवाधिदेव श्रीहरिकी आरती की। सब भेद और विकार उड़ गये।

१४७—भीतर-बाहर, चर-अचरमें सर्वत्र श्रीहरि ही विराज रहे हैं। उन्होंने मेरा मन हर लिया, 'मेरा-तेरा' भाव निकाल दिया।

१४८—योग, तप, कर्म और ज्ञान ये सब भगवान्के लिये हैं। भगवान्के बिना इनका कुछ भी मूल्य नहीं है।

१४९—भगवान्के चरणोंमें संसारको समर्पित करके भक्त

समझकर अबसे तुम संसारके किसी भी विषयका चिन्तन मत किया करो। यह व्यर्थ ही दुःख मोल लेना है। प्रारब्धसे आनेवाले भोगोंको बिना रागके भोगो। ईश्वरार्पणबुद्धिसे सब काम करो। वे कर्म भी ऐसे हों जिनसे दूसरोंका कुछ उपकार हो। ऐसा करनेसे धीरे-धीरे अहंकारका नाश हो जायगा और तुम परम शक्तिको पा सकोगी। देखो, गुरु नानकदेव क्या कहते हैं —

नानक दुखिया सब संसारा। सुखिया सो जो नाम-अधारा॥

जो प्रेम-भक्तिके सहित प्रभुके नामका जप करता है वह सारे दुःखोंसे छूट जाता है। जिस समय मनुष्यके चित्तमें सच्ची भक्ति जाग्रत् हो जाती है उस समय उसके सब काम निष्काम होने लगते हैं और उसे कोई दुःख या उद्वेग नहीं रहता। वह मनुष्य हर एक कामको ईश्वरकी आज्ञा मानकर उसे भगवान्‌की प्रीतिके लिये ही करता है। वह परमात्माको सर्वव्यापक जानता है, इसलिये जीव-मात्रकी सेवाको ईश्वर-सेवा ही मानता है। इस प्रकार ईश्वरको जो सर्वत्र परिपूर्ण देखकर संसारमें सेवा-भावसे कर्म करता है उसका जीवन सुखमय हो जाता है। तुम्हें एक कहानी सुनाती हूँ, मन लगाकर सुनो।

१५७—जो स्थूल है वही सूक्ष्म है, दृश्य है वही अदृश्य है, व्यक्त है वही अव्यक्त है, सगुण है वही निर्गुण है, अन्दर है वही बाहर है।

१५८—भगवान् सर्वत्र हैं पर जो भक्त नहीं हैं, उन्हें नहीं दिखायी देते। जलमें, थलमें, पत्थरमें, कहाँ नहीं हैं? जिधर देखो उधर ही भगवान् हैं, पर अभक्तोंको केवल शून्य दिखायी देता है।

१५९—एकत्वके साथ सृष्टिको देखनेसे दृष्टिमें भगवान् ही भर जाते हैं।

१६०—धन्य हैं सद्गुरु जिन्होंने गोविन्द दिखा दिया।

१६१—संतोंके घर-द्वार, अन्दर-बाहर, कर्ममें, वाणीमें और मनमें भगवद्भक्तिके सिवा और कुछ भी नहीं मिल सकता।

१६२—संतोंके कर्म, ज्ञान और भक्ति हरिमय होते हैं। शान्ति, क्षमा, दया आदि दैवी गुण संतोंके आँगनमें लोटा करते हैं।

१६३—संत-सेवा मुक्तिका द्वार है।

१६४—भगवान् स्वयं संतके घरमें घुसकर अपना दखल जमाते हैं।

१६५—सद्गुरुके सामने वेद मौन हो गये, शास्त्र दीवाने हो गये और वाक् भी बन्द हो गयी। सद्गुरुकी कृपादृष्टि जिसपर पड़ती है उसकी दृष्टिमें सारी सृष्टि श्रीहरिमय हो जाती है।

१६६—धन्य हैं श्रीगुरुदेव जिन्होंने अखण्ड नाम-स्मरण करा दिया।

उसके कई बच्चे तो पहले ही मर चुके थे। एक नन्हा-सा शिशु छोड़कर उसकी स्त्री भी चलती बनी। पहले तो किसनूने सोचा, 'बालकको अपनी बहिनके पास भेज दूँ।' पर इस बालकसे उसे बड़ा मोह हो गया था। स्वयं ही उसे पालने लगा। दिन-रात उसीके काममें लगा रहता।

समय बदलता रहता है। जब बालक युवा अवस्थाको प्राप्त हुआ तो किसनू उसके विवाहकी चिन्तामें लगा और बड़ी खुशीसे विवाहकी तैयारी करने लगा। मनुष्यकी इच्छाएँ तो अनन्त हैं पर उन इच्छाओंका पूरा होना-न-होना अपने हाथकी बात नहीं है। किसनूके भाग्यमें संसारी सुख नहीं लिखा था। अचानक काल भगवान्‌ने लड़केको अपनी गोदमें उठा लिया।

अब तो किसनूके शोककी सीमा न रही। उसके मनमें तो ईश्वरपर बड़ा विश्वास था परन्तु शोकमें व्याकुल होकर वह परमात्माकी निन्दा करने लगा। वह कहता, 'निर्दय है, बड़ा अन्यायी है। हाय! मारना मुझ बूढ़ेको था, मार डाला जवान लड़केको।' रात-दिन रोता। मन्दिरमें जाना भी कम हो गया। कहता, 'मैंने इतने दिन व्रत-उपवास किये पर भगवान्‌ने मेरी एक न सुनी।' एक दिन उसका मित्र मिलने आया, वह भक्त और आत्मज्ञानी था।

किसनू बोला, 'भाई! देखो सर्वनाश हो गया। हाय! अब तो मेरा जीना भी व्यर्थ है। मैं रात-दिन मनाता हूँ, पर मुझे मौत भी नहीं आती।'

१७६–घरमें दीया जलानेसे जैसे झरोखोंमें भी प्रकाश दिखायी देता है वैसे ही मनमें जब भगवान् प्रकट होते हैं तब इन्द्रियोंमें भी भजनानन्द प्रकट होने लगता है ।

१७७–सभी वैभववाले, बड़ी आयुवाले, बड़ी महिमावाले आखिर चले गये मृत्युपंथमें ही । सब चले गये परन्तु एक ही रहे जो स्वरूपाकार हुए–आत्मज्ञानी हुए ।

१७८–जिस वाणीमें हरिकथा-प्रेम है वही वाणी सरस है ।

१७९–प्रेमके बिना श्रुति, स्मृति, ज्ञान, ध्यान, पूजन, श्रवण, कीर्तन सब व्यर्थ है ।

१८०–संतका जीवन और मरण हरिमय होता है, हरिके सिवा और है ही क्या कि हो । फिर मृत्युके समय भी हरिस्मरणके सिवा और क्या हो सकता है ?

१८१–जो चीनीकी मिठास है वही चीनी है । वैसे ही चिदात्मा जो है वही यह लोक है । संसारमें हरिसे भिन्न और कुछ भी नहीं है ।

१८२–जो-जो कुछ सुन्दर दिखायी देता है वह श्रीकृष्णके ही अंशसे है, उससे आँखें ऐसी दीवानी हो गयीं कि भगवान्‌के मयूर-पिच्छमें जा लगीं ।

१८३–जिसने एक बार श्रीकृष्णको देखा उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं । अधिकाधिक उसी रूपको आलिङ्गन करती हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं ।

काम और मोक्ष जो भी चाहो प्राप्त कर सकते हो। यह चारों ही फलोंके देनेवाले हैं। इनका पढ़ना आरम्भ कर दो और सत्सङ्ग किया करो। चित्तको बड़ी शान्ति मिलेगी।'

किसनूने फिर इन ग्रन्थोंका पढ़ना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही कालमें उसे इन ग्रन्थोंसे बड़ा प्रेम हो गया। रातको भी श्रीगीता-जी पढ़ने लगता और विचार करता। जब समय मिलता एकान्तमें बैठकर भगवान्‌का भजन करता और उन्हींमें लवलीन रहकर आनन्द-पूर्वक अपना जीवन बिताने लगा। शुरूमें तो अपने लड़केकी याद करके रोता था, पर अब उसे उसकी याद भी न आती थी। पहले मन बहलानेके लिये इधर-उधर बैठकर मित्रोंके साथ ताश शतरंज भी खेल लेता था। पर अब वह एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोता था। एक दिन उसे पाठ करते-करते गीताजीमें यह श्लोक मिला—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (१८। ६६)

किसनूका मन भगवान्‌की इस प्रेमभरी वाणी और मधुर आश्वासनमें लुभा गया। वह मुग्ध होकर विचारने लगा—'सब धर्मोंको छोड़कर एक मेरी शरण आ जा। मैं तुझे सारे पापोंसे छुड़ा दूँगा। तू सोच मत कर।' अहा! कैसे प्यारे वचन हैं! परमात्मा कैसे दयालु हैं! पापी-अधर्मी कोई भी क्यों न हो, शरण जानेपर प्रभु अपना ही लेते हैं! प्रभु प्राणिमात्रपर दया करते हैं। जाति-पाँतिका विचार नहीं करते। उनकी सबपर समान कृपा है। तब क्या मुझे भी सबसे प्रेम नहीं करना चाहिये?

१९१–सच्चा अनुताप और शुद्ध सात्त्विक वैराग्य यदि न हो तो श्रीकृष्णपद प्राप्त करनेकी आशा करना केवल अज्ञान है ।

१९२–सुनो, मेरा पागल प्रेम ऐसा है कि सुन्दरश्याम श्रीराम ही मेरे अद्वितीय ब्रह्म हैं और कुछ मुझे नहीं मालूम । रामके विना जो ब्रह्मज्ञान है हनुमान्‌जी गरजकर कहते हैं कि उसकी हमें कोई जरूरत नहीं । हमारा ब्रह्म तो राम है ।

१९३–जो मोल लेकर मदिरा पान करता है वह मदिराके आनन्दमें नाचता-गाता है । तब जिसने ब्रह्मानन्द-सेवन किया हो वह कैसे चुपचाप बैठ सकता है ?

१९४–भगवान्‌के चरणोंमें अपरोक्ष स्थिति हो जाय तो वहाँ क्षणार्धमें होनेवाली प्राप्तिके सामने त्रिभुवन-विभव-सम्पत्ति भी भक्तके लिये तृणके समान है ।

१९५–याचना किये विना यदृच्छासे जो कुछ मिले उसे साधक मङ्गलमय प्रभुका महाप्रसाद समझकर सानन्दसे भोग लगावे ।

१९६–दारा, सुत, गृह, प्राण सब भगवान्‌को अर्पण कर देना चाहिये । यह पूर्ण भागवत धर्म है । मुख्यतः इसीका नाम भजन है ।

१९७–साधु-संतोंसे मैत्री करो, सबसे पुराना परिचय (प्रेम) रखो, सबके श्रेष्ठ सखा बनो, सबके साथ समान रहो ।

१९८–भगवान्‌की आचारसहित भक्ति सब योगोंका योगगह्वर, वेदान्तका निजभाण्डार, सकल सिद्धियोंका परम सार है ।

१९९–गृहस्थाश्रममें रहकर भी जिसका चित्त प्रभुके रङ्गमें रँग गया और इस कारण जिसकी गृहासक्ति छूट गयी उसे गृहस्था-

किसनूने कालूको बुलाया, बड़े स्नेहसे कहा—'आओ भैया कालू ! आग ताप लो।'

कालूने धन्यवाद दिया और वह आग तापने लगा। कालूने कहा—'कैसे काम करूँ ? मुझे तो जाड़ा सता रहा है।'

किसनू—'तुम फ़िक्र मत करो। बर्फ मैं हटा दूँगा, तुम हाथ सेंक लो।' कालूने कहा—'क्या तुम किसीका इन्तज़ार कर रहे थे ?'

किसनू—'क्या कहूँ ? कहते लज्जा आती है। रातको मैंने आवाज़ सुनी थी; बाहरसे कोई कह रहा था 'किसनू ! मैं तुझे दर्शन दूँगा।' बाहर जाकर देखा तो वहाँ कोई न था। मुझे विश्वास है, दयालु प्रभु ज़रूर दर्शन देंगे। बस, मैं उन्हींका इन्तज़ार कर रहा था।'

कालू—'यदि तुम्हें भगवान्‌से प्रेम है तो वे अवश्य दर्शन देंगे। अगर तुम मुझे आग न देते तो मैं तो मर ही जाता।'

किसनू—'वाह भाई ! यह बात ही क्या है। इस दूकानको तो तुम अपना घर ही समझो।'

कालू धन्यवाद देकर चला गया। कुछ देरके बाद एक स्त्री आयी। वह एक फटा-चिथड़ा लपेटे थी, गोदमें बच्चा था। दोनों जाड़ेके मारे काँप रहे थे।

किसनूने बड़ी विनयके साथ अपनापन दिखाते हुए कहा—'माँजी ! तुम कौन हो ? इतने जाड़ेमें बाहर क्यों निकली हो ? तुम और बच्चा दोनों ही जाड़ेसे काँप रहे हो। क्या कोई गरम कपड़ा नहीं

२०८—जो धनके लोभमें फँसा हुआ है उसे कल्पान्तमें भी मुक्ति नहीं मिल सकती। जो सर्वदा स्त्री-कामी है उसे परमार्थ या आत्मबोध नहीं मिल सकता।

२०९—जब सूर्यनारायण प्राची दिशामें आते हैं तब तारे अस्त हो जाते हैं। वैसे ही भक्तिके प्रबोधकालमें कामादिकोंकी होली हो जाती है।

२१०—सत्यके समान कोई तप नहीं है, सत्यके समान कोई जप नहीं है। सत्यसे सद्रूप प्राप्त होता है। सत्यसे साधक निष्पाप होते हैं।

२११—वर्णोंमें चाहे कोई सबसे श्रेष्ठ क्यों न हो वह यदि हरिचरणोंसे विमुख है तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो प्रेमसे भगवद्भजन करता है।

२१२—अन्तःशुद्धिका मुख्य साधन हरिकीर्तन है। नामके समान और कोई साधन है नहीं।

२१३—भक्त जहाँ रहता है, वहाँ सभी दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं। वह जहाँ खड़ा होता है वहाँ सुखसे महासुख आकर रहता है।

२१४—अभिमानका सर्वथा त्याग ही त्यागका मुख्य लक्षण है।

२१५—सम्पूर्ण अभिमानको त्यागकर प्रभुकी शरणमें जानेसे तुम जन्म-मरणादिके द्वन्द्वोंसे तर जाओगे।

२१६—जो हृदयस्थ है उसकी शरण लो।

यह मनुष्यमात्रका धर्म है । सुमति ! अब फिर आवाज आयी, बड़ी गम्भीर आकाशवाणी हुई, उस आकाशवाणीको ध्यानसे सुनो—

'हे जीवो ! मैं केवल प्रेम हूँ । प्रेम ही मेरा स्वरूप है । जो लोग संसारमें केवल आत्मभावसे प्रेम करते हैं उन भक्तोंके हृदयमें मेरा निवास समझो । मैं उनके शुद्ध हृदयमें निवास करता हूँ ।

'वैरभावको बिलकुल छोड़कर, परहितके लिये ही सब काम करो । इस प्रकार काम करनेसे चित्तमें बड़ी प्रसन्नता होगी । उस समय जिस विलक्षण आनन्दका अनुभव होगा, वह आनन्द परमात्माका है । अरे जीवो ! किसीसे किसी प्रकार लड़ाई-झगड़ा मत ठानो । पति-पत्नी, भाई-भाई, बहिन-बहिन और साथी-सम्बन्धी सब प्रेमपूर्वक रहो । निराकार निर्गुणको पिता और साकार सगुणको माता मानो । एक ही माता-पिताकी सन्तान हो । इसलिये सबसे प्रेम करो, सबमें प्रेम करो । जिसकी ऐसी उत्तम प्रेममयी गृहस्थी हो उसे तुम मेरा निवासस्थान समझो । जो किसीको ऊँच-नीच नहीं समझते, तन-मन-धनसे सब प्राणियोंकी सेवा करते हैं, उन लोगोंमें तुम मेरा निवास समझो ।

'अरे जीवो ! तुम सच मानो, जहाँ प्रेम है वहीं मैं हूँ । जहाँ करुणा है वहीं मैं हूँ, जहाँ मैत्री है वहीं मैं हूँ । चेतन और जडमें मैं हूँ । पुरुष और प्रकृति मैं हूँ । जलचर, थलचर, नभचर सभीमें मैं व्यापक हूँ । पहाड़, सागर, वृक्ष और पत्थरमें मैं हूँ । यहाँतक कि सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि भी मेरी ही सत्तासे सत्तावान् हैं । मैं उन सबमें व्यापक हूँ । जगत् विष्णुमय है । अतः तुम द्वेष छोड़कर सबमें प्रेम करो, प्रेम करो, प्रेम करो !'

२२७—भक्तके प्रत्येक शब्दसे प्रभुकी ही वार्ता उठती है और श्रोता सुनकर तल्लीन हो जाते हैं।

२२८—चारों मुक्ति मिलकर भक्तके घर पानी भरती हैं और श्रीके साथ श्रीहरि भी उसकी सेवामें रहते हैं—औरोंकी बात ही क्या है ?

२२९—भक्त भगवान्‌की आत्मा है, वह भगवान्‌का जीवन है, प्राण है।

२३०—प्रभु पूर्णतः भक्तके अन्दर हैं और भक्त पूर्णतः भगवान्‌के अन्दर है।

२३१—साधनोंमें मुख्य साधन श्रीहरिकी भक्ति ही है। भक्तिमें भी नामकीर्तन विशेष है। नामसे चित्त-शुद्धि होती है—साधकोंको स्वरूप-स्थिति प्राप्त होती है।

२३२—नाम जैसा और कोई साधन नहीं है। नामसे भव-बंधन कट जाते हैं।

२३३—मनने सबको बाँध रखा है। मनको बाँधना आसान नहीं। मनने देवताओंको पस्त कर डाला। वह इन्द्रियोंको क्या समझता है ?

२३४—मनकी मार बड़ी जबरदस्त है। मनके सामने कौन ठहर सकता है ?

२३५—हीरेसे हीरा काटा जाता है वैसे ही मनसे मन

दिखायी देगा ? सारा भेदभ्रम मिट जायगा और चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द दृष्टिगोचर होगा ।'

इतनेमें एक दासी आयी और उसने सुमतिसे कहा—'बीबी-जी ! दूध कितना लेना है ?'

सुमतिने कहा—'दो सेर ले लो ।'

दासी—'आज बड़े बाबूके यहाँका निमन्त्रण है, आप सब वहाँ जायँगी ?'

सुमति—'अरे मैं तो भूल ही गयी थी । अच्छा एक सेर ले लो ।' इतना सुनकर दासी चली गयी । फिर रसोइया आया और बोला—'बीबीजी ! रसोई क्या बनेगी ?'

सुमति—'भाई ! आज किसी औरसे पूछ लो, हमें छोड़ो ।'

शान्तिदेवीने कहा, 'अब तुम अपना गृहकार्य करो, मैं भी अपने घर जाती हूँ । आज तो ऐसी बातोंमें बैठी कि घरको बिलकुल ही भूल गयी । घरपर सब काम करना है । सुमति ! तुम भी उठो और काम करो, मैं भी जाती हूँ ।'

सुमति—'अभी तो आप ऐसी उत्तम चर्चा कर रही थीं, अब फिर वही जंजाल सामने आ गया ।'

शान्तिदेवी—'इन कामोंसे घबराओ मत, इन्हें जंजाल मत मानो । गीताके इस वचनको याद रक्खो । देखो, भगवान् कहते हैं—

'हे अर्जुन ! तू इन्द्रियोंके अधीन न होकर मन और शरीरको वशमें करके भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये अपना कर्तव्यकर्म कर ।

श्रीहरिचरणोंमें भक्ति हो, भजनमें अनन्य प्रीति हो, उसके स्वयं श्रीहरि ही आज्ञाकारक हैं।

२४४–शिश्नोदरभोगमें ही जो आसक्त हैं, स्वधर्मत्यागमें जो अधर्मरत हैं, ऐसे विषयासक्तोंको असाधु समझो। उनका संग मत करो। कर्मणा, वाचा, मनसा उनकी सोहबत त्याग दो।

२४५–जो बड़ा भारी विरक्त बनता है पर हृदयमें अधर्मकामरत रहता है, कामवश द्वेष करता है वह भी निश्चित दुःसङ्ग है।

२४६–जो बड़ा सात्त्विक बनता है पर हृदयमें सन्तोंके दोष देखता है वह अतिदुष्ट दुःसङ्ग है।

२४७–पर सबसे मुख्य दुःसङ्ग अपना ही काम है, अपनी ही सकामता है। इसे समूल त्याग देनेसे ही दुःसङ्गता त्यागी जाती है। उस काम-कल्पनाको जो नर त्यागता है उसके लिये संसार सुखरूप होता है।

२४८–उस काम-कल्पनाको त्यागनेका मुख्य साधन केवल सत्संग है। सन्तोंके श्रीचरणोंको वन्दन करनेसे काम मारा जाता है।

२४९–सत्संगके बिना जो साधन है वह साधकोंको बाँधनेवाला कठिन बन्धन है। सत्संगके बिना जो त्याग है वह केवल पाखण्ड है।

२५०–संतोंकी मामूली बातें महान् उपदेश होती हैं। चित्तमें पड़ी हुई गाँठें उनके शब्दमात्रसे छिद जाती हैं। इसलिये

चित चेतनमय होय मम, चञ्चलता मिट जाय।
प्रभु ! अपने निजरूपमें, लीजै मोहि मिलाय॥

प्रेम-अमीरसको मधुर, करूँ पान दिन रैन।
पतितउधारन हो हरे ! कीजै करुना-नैन॥

अन्तर निर्मल कीजिये, हे करुनाकर राम।
प्रभु ! तव शीतल छाँह वसि, करूँ सदा विसराम॥

मगन रहूँ दिन-रात मैं, पी नामामृत सार।
सदा श्रवण करती रहूँ, राम नाम सुखसार॥

मेघनाद, सुमृदंग ध्वनि, ढप, सारँगी सितार।
बसी रहे मम श्रवणमें, वीणाकी झंकार॥

शिव सनकादिक सकल सुर, करें जासु गुणगान।
सो निजपद दिखराय प्रभु, हरहु मोर अज्ञान॥

मो मन-मन्दिरमें जगे, ज्ञानदीप भगवान।
निरखूँ आत्मस्वरूप निज, होय भेद भ्रम हान॥

मैं-तू, मम-तव दूर हो, ऊँच-नीच न लखाय।
'मैत्री' करुणा प्रेम सव, चितमें देहु बसाय॥

ज्ञान भक्ति वरदानमें, माँगूँ बारंबार।
और नहीं कछु चाहिये, करहु नाथ स्वीकार॥
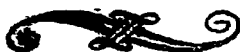
२५७—नामका अखण्ड प्रेम-प्रवाह चला है । राम-कृष्ण नारायण-नाम अखण्ड जीवन है, कहींसे भी खण्डित होनेवाला नहीं ।

२५८—वह कुल पवित्र है, वह देश पावन है जहाँ हरिके दास जन्म लेते हैं ।

२५९—बाल-बच्चोंके लिये जमीन-जायदाद रख जानेवाले माँ-बाप क्या कम हैं ? दुर्लभ हैं वे ही जो अपनी सन्ततिके लिये भगवद्भक्तिकी सम्पत्ति छोड़ जाते हैं ।

२६०—भगवान्‌की यह पहचान है कि जिसके घर आते हैं उसको घोर विपत्तिमें भी सुख-सौभाग्य दिखायी देता है ।

२६१—मातासे बच्चेको यह नहीं कहना पड़ता कि तुम मुझे सँभालो । माता तो स्वभावसे ही उसे अपनी छातीसे लगाये रहती है । इसलिये मैं भी सोच-विचार क्यों करूँ ? जिसके सिर जो भार है वही सँभाले ।

२६२—बिना माँगे ही माँ बच्चेको खिलाती है और बच्चा जितना भी खाय खिलानेसे माता कभी नहीं अघाती । खेल खेलनेमें बच्चा भूला रहे तो भी माता उसे नहीं भुलाती, बरबस पकड़कर उसे छातीसे चिपटा लेती और स्तनपान कराती है । बच्चेको कोई पीड़ा हो तो माता भाड़की लाईके समान विकल हो उठती है ।

२६३—प्रभुका स्नेह माताके स्नेहसे भी बढ़कर है फिर सोच-विचार क्यों करूँ ? जिसके सिर जो भार है वही जाने ।

शान्तिदेवी—'तुम मुझे वहाँकी बातें तो सुनाओ।'

सुमति—'जिस समय मैं वहाँ पहुँची तब उपस्थित सज्जनोंमें धर्मपर ही बातचीत हो रही थी। उनमेंसे एकने कहा, 'अजी! इस धर्मने तो हिन्दोस्तानको तबाह कर दिया!' दूसरे साहब बोले, 'औरतें तो समझने लगीं हम सत्सङ्गमें जरूर जायँगी। हमारा यही धर्म है। वहाँ नयी-नयी बातें सुनकर आती हैं; फिर घरमें आकर उपदेश करने लगती हैं—'झूठ नहीं बोलना चाहिये, किसीको सताना नहीं चाहिये' आदि-आदि। भला, उनकी बात मानें तो दुनियामें काम कैसे चले? अजब नाकमें दम कर रक्खा है।' तीसरे महाशय बोले, 'अजी, सुनिये तो मेरी एक भाभी हैं। मैं उनका हाल आपको क्या सुनाऊँ? उनकी लीला और धर्म निराले ही हैं। वे नहाकर धोये हुए कपड़े पहन लेती हैं, और कुछ नहीं पहिनतीं एक कुशासन बिछाकर उसपर बैठ जाती हैं, फिर ठाकुरजीको नहलाती, धुलाती, खिलाती और न जाने क्या-क्या करती हैं? जरा-सा कोई छू ले, तो, कुछ न पूछिये! उनको फिरसे नहाकर साड़ी बदलनी पड़ती है। अरे भाई! हमारे देशको तो इस पूजा और धर्मने सत्यानाशमें मिला दिया।'

सुमतिने फिर कहा—'बहिन! क्या बताऊँ एक पुलिसके अफ़सरने तो ऐसी बात कही कि उसे तो सुनकर मेरा जी घबरा गया। मैं उसे कह नहीं सकती! उसके बाद एक सज्जन बोल उठे, 'भाई साहब! माफ़ करना, मैं भी कुछ कहना चाहता हूँ। मेरी बातको ध्यान देकर सुनना। भाइयो! सच्ची बात तो यह है कि

महादुःखोंके बीचमें घूमनेवाले इस संसारमें जो भी आया वह दुःखोंका मेहमान हुआ ।

२७०–संसार दुःखरूप है, यही तो शास्त्रका सिद्धान्त है और यही जीवमात्रका अन्तिम अनुभव है ।

२७१–भगवत्संकल्पके अनुसार ही सृष्टिके सब व्यापार हुआ करते हैं । सामान्य जीव सांसारिक दुःखोंकी चक्कीमें पीस दिये जाते हैं पर वे ही दुःख भाग्यवान् पुरुषोंके उद्धारका कारण बनते हैं ।

२७२–सच्चा प्रेम कभी मरता नहीं, काल भी उसे मार नहीं सकता ।

२७३–प्रेम तो निष्काम–निर्विषय ही होता है और उसका एकमात्र भाजन परमात्मा है । ऐसा प्रेम भक्तोंके ही भाग्यमें होता है ।

२७४–भक्तोंमें सचाई होती है । वैराग्यके अञ्जनसे जब आँखें खुल जाती हैं तब नश्वर संसारके भेद-भावोंमें बँटा हुआ प्रेम वे निग्रहसे बटोरकर एक-एक करके एक परमात्माको ही अर्पण कर देते हैं । प्रेमामृतकी धारा भगवान्के सम्मुख प्रवाहित हो चलती है ।

२७५–सबके परम सुहृद् प्रभु जो कुछ करते हैं उसीमें हमारा परम हित है ।

२७६–भगवान् भक्तको गृहप्रपञ्च करने ही नहीं देते । सब झंझटोंसे अलग रखते हैं ।

२७७–बहुत मारा-मारा फिरा । लुट गया । तड़पते ही दिन बीत रहे हैं । हे दीनानाथ ! संसारमें अपना बिरद रखो ।

इसके बाद फिर कोई कुछ न बोला। मैं इन बातोंको बड़े ध्यानसे सुनती रही। अब आप बताइये धर्म क्या है ?"

शान्तिदेवी—"प्यारी सुमति ! धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म और गहन है। परन्तु मैं तुम्हें अपनी बुद्धिके अनुसार वे साधारण धर्म सुनाऊँगी जिन्हें हम गृहस्थियोंको अवश्य पालना चाहिये। इस धर्म-पर मैं तुम्हें एक पुरानी कथा सुनाती हूँ—

ब्राह्मण और व्याध

एक कौशिक नामका ब्राह्मण था। वह द्विजश्रेष्ठ नित्य वेदोंका पाठ करनेवाला था। तप ही उसका धन था और वह सदा धर्ममें ही लगा रहता था। वह श्रेष्ठ ब्राह्मण उपनिषद् एवं व्याकरण आदि अङ्गोंके सहित वेदोंका पाठ करता था। जिस वृक्षके नीचे वह रोज तप किया करता था उसी वृक्षपर बैठे हुए एक पक्षीने एक दिन उसके ऊपर बीट कर दी। बीटके गिरते ही ब्राह्मणको बड़ा क्रोध आया। उसने गुस्सेमें आकर पक्षीकी ओर देखा तो वह तुरंत तड़फड़ाकर पृथ्वी-पर आ गिरा। अपने सामने पक्षीको पड़ा देख उसे बड़ा ही दुःख हुआ और वह पछताने तथा अपनेको धिक्कारने लगा। 'क्रोधमें आकर मैंने गरीब पक्षीको बिना विचारे भस्म कर दिया। बेचारे पक्षीके लिये तो विचार न होनेके कारण सब कुछ समान ही है। इसीसे वह चाहे जहाँ भोजन कर लेता है और चाहे जहाँ बीट कर देता है। इसमें उसका अपराध ही क्या है ? परन्तु मैं तो मनुष्य था। मैंने यह बड़ा अनर्थ किया जो एक निरपराध पक्षीको मार डाला। मोह और क्रोधके वश ही यह अनर्थ हो गया।' इस तरह वह मनमें अनेक प्रकारसे

जान लिया तहाँ वैराग्य हाथ धोकर पीछे पड़ जाता है। ऐसा दृढ़तर वैराग्य उत्पन्न होना ही तो भगवान्‌की दया है।

२८९–वैराग्य खेल नहीं, भगवान्‌की दया हो तो ही उसका लाभ हो।

२९०–भगवान् जिसपर अनुग्रह करना चाहते हैं उसे वे पहले वैराग्य-दान करते हैं।

२९१–चित्तसे जबतक प्रपञ्च बिल्कुल उतर नहीं जाता तबतक परमार्थ नहीं सूझता, नहीं भाता, नहीं ठहरता। मनोभूमि जब वैराग्यसे शुद्ध हो जाती है तब उसमें बोया हुआ ज्ञानबीज अङ्कुरित होता है।

२९२–सतत सत्संग, सत्-शास्त्रका अध्ययन, गुरु-कृपा और आत्मारामकी भेंट—यही वह क्रम है जिससे जीव संसारके कोलाहलसे मुक्त होता है।

२९३–प्रारब्धवश जिस जातिमें हम पैदा हुए उसी जातिमें रहकर तथा उसी जातिके कर्म करते हुए प्रेमसे नारायणका भजन करें और तर जायँ इतना ही अपना कर्त्तव्य है।

२९४–भगवान्‌का भजन ही जीवनका सुफल है।

२९५–सुगम मार्गसे चलो और मुखसे राम-कृष्ण-हरि-नाम लेते चलो। वैकुण्ठका यही अच्छा और समीपका रास्ता है।

२९६–जिस संगसे भगवत्प्रेम उदय होता है वही संग संग है, बाकी तो नरकनिवास है।

स्त्री—'हाँ, मैं यह जानती हूँ। परन्तु महाराज ! मैं तो पतिको देवता मानती हूँ; और शास्त्रका यह सिद्धान्त भी है कि पहले देव-पूजन करके फिर अतिथि आदिका सत्कार करना चाहिये।'

ब्राह्मण—'तू पतिको देवता मानती है, सो तो ठीक है। परन्तु पति-पत्नीका सम्बन्ध लोभ, मोह और सांसारिक विषयोंकी आसक्तिके ही कारण होता है। पतिको देवता मानना स्त्रीका धर्म है। पर याद रख ! ब्राह्मण अतिथिका सत्कार पति-सेवासे भी बढ़कर है। तूने ब्राह्मण-सेवामें इतनी देर लगायी है—इससे एक तपस्वी ब्राह्मणका बड़ा अपमान हुआ है। क्या तू नहीं जानती कि ब्राह्मण अग्निके समान तेजस्वी होता है ?'

स्त्री—'हे तपोधन ! कृपाकर क्रोध शान्त कीजिये। मैं जंगलकी चिड़िया नहीं हूँ जो आपके क्रोधसे जलकर भस्म हो जाऊँगी। मैं खूब जानती हूँ ब्राह्मणको जितनी जल्दी क्रोध आता है उतनी ही जल्दी वह शान्त भी हो जाता है। आप मेरे इस अपराधको क्षमा कीजिये। और मेरे योग्य जो सेवा हो वह बतलाइये।'

चिड़ियाके भस्म होनेकी बात उसके मुखसे सुनकर ब्राह्मण देवता बड़े चकित हुए। वे बोले—'देवि ! पहले मुझे यह बता कि तुझे जंगलकी चिड़ियाकी बात कैसे मालूम हुई ?'

स्त्री—'यह सब पति-सेवाका ही प्रभाव है कि मुझे आपके क्रोधसे पक्षीके मरनेका हाल मालूम हो गया।'

ब्राह्मण—'देवि ! इस प्रकार दूरकी बात जान लेना तो बड़े तपका परिणाम है; तूने ऐसा कौन-सा तप किया है, सो मुझे बता ?'

३०६—वाणी ऐसी निकले कि हरिकी मूर्ति और हरिका प्रेम चित्तमें बैठ जाय। वैराग्यके साधन बताने, भक्ति और प्रेमके सिवा अन्य व्यर्थकी बातें कथामें न कहे।

३०७—कीर्तन करते हुए हृदय खोलकर कीर्तन करे, कुछ छिपाकर, चुराकर न रखे। कीर्तन करने खड़े होकर जो कोई अपनी देह चुरावेगा उसके बराबर मूर्ख और कौन हो सकता है?

३०८—स्वाँगसे हृदयस्थ नारायण नहीं ठगे जाते। निर्मल भाव ही साधन-वनका वसन्त है।

३०९—भगवान् भावुकोंके हाथपर दिखायी देते हैं, पर जो बुद्धिमान् अपनेको लगाते हैं वह मर जाते हैं तो भी भगवान्‌का पता नहीं पाते।

३१०—ज्ञानके नेत्र खुलनेसे ग्रन्थ समझमें आता है, उसका रहस्य खुलता है, पर भावके बिना ज्ञान अपना नहीं होता।

३११—भावके नेत्र जहाँ खुले वहीं सारा विश्व कुछ निराला ही दिखायी देने लगता है।

३१२—भगवान्‌से मिलन होनेके लिये भाव ही आवश्यक है।

३१३—चित्त यदि भगवच्चिन्तनमें रँग जाय तो वह चित्त ही चैतन्य हो जाता है, पर चित्त शुद्धभावसे रँग जाय तब।

३१४—जैसा भाव वैसा फल। भगवान्‌के सामने और कोई बल नहीं चलता।

३१५—पत्थरकी ही सीढ़ी और पत्थरकी ही देव-प्रतिमा,

निकल गये हों तो कृपा करके क्षमा करें।' इतना कहकर स्त्री ब्राह्मणको प्रणाम करके भीतर चली गयी।

तब ब्राह्मण 'नारायण हरि' कहता हुआ मिथिलाकी ओर चल दिया। वह रास्तेमें सोचता जाता था कि 'धिक्कार है मेरे अभिमान-को। मैं जंगलमें रहा, भूख-प्यास तथा गर्मी-सर्दीको भी सहा, किन्तु क्रोध और ब्राह्मणपनके अभिमानको न जीत सका। हाय! मैंने इतनी आयु यों ही गँवा दी। धर्मके तत्त्वको न जाना। इस देवीने तो मेरे हृदय-मन्दिरमें उजाला कर दिया। अब देखना है वह धर्म-व्याध क्या कहता है।'

बस, इसी उमंगमें जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता वह मिथिला जा पहुँचा। वहाँ उसने धर्म-व्याधका पता पूछा। और जब पूछते-पूछते उसके पास पहुँचा तो उसने उसे एक दूकानपर मांस बेचते देखा। यह देखकर वह चुपचाप एक वृक्षके नीचे बैठ गया। जब व्याध अपने कामसे निपटकर दूकान बंद करके घर जाने लगा तो उसके पास आया और प्रणाम करके कहने लगा, 'ब्राह्मण देवता! मैं आपका स्वागत करता हूँ। उस गृहदेवीने आपको जिस कामसे मेरे पास भेजा है वह सब मैं जानता हूँ। उस सम्बन्धमें मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपसे निवेदन करूँगा। अभी तो मैं यह सोचता हूँ आप ब्राह्मण हैं, मैं व्याध हूँ। ऐसी अवस्थामें आपका स्वागत किस प्रकार करूँगा।'

व्याधकी बात सुनकर ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—'इस व्याधको मेरे यहाँ आनेके कारणका पता कैसे लग

३२५—निर्लज्ज नामस्मरण ! मेरा सारा धन यही है, और यही सम्पूर्ण साधन है ।

३२६—मेरा चित्त, वित्त, पुण्य, पुरुषार्थ सब कुछ श्रीहरि हैं ।

३२७—मेरे माँ-बाप, भाई-बहन सब हरि ही हैं । हरिको छोड़ कुल-गोत्रसे मुझे क्या काम ? हरि ही मेरे सर्वस्व हैं । उनके सिवा ब्रह्माण्डमें मेरा और कोई नहीं ।

३२८—संसारमें भटकते-भटकते मैं थक गया । 'नाम' से काया शीतल हुई ।

३२९—राम-कृष्ण-हरिका कीर्तन करो, सुजान हो, अजान हो, जो हो, हरिकथा कहो । मैं शपथ करके कहता हूँ कि इससे तर जाओगे ।

३३०—निराश मत हो, यह मत कहो कि हम पतित हैं, हमारा उद्धार क्या होगा ! और कहीं मत देखो, श्रीहरिका गीत गाओ, प्रभुके चरण पकड़ लो, उनके नामका आश्रय न छोड़ो ।

३३१—हरि-कथा सुखकी समाधि है ।

३३२—राम-कृष्ण-हरि, नारायण-—बस, इससे बढ़कर और क्या चाहिये ?

३३३—वासनाका मूल काटे बिना यह कोई न कहे कि मेरा उद्धार हो गया ।

३३४—अमृतका बीज, आत्मतत्त्वका सार, गुह्यका भी गुह्य रहस्य श्रीराम-नाम है ।

जाते हैं। हे ब्राह्मण! सबको अपने धर्मपर दृढ़ रहना चाहिये। कामसे, क्रोधसे, द्वेषसे, घृणासे धर्म नहीं छोड़ना चाहिये। जो लाभ-हानिमें समचित्त रहता है, धनके अभावमें घबराता नहीं है, प्रशंसा करके दूसरोंको धोखा नहीं देता, अपनेको धोखा देनेवालोंको भी धोखा न देकर सबकी भलाईमें लगा रहता है और सबसे प्रेम करता है वही धर्मात्मा है। हे ब्राह्मग! जो लोग यह कहते हैं कि हम धर्म-कर्म कुछ नहीं जानते और धर्म-कर्म करनेवालोंकी दिल्लगी करते हैं वे ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मण नहीं हैं। जो मनुष्य पाप करके यह समझे कि मैं पापी नहीं हूँ, मुझे कौन देखता है तो उसे यह याद रखना चाहिये कि उसके हृदयमें वैठा हुआ ईश्वर और उसके तमाम अंगोंमें तथा सारे विश्वमें स्थित देवता उसे देखते हैं। इसलिये हे ब्राह्मण! आप राग-द्वेषको छोड़कर ऐसे काम किया करें जिनसे दूसरोंका लाभ हो। जो मनुष्य अपने दोषोंको न देखता हुआ दूसरे भले आदमियोंकी बुराई या वदनामी करनेपर तुला रहता है वह एक-न-एक दिन स्वयं ही इस दुनियामें वदनाम होता है। जो मनुष्य सबपर दया करते हैं और जिनका हृदय दयासे भरा है वे सदा सन्तुष्ट होकर उत्तम मार्गपर चलते हुए भगवान्‌को पा जाते हैं। हे ब्राह्मण! अपनी बुद्धि और विद्याके अनुसार मैंने संक्षेपमें आपको यह ज्ञान सुना दिया। जो मनुष्य शिष्टाचारके पवित्र साधनोंका नित्य पालन करते हैं वे सबकुछ पा सकते हैं। पर शिष्टाचारका पालन करना है बड़ा कठिन।'

ब्राह्मण—'वह शिष्टाचार क्या है?'

३४४–एकान्तवास, गङ्गास्नान, देवपूजन, तुलसी-परिक्रमा नियमपूर्वक करते हुए हरिचिन्तनमें समय व्यतीत करे ।

३४५–देह भगवान्‌को अर्पण करे । परमार्थ-लाभ ही महाधन है, यह जानकर भगवान्‌के चरण प्राप्त करे ।

३४६–निन्दा और वाद सर्वथा त्याग दे ।

३४७–कलियुगमें कीर्तन करो, इसीसे नारायण दर्शन देंगे ।

३४८–जिस घरके द्वारपर तुलसीका पेड़ न हो उस घरको श्मशान समझो ।

३४९–परनारी माताके समान जाने । परधन और परनिन्दा तजे । राम-नामका चिन्तन करे । संतवचनोंपर विश्वास रखे । सच बोले, इन्हीं साधनोंसे भगवान् मिलते हैं, और प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं ।

३५०–मस्तक नीचा करो, संतोंके चरणोंमें लगो । औरोंके गुण-दोष न सुनो, न मनमें लाओ । शक्तिभर उपकार भी किये चलो । यह सुलभ उपाय है ।

३५१–जहाँ कोई आशा न रही वहीं भगवान् रहते हैं । आशाको जड़से उखाड़कर फेंक दे ।

३५२–चित्त शुद्ध करके भावसे भगवान्‌का गीत गाओ ।

३५३–लोगोंके लिये, लोग अच्छा कहें इसलिये परमार्थ करना चाहते हो तो मत करो । भगवान्‌को चाहते हो तो भगवान्‌को भजो ।

और उत्तम गतिको प्राप्त करता है। इस प्रकार वह धर्मात्मा होता है। धर्मात्मा होनेसे उसका चित्त प्रसन्न रहता है और अपने मित्र-जनोंको सन्तुष्ट करता हुआ वह इस लोक तथा परलोक दोनोंमें परम आनन्दको प्राप्त होता है। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श जो पाँच इन्द्रियोंके विषय हैं वे उसके वशमें हो जाते हैं। वह उनके वश नहीं होता। यह धर्मका ही फल मानना चाहिये।

हे ब्राह्मण! मैं इस संसारको नाशवान् मानता हूँ। सारीं वासनाओंका त्याग करनेकी कोशिश करता हूँ। मोक्ष प्राप्त करनेके लिये ऊपर कहे साधनोंमें लगा रहता हूँ। तपसे बढ़कर संसारमें कोई दूसरी वस्तु नहीं है। उस तपकी जड़ शान्ति और इन्द्रिय-दमन है। जिसमें ये दोनों गुण आ जाते हैं वह इनके द्वारा जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

द्विजवर! आपको आश्चर्य हो रहा था कि जंगलमें चिड़ियाका जलना उस स्त्रीको कैसे मालूम हुआ। फिर उससे भी अधिक आश्चर्य तब हुआ जब आपकी मुझसे भेंट हुई। परन्तु ये तो मांमूली बातें हैं। मैं पहले ऊपर कह चुका हूँ--तपसे मनुष्य जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

हे द्विजश्रेष्ठ! इन्द्रियोंके संयम, सत्यपालन और आत्मदान करनेसे मनुष्य अनायास ही परमपदको प्राप्त कर लेता है।'

ब्राह्मण—'हे व्रतशील! इन्द्रियाँ क्या हैं? उनका दमन किस प्रकार करना चाहिये? दमनका फल क्या है? और वह फल

३६२–सच्चा पण्डित वही है जो नित्य हरिको भजता है और यह देखता है कि सब चराचर जगत्‌में श्रीहरि ही रम रहे हैं।

३६३–वेदोंका अर्थ, शास्त्रोंका प्रमेय और पुराणोंका सिद्धान्त एक ही है और वह यही है कि सर्वतोभावसे परमात्माकी शरणमें जाओ और निष्ठापूर्वक उसीका नाम गाओ। सब शास्त्रोंके विचारका अन्तिम निर्धार यही है।

३६४–उस बड़प्पनमें आग लगे जिसमें भगवद्भक्ति नहीं।

३६५–मूलका सिञ्चन करनेसे उसकी तरी समस्त वृक्षमें पहुँचती है। पृथक्‌के फेरमें मत पड़ो। जो सार वस्तु है उसे पकड़े रहो।

३६६–पतिव्रताके लिये जैसे पति ही प्रमाण है वैसे ही हमारे लिये नारायण हैं।

३६७–बीज भूँजकर लाई बना डाली अब जन्म-मरण कहाँ रहा?

३६८–राम हृदयमें हैं पर भ्रान्त जीव बाह्यविषयोंपर लुब्ध होते हैं!

३६९–अपनी कोई स्वतन्त्र इच्छा न रखकर भगवान्‌की इच्छाके अनुकूल हो जाय। माली जलको जिधर ले जाता है जल उधर ही शान्तिके साथ जाता है। वैसे ही तुम बनो।

३७०–अंगारोंकी सेजपर सुखकी नींद? इस दुःखभरे जगत्‌में सुखकी खोज?

कर्म करनेके जो साधन हैं उनको इन्द्रिय कहते हैं। उन्हें असद्-विषयोंसे हटाकर सद्-विषयोंमें लगाना ही उनका निग्रह करना है। और इस निग्रहका फल है परम पदकी प्राप्ति। हे ब्राह्मणदेव! दया परम धर्म है, क्षमा बहुत बड़ा बल है, आत्माका ज्ञान ही परम ज्ञान है और सत्यसे बढ़कर कल्याणका कोई साधन है नहीं। जो अपना सब काम बिना किसी आशाके बन्धनरहित होकर करता है और अपना सब कुछ त्यागरूप यज्ञमें हवन कर देता है वही त्यागी है, वही बुद्धिमान् है।'

इस प्रकार व्याधने बहुतसे धर्म बताकर कहा, 'हे द्विजश्रेष्ठ! अब अमली तौरपर मैं जिस धर्मका आचरण करता हूँ उससे मैंने जो सिद्धि पायी है वह स्वयं चलकर देख लीजिये। उठिये, शीघ्र घरमें अंदर चलकर मेरे माता-पितासे भेंट कीजिये।'

अन्दर जाकर ब्राह्मणने व्याधके माता-पिताको बैठे देखा। वे उजले साफ कपड़े पहने हुए थे। व्याधने झुककर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। तब दोनोंने आशीर्वाद देते हुए कहा—'बेटा! उठो, धर्म तुम्हारी रक्षा करे। हम तुम्हारे विशुद्ध व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हैं। तुम सपूत हो, तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र है। तुमने इष्ट गति, ज्ञान, तप और सद्बुद्धिको प्राप्त किया है। तुम जितेन्द्रिय हो। इस प्रकार मन, वाणी और शरीरसे माता-पिताकी निष्काम सेवा करते देख तुमपर तुम्हारे पितामह और प्रपितामह भी बहुत प्रसन्न हैं। बेटा, परमात्मा तुम्हारी आयु बढ़ावे और तुम सदा सुखी रहो।'

फिर व्याधके पिताने ब्राह्मणसे कहा, 'आप सारी विघ्न-बाधाओं-से रहित होकर यहाँ पधारे हैं न?'

३८०—चौपड़के खेलमें गोटीका मरना और जीना जैसा है ज्ञानीकी दृष्टिमें जीवोंका बन्ध-मोक्ष भी वैसा ही है ।

३८१—मुखमें अखण्ड नारायण-नाम ही मुक्तिके ऊपरकी भक्ति जानो ।

३८२—शरीर न बुरा है, न अच्छा है, इसे जल्दी हरि-भजनमें लगाओ ।

३८३—श्रीरामनामके बिना जो मुख है वह केवल चर्मकुण्ड है । भीतर जो जिह्वा है वह चमड़ेका टुकड़ा है ।

३८४—एक श्रीहरिकी ही महिमा गाया करे, मनुष्यके गीत न गाये ।

३८५—चिन्तनके लिये कोई समय नहीं लगता, उसके लिये कुछ मूल्य नहीं देना पड़ता । सब समय ही 'राम-कृष्ण-हरि-गोविन्द' नाम जिह्वापर बना रहे । यही एक सत्य-सार है—व्युत्पत्तिका भार केवल व्यर्थ है ।

३८६—कथा-कीर्तन करके जो द्रव्य देते या लेते हैं वे दोनों ही भूले हुए हैं ।

३८७—जबतक जीवन है तबतक नाम-स्मरण करे, गीता-भागवत श्रवण करे और हरिहर-मूर्तिका ध्यान करे ।

३८८—कर्माकर्मके फेरमें मत पड़ो । मैं भीतरी बात बतलाता हूँ, सुनो । श्रीरामका नाम अट्टहासके साथ उच्चारो ।

३८९—कामवासनाके अधीन जिसका जीवन होता है उस अधमको देखनेसे भी असगुन होता है ।

जल्दी अपने घर जाइये और आलस्य तथा लज्जा छोड़कर माता-पिताको देवता समझकर उनकी सेवा कीजिये । इससे बढ़कर आपके लिये दूसरा धर्म नहीं है ।'

इतना सुनकर ब्राह्मणने कहा, 'अहोभाग्य ! जो मैं यहाँ आया । आप-जैसे धर्मके बतानेवाले लोग संसारमें दुर्लभ हैं । इस प्रकार धर्मका उपदेश करनेवाले हजारोंमें कोई एक होंगे । आपसे धर्मोपदेश सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है । आपने मुझे नरकसे बचा लिया । अब मैं अपने माता-पिताकी सेवा करूँगा ।'

शान्तिदेवीसे यह सुन्दर इतिहास सुनकर सुमतिने कहा, 'आपके मुखसे धर्मकी महिमाको सुनकर आश्चर्य होता है ।'

शान्तिदेवी—'देखो सुमति ! संसारी धर्मको ठीक निभानेसे कैसी सहज रीतिसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और अन्तः-करणकी शुद्धिसे हम कैसी सुगमतासे परमार्थपथपर आगे बढ़ जाते हैं । लोक और परलोक दोनों ही सुखरूप हो जाते हैं । जो अपने धर्मपर तत्पर रहता है वह अज्ञान और अहंकारके अँधेरेसे दूर होकर प्रकाशमें पहुँच जाता है और स्वयं भी दूसरोंको प्रकाशमें ले जाने-वाला बन जाता है । हे बहिन ! धर्मके कारण ही मन, चित्त, बुद्धि, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें प्रकाश हो जाता है । जो धर्मको अपना साथी बनाता है उसे यह साथी परम आनन्दकी प्राप्ति सहजहीमें करा देता है । धर्मात्मा पुरुषोंकी बुद्धि, उनका अन्तःकरण विशुद्ध, निर्मल, पवित्र, प्रकाशमय और बलवान् होता है । धर्मात्मा पुरुषके काम दुनियामें प्रायः ठीक होते हैं । इससे उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है और साथियोंको भी प्रसन्न रखता है । धर्मात्मामें भूल-भ्रम

रहना भी न जानता हो तो भी उसका लालन-पालन तो करना ही होगा। वैसा ही मैं भी एक पतित हूँ पर आपका मुद्राङ्कित हूँ।

३९९—संतका लक्षण क्या है? प्राणिमात्रपर दया।

४००—भगवान् भक्तिके उपकार मानते हैं, भक्तके ऋणी हो जाते हैं।

४०१—हरिभक्तोंकी कोई निन्दा न करे, गोविन्द उसे सह नहीं सकते। भक्तोंके लिये भगवान्‌का हृदय इतना कोमल होता है कि वह अपनी निन्दा सह लेते हैं परन्तु भक्तकी निन्दा नहीं सह सकते।

४०२—भक्तके पुकारनेकी देर है, भगवान्‌के पधारनेकी नहीं। इसलिये रे मन! जल्दी कर!

४०३—उठते-बैठते भगवान्‌को पुकार। पुकार सुननेपर भगवान्‌से फिर नहीं रहा जाता।

४०४—भगवान् भक्तके आगे-पीछे उसे सँभाले रहते हैं, उसपर जो कोई आघात होते हैं उनका निवारण करते रहते हैं, उसके योगक्षेमका सारा भार स्वयं वहन करते हैं और हाथ पकड़कर उसे रास्ता दिखाते हैं।

४०५—भगवान्‌ने जिन्हें अङ्गीकार किया वे, जो निन्द्य भी थे वन्द्य हो गये।

४०६—भगवद्भक्तिके बिना जो जीना है उसमें आग लगे। अन्तःकरणमें यदि हरि-प्रेम नहीं समाया तो कुल, जाति, वर्ण,

धर्मत्यागसे हानि

शान्तिदेवी—'सुमति ! तुम यह तो समझ ही गयी होगी कि संसारमें जो मनुष्य अपने धर्मका ठीक-ठीक पालन करता है उसका अन्त:करण बड़ी सुगमतासे शुद्ध हो जाता है। फिर वह सहज ही परमार्थ-पथपर आगे बढ़ जाता है। जो लोग धर्म-मार्गको छोड़कर मनमाना आचरण करने लगते हैं उनके लिये आत्माका स्वरूप उसी प्रकार छिप जाता है जैसे काले बादल छा जानेसे सूर्यमण्डल। उसमें अहंकारकी मात्रा बढ़ जाती है और इस अहंकाररूप अन्धकारके

४१४—भक्तोंके लिये हे भगवन् ! आपके हृदयमें बड़ी करुणा है, यह बात अब मेरी समझमें आ गयी । हे कोमलहृदय हरि ! आपकी दया असीम है ।

४१५—वह कुल पवित्र है, वह देश पावन है जहाँ हरिके दास जन्म लेते हैं ।

४१६—भगवान् कल्पवृक्ष हैं, चिन्तामणि हैं । चित्त जो-जो चिन्तन करे उसे पूरा करनेवाले हैं ।

४१७—जिसे गुरु-प्रसाद मिला हो, गुरुसेवाके परमानन्दका जिसने भोग किया हो वही उसकी माधुरी जान सकता है ।

४१८—गुरु-प्रसादके विना कोई साधक कभी कृतकार्य नहीं हुआ । श्रीगुरुकी चरण-धूलिमें लोटे विना कोई भी कृतकृत्य नहीं हुआ । श्रीगुरु बोलते-चालते ब्रह्म हैं ।

४१९—सद्गुरु शिष्योंके नेत्रोंमें ज्ञानाञ्जन लगाकर उसे दृष्टि देते हैं । ऐसे सद्गुरु बड़े भावसे जब मिलें तब अत्यन्त नम्रता, विमल सद्भाव और दृढ़ विश्वासके साथ उनकी शरण लो, अपना सम्पूर्ण हृदय उन्हें अर्पण करो, उनके प्रति अपने चित्तमें परम प्रेम धारण करो, उन्हें प्रत्यक्ष परमेश्वर समझो; इससे भक्ति-ज्ञानका अपना समुद्र प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाओगे ।

४२०—महात्मा सिद्धपुरुष ईश्वरके अवतार ही होते हैं । वे केवल स्पर्शसे, एक कृपाकटाक्षसे, केवल संकल्पमात्रसे भी शिष्यको कृतार्थ करते हैं । पर्वतप्राय पापोंका बोझ ढोनेवाले भ्रष्ट जीवको भी अपनी दयासे क्षणार्धमें पुण्यात्मा बना देते हैं ।

सनातन धर्मको छोड़ देता है वह तरह-तरहकी बुराइयोंमें फँसकर स्वयं दुखी रहता है और अपने सम्बन्धियोंको भी दुखी रखता है। सुख-दुःखके कारण तो शुभ और अशुभ कर्म ही हैं। इसलिये जो दुःखसे छूटना चाहे उसे धर्मको ही अपनाना चाहिये। धर्माचरणके लिये शरीर और मनको भी सबल और स्वस्थ रखनेकी आवश्यकता है। यह भी प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है, इसकी ओरसे लापरवाही करना भी एक प्रकारका अधर्म ही है। मानसिक रोग सहनशीलता और स्वधर्मपालनसे नष्ट होते हैं तथा शारीरिक रोगोंकी शान्ति ओषधि और पथ्य-सेवनसे होती है। देखो, सुमति ! तुम जो कहती हो कि रोग होनेपर मैं दवा नहीं खाऊँगी, सरदी लगनेपर गर्म वस्त्र नहीं पहनूँगी और थोड़ा भोजन करूँगी, बस, इसी प्रकार एक दिन घुल-घुलकर मर जाऊँगी—सो यह तो तुम्हारी बड़ी भूल है। मरना-जीना हमारे हाथकी बात नहीं है। वह तो प्रारब्धके अधीन है। वस्त्र न पहनने या ओषधि न लेनेसे तो हानि ही होगी। जब शरीर रोगी रहेगा तो, दूसरोंकी सेवा करना तो दूर रहा, तुम अपना काम भी नहीं कर सकोगी। बस, स्वयं दुखी रहोगी और दूसरोंके लिये भार बन जाओगी। विचारो तो सही कि इससे लाभ क्या है? मनुष्यका शरीर तो दूसरोंकी सेवाके लिये ही मिला है। इससे आगेके लिये तो पुण्य-संस्कार पैदा होता ही है, प्रत्यक्षमें भी अपना और दूसरोंका चित्त प्रसन्न ही रहता है। इसलिये संसारकी सेवाके लिये तुम्हें इस शरीरको स्वस्थ रखना चाहिये। तुम इसे अपना मानकर व्यर्थ ममताकी पोट क्यों बाँधती हो? यह तो संसारकी सेवाके लिये भगवान्‌ने तुम्हें एक साधन दिया है। इसके द्वारा सेवा और स्वधर्म-

दयाकुल गुरु दौड़े आते हैं और आत्मरहस्य बतलाकर उसे कृतार्थ करते हैं।

४२९—सब संत सद्गुरुस्वरूप ही हैं, तथापि सब स्त्रियाँ माताके समान होनेपर भी स्तन-पान करानेवाली माता एक ही होती है। वैसे ही सब संत सद्गुरु समान होनेपर भी स्वानुभवामृत पान करानेवाली ईश्वर नियुक्त सद्गुरु-माता भी एक ही होती है और मुमुक्षु शिशु जब भूखसे व्याकुल होकर रोने लगता है तब सद्गुरु-मातासे एक क्षण रहा नहीं जाता और वह दौड़ी चली आती और शिशुको अमृतपान कराती है।

४३०—गुरु ईश्वर-नियुक्त होते हैं। गुरु-शिष्यका सम्बन्ध अनेक जन्म-जन्मान्तरोंसे चला आता है, और यह गुरु निश्चित समयपर निश्चित शिष्यको कृतार्थ किया करते हैं।

४३१—भूतदया ही संतोंकी पूँजी है।

४३२—चाभीको दाहिने घुमा रहे हो सो बायें घुमाओ तो ताला खुल जायगा। जिधर जा रहे हो उधर पीठ फेर दो, आगे न देख पीछे देखो, बाहरकी ओर आँख लगाये हो सो अन्दरकी ओर लगाओ, प्रवाह छोड़ उद्गमकी ओर मुड़ो तो सचमुच ही तुम मुक्त, सुखी, ब्रह्मस्वरूप होगे।

४३३—कौन किसको बाँधता है, कौन किसको छुड़ाता है? यह सब संकल्पकी माया है।

४३४—मन सरपट भागनेवाला घोड़ा है। वैराग्यकी लगामसे

मुनीम समझो । मालिक अपनी दूकानका सारा काम मुनीमको सौंप देता है । मुनीम खूब परिश्रम और तत्परतासे काम करता है । वह सब प्रकारके जमा-खर्च और लेन-देनका भी व्यवहार करता है । यथाशक्ति लाभकी ही चेष्टा करता है । परन्तु यह सब करते हुए भी उसे भीतरसे नफ़ा-नुकसानकी ओरसे निश्चिन्तता ही रहती है, क्यों-कि वह जानता है कि दूकान तो मालिककी है, मैं तो उसका नौकर हूँ । बस, वह मालिककी प्रसन्नताके लिये सारे काम करते हुए भी बेफ़िक्र रहता है और उस काममें उसकी आसक्ति भी नहीं होती । इस तरह वह अपने धर्मको निभा लेता है । इसी प्रकार तुम भी अपनेको भगवान्की सेविका समझो । इस घरके स्वामी वे ही हैं । तुम्हें उन्होंने इसकी सेवाका काम सौंपा है; इसलिये उनकी प्रसन्नताके लिये ही तुम सारे गृहकार्य करो । परमात्मा ही सबका मालिक है । हमारे धर्माधर्मके कार्यको देखने-जाननेवाला भी वही है । घरके काममें सेवाका भाव लेकर लगो फिर देखोगी कि इसके सुख-दुःख, हानि-लाभमें तुम्हारा चित्त सम रहेगा, शान्त रहेगा । और यदि तुम इनमें समान रही तो भगवान् शीघ्र ही प्रसन्न होकर अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान करा देंगे ।'

सुमति—'बहिन ! यह तो तुमने बड़ी अच्छी बात कही । अब मेरी समझमें यह बात खूब बैठ गयी कि सच्चा सुख भगवान्की प्राप्तिमें है और वह निष्कामभावसे अपने धर्मका पालन करनेसे ही हो सकती है । अब, कृपा करके धर्मके मुख्य अंगोंका वर्णन करो ।'

४४१—मनको प्रसन्न करना उसे विषय-प्रवाहसे खींचकर हरिभजनके लङ्गरमें बाँधना है। मनकी बड़ी रखवाली करनी पड़ती है, यह जहाँ-जहाँ जाय वहाँ-वहाँसे इसे बड़ी सावधानीके साथ खींच लेना पड़ता है।

४४२—नित्य जागकर इस मनको सँभालना पड़ता है। मदोन्मत्त हाथी जैसे अंकुशके विना नहीं सँभलता वैसे ही यह चञ्चल मन अखण्ड सावधान रहे विना ठिकाने नहीं रहता।

४४३—एक क्षणमें पचासों जगह चक्कर लगा आनेवाले इस मनको, भगवान् दया करें तो ही रोक सकते हैं।

४४४—यह मन संसारकी बातें ही सोचता रहता है। हे भगवन्! मेरे-तेरे बीच यही एक बड़ी भारी बाधा है। मैं तो भजन-पूजन करता हूँ पर अन्दर मन संसारका ही ध्यान करता रहता है। हे नारायण! आओ, दौड़ आओ, तुम्हीं इस अन्तरमें आकर भरे रहो।

४४५—इस मनके कारण, हे भगवन्! मैं बहुत ही दुखी हूँ। क्या मनके इन विकारोंको तुम रोक नहीं सकते?

४४६—मेरा मन ऐसा चञ्चल है कि एक घड़ी, एक पल भी स्थिर नहीं रहता। अब हे नारायण! तुम्हीं मेरी सुध लो, मुझ दीनके पास दौड़े आओ।

४४७—इस मनको बहुत रोको, बन्द कर रखो तो यह खीज उठता है, फिर चाहे जिधर भागता है। इसे भजन प्रिय नहीं, श्रवण प्रिय नहीं; विषय देखकर उसी ओर भागता है। सोते-

धर्मके दस लक्षण

आज जब शान्तिदेवी भोजनादिसे निवृत्त होकर सुमतिके घर पहुँचीं तो उन्होंने सुमतिको पहलेहीसे आजकी बात सुननेके लिये तैयार पाया। आज उसने अपनी दो-चार सहेलियोंको भी शान्तिदेवी-का उपदेश सुननेके लिये बुला रक्खा था। शान्तिदेवीके पहुँचनेपर उन्हें सबने आदरसे बिठाया और फिर नयी आयी हुई बहनोंके साथ उनका कुशल-प्रश्न हो चुकनेपर सुमतिने पूछा।

सुमति—'हाँ, तो बहिनजी! कल जो विषय रह गया था आज वही आरम्भ होना चाहिये। आप यह बताइये कि मनुष्य धर्माधर्म-का निर्णय कैसे कर सकता है और धर्मके मुख्य अंग कौन-कौन-से हैं ?'

४५४—मेरे दुर्गुण मुझे जान पड़ते हैं, पर क्या करूँ ? मनपर वस नहीं चलता। अब आप ही हे नारायण! बीचमें आ जाइये, और अपने दयासिन्धु होनेको सत्य कर दिखाइये।

४५५—मैं जैसा भी हूँ तुम्हारा दास हूँ। मेरे माँ-बाप! मुझे उदास न करो।

४५६—क्या करूँ अब इस मनको ? यह विषयकी वासना तो नहीं छोड़ती, मनानेसे भी नहीं मानती। ठीक पतनकी ओर लिये जा रही है। हे हरि! अब दौड़ो, दौड़ो, नहीं तो मैं अब डूबा!

४५७—और कोई नहीं दिखायी देता जो इस मनको रोक रखे। एक घड़ी भी एक स्थानमें नहीं रहता, बन्धन तड़ातड़ तोड़कर भागता है। विषयोंके भँवरभरे भवसागरमें कूदा चाहता है। आशा-तृष्णा-कल्पना-पापिनी मेरा नाश करनेपर तुली हुई है। हे नारायण! तुम अभी देख ही रहे हो ?

४५८—परमार्थपथमें धन, स्त्री और मान—तीन बड़ी खाइयाँ हैं। पहले तो परमार्थके पथमें चलनेवाले पथिक ही बहुत थोड़े होते हैं, फिर जो होते हैं उनमेंसे कुछ तो पहली पैसेकी खाईमें ही खो जाते हैं। इमसे जो बचते हैं वे आगे बढ़ते हैं। इनमेंसे कुछको दूसरी खाई (स्त्रीकी) खा जाती है। इससे भी बचकर जो आगे बढ़े वे तीसरी खाई (मानकी) में खपते हैं। इन तीनों खाइयोंको जो पार कर जाते हैं वे ही भगवत्कृपाके पात्र होते हैं, पर ऐसा पुरुष विरला ही होता है।

धर्मनिष्ठ पुरुषोंमें किसी-न-किसी रूपमें ये पाये ही जाते हैं। जो व्यक्ति, परिवार, समाज, जाति या देश इनकी उपेक्षा करने लगते हैं वे दुःखके गड्ढेमें गिर जाते हैं और वहाँ अशान्तिका साम्राज्य हो जाता है। आजकल लोग अपनेको बुद्धिमान् मानकर धर्म और धर्मात्माओंकी हँसी करते हैं तथा दूसरोंको नुकसान पहुँचाने या नीचा दिखानेमें ही अपनी बहादुरी समझते हैं। इसीसे वे सर्वदा ईर्ष्याकी अग्निमें जला करते हैं। उन्हें एक क्षणको भी शान्ति नहीं मिलती। वे न स्वयं सुखसे रहते हैं न औरोंको सुखी देखना चाहते हैं। अपनेको जो बुद्धिमान् लगाते हैं; जिन्हें अपनी अक्लपर नाज है ऐसे मनुष्योंके घरमें कहीं सुख-शान्ति देखनेमें नहीं आती। जिधर देखो ईर्ष्या-द्वेषकी आग धाँय-धाँय जल रही है। धर्मको छोड़नेके कारण अमीर-से-अमीर भी दुखी तथा परेशान हैं और रात-दिन तबाह हैं।

बहिन ! थोड़ा सोचना चाहिये: भला, इस संसारकी कौन-सी चीज सदा रहनेवाली है? धन, जन, शरीर, सौन्दर्य और शक्ति किसीका भी तो कलका भरोसा नहीं किया जा सकता। जब जीवको अचानक मृत्यु आकर दबोच लेती है तो किसीके किये कुछ भी नहीं होता तथा जिनके साथ हमने अपना अभिन्न सम्बन्ध जोड़ लिया है वे पिता, माता, पति, पुत्र और बन्धु आदि एक क्षणके लिये भी हमारा साथ नहीं दे सकते। बस, एक धर्म ही हमारे साथ जाता है। वही हमारी अधोगतिसे रक्षा करता है। बड़े अचरजकी बात है, हम रात-दिन अपने सम्बन्धी और मित्रोंको

४६७–हे मन ! मायाजालमें मत फँसो । काल अब ग्रसना चाहता है । आओ, श्रीहरिकी शरण आओ ।

४६८–इस संसारसे जो रूठा उसीने सिद्ध पंथपर पैर रखा ।

४६९–घर-बाहरकी सब उपाधि दूर करनेके लिये एकान्त-वास ही सर्वोत्तम उपाय है ।

४७०–केवल एकान्त ही आधी समाधि है ।

४७१–जिसे एकान्तवास अत्यन्त प्रिय होता है, जनसंसद्, लोगोंकी भीड़-भाड़से जिसे अरति हो वही ज्ञानकी साकार मूर्ति है ।

४७२–भगवत्प्रेम जैसे-जैसे बढ़ता है, कर्ता भगवान् हैं, मैं नहीं, यह जो कुछ है भगवान्का है मेरा नहीं, यह भाव जैसे-जैसे बलवान् हो उठता है वैसे-वैसे अहङ्कारकी आंधी भी बन्द होती जाती है ।

४७३–अहङ्कार, लोकप्रियता, मान–ये सब लोकैषणाओंके बादल उत्कट भक्तिका सूर्योदय होते ही गल गये ।

४७४–पापकी मैं गठरी हूँ । दण्ड दो मुझे हे नारायण ! और मेरा मान-अभिमान उतारो । प्रभो ! मैं न तेरा हुआ न संसार-का । दोनोंसे गया । केवल चोर बना रहा ।

४७५–जन-मान साधकको धरतीपर पटककर उसके परमार्थ-का सत्यानाश करनेवाला है ।

४७६–लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं पर मुझसे वह सुनी नहीं जाती, जी छटपटाया करता है । तुम जिसमें मिलो, हे हरि ! ऐसी

धृतिमान् पुरुष होते हैं उनके साथ कोई कैसा ही वर्ताव करे, धन रहे चाहे लुट जाय, उन्हें आज ही मृत्यु आकर दबा ले अथवा वे बीसियों वर्ष जीवित रहें, किन्तु वे कभी धर्ममार्गसे हटते नहीं। देखो, हरिश्चन्द्रने राजासे रंक हो जानेपर भी सत्यका त्याग नहीं किया। युधिष्ठिरने अपना सब कुछ हार जाने और भरी सभामें द्रौपदीके अपमानित होनेपर भी चूँतक नहीं की। तरह-तरहसे दुःख दिये जानेपर भी प्रह्लादने रामनाम लेना नहीं छोड़ा। गुरु गोविन्द-सिंहके लड़कोंको जिन्दा ही दीवारमें चुनवा दिया गया, मगर उन्हों-ने मुसलमान होना स्वीकार नहीं किया। सावित्रीने सत्यवान्की आयु थोड़े ही दिनकी सुनकर भी किसी अन्य वरको वरण करना अंगीकार नहीं किया। पद्मिनीने सहस्रों राजपूत रमणियोंके साथ अग्निमें कूदकर प्राण समर्पण कर दिये किन्तु किसी मुसलमानको अपना अंगस्पर्श नहीं करने दिया—ये सब धृतिके ही प्रमाण हैं। जो धैर्यवान् होते हैं वे ही सच्चे धर्मनिष्ठ हो सकते हैं और वे अपना ही नहीं, अपने दृष्टान्तसे अन्य पुरुषोंको मार्ग दिखाकर उनका भी कल्याण कर देते हैं। इसलिये जो पुरुष धर्ममार्गपर बढ़ना चाहे उसे सबसे पहले धृतिको धारण करना चाहिये। जीवनमें आनेवाली आपत्तियोंको प्रारब्धका खेल समझकर उन्हें खूब धैर्यके साथ सहना चाहिये। आपत्ति तो प्रारब्धसे आती है और बिना अनुकूल प्रारब्ध हुए वह जायगी नहीं; फिर धैर्य खोकर कायरताको आश्रय क्यों दिया जाय? घबरानेसे तो वह और भी अधिक असह्य हो जायगी। इसलिये आपत्तिमें सर्वदा धैर्यसे ही काम लेना चाहिये।

४८४—नाम-स्मरणका चसका लगना है बड़ा कठिन । पर एक बार जहाँ चसका लगा वहाँ फिर एक पल भी नामसे खाली नहीं जाता ।

४८५—नामस्मरण यह है कि चित्तमें रूपका ध्यान हो और मुखमें नामका जप हो । अन्तःकरणमें ध्यान जमता जाय, ध्यानमें चित्त रँगता जाय, चित्तकी तन्मयता होती जाय, यही वाणीमें नामके बैठ जानेका लक्षण है ।

४८६—चित्तमें ध्यान न हो तो न सही पर वाणीमें तो हो—यह नाम-स्मरणकी पहली सीढ़ी है ।

४८७—हे हरि ! तुम्हारे प्रेम-सुखके सामने वैकुण्ठ बेचारा क्या है ?

४८८—धन्य है वह काल जो गोविन्दके संकल्प वहन करता हुआ आनन्दरूप होकर बहा जा रहा है ।

४८९—गुण गाते हुए, नेत्रोंसे रूप देखते हुए तृप्ति नहीं होती । प्रभु मेरे कितने सुन्दर हैं, जलभरे मेघ-जैसी श्याम कान्ति कैसी शोभा देती है । सब मंगलोंका यह सार है, सुख-सिद्धियोंका भण्डार है । यहाँ सुखका क्या वार-पार है ।

४९०—मुखमें नाम हो तो चरणोंमें मुक्ति लोटती है । बहुतों-को इसकी प्रतीति हो चुकी है ।

४९१—जीभको एक बार नामकी चाट लग जानी चाहिये फिर प्राण जानेपर भी नामको वह नहीं छोड़ती । नामचिन्तनमें ऐसा विलक्षण माधुर्य है ।

हम उसका और अपना दोनोंहीका वास्तविक हित कर सकेंगी। लेकिन यदि हम उससे बदला लेनेकी कोशिश करेंगी तो इस समय भी वैरका बीज बो देंगी और आगेके लिये भी बुरे संस्कार साथ ले जायँगी। इसलिये इस जीवनसंग्राममें हमें सर्वदा क्षमाका कवच पहने हुए ही सारे काम करने चाहिये।

दम

तीसरा धर्म दम है। दमका साधारण अर्थ तो है इन्द्रियनिग्रह। परन्तु यहाँ 'दम'का अर्थ मनको वश करना है। यह जान रक्खो सुमति! कि मनको वशमें कर लेनेपर सभी इन्द्रियाँ अपने अधीन हो जाती हैं। इस मनने ही सारा संसार खड़ा कर रक्खा है और यही जीवको मायाके कठिन बन्धनमें बाँधे हुए है। इसलिये जबतक मनको अपने अधीन नहीं किया जायगा तबतक परमार्थका कोई भी काम ठीक न हो सकेगा। जो मनको जीत लेता है वह सहज ही इस जगत्को जीत लेता है। उसपर माया असर नहीं कर सकती अतः हमें सारा बल लगाकर मनको अपने अधीन करना चाहिये।'

सुमति—'बहिनजी! मन तो बड़ा ही चञ्चल है। मुझे तो यह बहुत ही नाच नचा रहा है। इसे किस प्रकार वशमें किया जाय? आप इसे जीतनेका कोई सरल साधन बताइये।'

शान्तिदेवी—'सुमति! तुम जो कुछ कह रही हो ठीक है। देखो, यह जीव अनन्त कालसे विषयोंका भोग कर रहा है। इसलिये मनकी स्वाभाविक गति विषयोंकी ही ओर है। चञ्चल और हठीला तो यह स्वभावसे ही है। इसलिये इसे जीतनेके प्रधान साधन वैराग्य और अभ्यास हैं। वैराग्यसे इसकी विषयासक्ति दूर होगी और

सुखका ही ढला हुआ हो, इसे देख मेरी भूख-प्यास हर जाती है। तुम्हारे गीत गाते-गाते रसना मीठी हो गयी। चित्त तृप्त हो गया।

५०२—तुम्हारे कोमल चरण चित्तमें धारण कर लिये, कण्ठमें नामकी एकावली डाल ली। काया शीतल हुई, चित्त पीछे फिरकर विश्रान्ति-स्थानमें पहुँच गया, अब वह आगे संसारकी ओर नहीं आता है। मेरे सब हौसिले पूरे हुए। सब कामनाएँ श्रीगोपालने पूरी कर दीं।

५०३—नाम लेनेसे कण्ठ आर्द्र और शरीर शीतल होता है, इन्द्रियाँ अपना व्यापार भूल जाती हैं। यह मधुर सुन्दर नाम अमृतको भी मात करता है। इसने मेरे चित्तपर अधिकार कर लिया है। प्रेमरससे शरीरकी कान्तिको प्रसन्नता और पुष्टि मिली। यह नाम ऐसा है कि इससे क्षणमात्रमें त्रिविध ताप नष्ट होते हैं।

५०४—यह नामस्मरण ऐसा है कि इससे श्रीहरिके चरण चित्तमें, रूप नेत्रोंमें और नाम मुखमें आता है और यह जीवको हरिप्रेमका आनन्दामृत पान कराकर उसका जीवत्व हर लेता है। तब हरि ही रह जाते हैं।

५०५—नाम-स्मरणसे वह चीज ज्ञात हुई जो अज्ञात थी, वह दिखायी देने लगा जो पहले नहीं देखा गया, वह वाणी निकली जो पहले मौन थी, वह मिलन हुआ जो पहले चिरविरहमें छिपा था और यह सब आप-ही-आप हो गया।

कि बीचमें जप छोड़कर मन इधर-उधर तो नहीं भटकता है, अथवा निद्रा तो नहीं आ जाती है। आरम्भमें ये दोष भी रहेंगे ही परन्तु यदि तुम जप किये जाओगी तो इनसे छुट्टी मिल जायगी। सुबह-शाम तुम्हें जितना अवकाश मिल सके उतनी देर तो एक स्थानपर बैठकर एकान्तमें जप करो। बाकी अन्य समयमें चलते-फिरते और घरके काम करते हुए भी मन-ही-मन भगवान्का नाम लेती रहो, उनका सुमिरन करती रहो। भगवन्नाम लेनेमें किसी पवित्रता-अपवित्रताका नियम नहीं है। तुम मन-ही-मन तो हर समय और हर अवस्थामें जप कर सकती हो। हाँ, जप करते समय दो बातोंसे बराबर होशियार रहना—एक तो यह कि कहीं जप करते समय मन विषय-चिन्तन तो नहीं कर रहा है; और दूसरा यह कि आलस्य या निद्रामें तो तुम नहीं जा पड़ी हो।

इस प्रकार तुम सहजहीमें मनको अपने वश कर सकती हो। सुमति! मनके संयमकी परमार्थमें तो जरूरत है ही दुनियावी काममें भी इसकी बड़ी जरूरत है। एक संयमी पुरुष जैसी सफलतासे किसी कार्यको कर सकता है वैसा चञ्चल स्वभावका पुरुष नहीं कर सकता। सच पूछो तो मनकी चञ्चलता ही दुःख है। मानसिक चञ्चलता जितनी अधिक होती है उसे उतना ही बड़ा दुःख कहा जाता है तथा जितना ही अधिक मन शान्त–स्थिर होता है वह उतना ही बड़ा सुख कहा जाता है। सौ बातकी एक बात यह है जिसका मन चञ्चल होता है वह कोई भी काम पूरा कर नहीं सकता। मनकी शान्तिके बिना सुखका स्वाद मिल ही नहीं

५१५—भक्तिमार्ग ही ऐसा मार्ग है कि जीव अनन्यभावसे भगवान्‌की शरणमें जब जाता है तब भगवान् उसे गोदमें उठा लेते हैं ।

५१६—जप करो, तप करो, अनुष्ठान करो, यज्ञ-याग करो, संतोंने जो-जो मार्ग चलाये हैं उन सबको चलाओ । संतोंके वचनोंको सत्य मानकर तुम लोग नारायणकी शरणमें जाओ ।

५१७—सभी मार्ग ठीक हैं परन्तु मुझे तो प्रेम-निर्झर चाहिये, तुम्हारी भक्तिका रस चाहिये ।

५१८— तुम भगवान् हो और मैं भक्त हूँ यह जो नाता है यह कभी न टूटे और भक्तिका रंग कभी फीका न पड़े यही तुम्हारे चरणोंमें मेरी विनती है ।

५१९—प्रेम बोला नहीं जा सकता, बताया नहीं जा सकता, उठाकर हाथपर रखा नहीं जा सकता । यह चित्तका अनुभव है, चित्त ही जान सकता है ।

५२०—भगवान्‌का चिन्तन करना, उनका नाम लेना, उनके रूपमें तन्मय हो जाना ही मेरा तप है, यही मेरा योग, यही मेरा यज्ञ, यही मेरा ज्ञान, यही मेरा जप-ध्यान, यही मेरा कुलाचार और यही मेरा सर्वस्व है ।

५२१—कर्म-ज्ञान-योगमें जो-जो कमी हो उसकी पूर्ति हरि-प्रेमसे हो जाती है, इसलिये भक्तियोग ही सबसे श्रेष्ठ योग है । नारायण भक्तिके वश होते हैं ।

कि इससे मन कितना मैला हो जाता है। कभी घाटा आता है, कभी डाका पड़ता है, कभी गोदाममें आग लगती है और कभी कोई आसामी फेल हो जानेसे रकम मारी जाती है । यह सब उनकी करनीका फल है, पापसे धन बटोरनेका नतीजा है। जिन लोगोंका व्यवहार शुद्ध होता है उनका व्यापारिक क्षेत्रमें भी विश्वास और सम्मान होता है तथा ऐसी दैवी आपत्तियोंकी भी प्रायः नौबत नहीं आती और दैवयोगसे आती भी है तो उससे उनका कुछ बिगड़ता नहीं। इसलिये जो यह समझते हैं कि व्यापारमें सचाईसे काम नहीं चलता वे बड़ी भारी भूलमें हैं। वास्तवमें तो व्यापारिक सफलताकी सच्ची कुञ्जी सचाई ही है और इसके द्वारा सांसारिक सम्पत्तिके साथ-साथ ही पारलौकिक समृद्धिकी प्राप्तिका मार्ग भी खुलता जाता है। आज इस बातको भूल जानेसे ही दुनियाभरमें बेईमानीका दौर-दौरा है।

इसके सिवा एक बात और विचारनेकी है । धन पैदा करनेका मतलब यही है कि उससे समाजकी सेवा हो। धनके दो ही उपयोग हो सकते हैं—भोग या दान। इनमें भोग जीवको संसारमें फँसानेवाला, भगवान्‌से दूर करनेवाला और सारी अशान्तियोंका कारण है। और जानती हो सुमति! संसारमें इतनी अशान्ति क्यों है? मैं तुम्हें बतलाती हूँ, सुनो। मनुष्य जितना भी पाता है उसे और पानेका लोभ बना रहता है। सारी फ़सादकी जड़ यही है। इसलिये धनका सच्चा उपयोग भोग नहीं है। इसका सच्चा उपयोग तो दान ही है। जिस प्रकार राजाका खज़ाना प्रजाकी

५२७–समरस हुए भक्त भक्तिका आनन्द लूटनेके लिये भगवान् और भक्तका द्वैत केवल मनकी मौजसे बनाये रहते हैं।

५२८–हवाको हिलाकर देखनेसे वह आकाशसे अलग जान पड़ती है पर आकाश तो ज्यों-का-त्यों ही रहता है। वैसे ही भक्त शरीरसे कर्म करता हुआ भक्त-सा जान पड़ता है पर अन्तःप्रतीतिसे वह भगवत्स्वरूप ही रहता है।

५२९–सिद्धान्त अद्वैतका और मजा भक्तिका, यही तो भागवतधर्मका रहस्य है।

५३०–वसुदेवसुत देवकीनन्दन ही सर्वरूपाकार सर्वदिक्-नेत्र और सर्वदेशनिवास परमात्मा हैं और भक्तोंकी प्रीतिके वश अमूर्त होकर भी व्यक्त हुए हैं।

५३१–जैसा जिसका भाव हो, भगवान् वैसे ही हैं।

५३२–मार्गकी प्रतीक्षा करते-करते नेत्र थक गये। इन नेत्रोंको अपने चरण कब दिखाओगे? तुम माता मेरी मैया हो, दयामयी छाया हो। मेरी बारी ऐसा कठोर हृदय तुम्हारा क्यों हुआ? मेरी बाहें, हे मेरे प्राणधन हरि! तुमसे मिलनेको फड़क रही हैं।

५३३–हे हरि, हे दीनजनतारक, तुम्हारा यह सुन्दर सगुणरूप मेरे लिये सब कुछ है। पतितपावन! तुमने बड़ी देर लगायी, क्या अपना वचन भूल गये? घर-गिरस्ती जलाकर तुम्हारे आँगनमें आ बैठा हूँ। इसकी तुम्हें कुछ सुध ही नहीं है। हे मेरे जीवनसखा! रिस मत करो, अब उठो और मुझे दर्शन दो!

इस बाहरी सफाईके विषयमें बड़ा भ्रम फैला हुआ है। अधिकांश लोग शुद्धिका अर्थ सफाई करते हैं। परन्तु वे नहीं जानते कि इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। विलायती साबुनसे सफाई तो होती है परन्तु शुद्धि नहीं होती, क्योंकि उसमें तो चर्बी आदि अपवित्र वस्तुएँ भी मिली रहती हैं। बहुत साफ-सुथरे कमरेमें मेज-कुर्सीपर बैठकर नौकरके हाथसे मँगाकर भोजन करनेमें सफाईका ख्याल जरूर है किन्तु इसे पवित्रता नहीं कह सकते। पवित्रता या शौचमें सादगी, संयम, श्रद्धा और सरलताकी प्रधानता रहती है तथा सफाईमें शौकीनी, सौन्दर्य, तड़क-भड़क और दिखावटकी। शुद्धि बाह्य होनेपर भी शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारके स्वास्थ्यका कारण होती है तथा सफाई केवल शारीरिक पुष्टिमें ही सहायक होती है। इसमें रजोगुणकी प्रधानता है और उसमें सत्त्वगुणकी। इसलिये भारतीय सभ्यतामें शुद्धि या पवित्रताका ही विशेष मान रहा है। अब विदेशी संसर्ग होनेसे लोगोंकी बुद्धि बहुत बाह्य हो जानेके कारण उन्हें आचार-विचारकी बातें ढकोसला जान पड़ती हैं। इसीसे वे शौचको सफाईकी कसौटीपर कसने लगे हैं। शरीरको उबटन, बेसन आदि मलकर धोना, दाँतोंको मंजन, दातौन आदिसे साफ रखना, कपड़े साफ-सुथरे पहनना, सिरमें मैल न बैठने देना, नाखूनोंमें गंदगी न हो आदि ऐसी बातें हैं जिनका ध्यान हर आदमीको रखना ही चाहिये।

यह तो शरीरकी बाह्य शुद्धिकी बात रही। भीतरी शुद्धि भोजनकी शुद्धिपर निर्भर है। शुद्ध और सात्त्विक शरीर-रचनाके लिये इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि शुद्ध और सात्त्विक पदार्थोंका ही

ही हूँ। भला बच्चा भी कहीं आपसे दूर रहने योग्य बननेके लिये सयानोंकी बराबरी कर सकता है ?

५४३—ज्ञानी पुरुषोंकी बराबरी मैं अजान होकर कैसे कर सकता हूँ ? बच्चा जब सयाना हो जाता है तब माता उसे दूर रखती है, अजान शिशु तो माताकी गोदमें ही स्थान पाता है।

५४४—जो ब्रह्मज्ञानी हों उन्हें मोक्ष (छुटकारा) दे दो, पर मुझे मत छोड़ो। मुझे मोक्ष न चाहिये।

५४५—तुम्हारे नामका जो नेह लगा है वह अब छूटनेवाला नहीं।

५४६—रसना तुम्हारे ही नामकी रसिक हो गयी है, आँखें तुम्हारे ही चरणोंके दर्शनकी प्यासी हैं। यह भाव अब मेरा बदलनेवाला नहीं। इसलिये तुम अब मेरे इस प्रेमरसको सूखने मत दो। अपनेसे मुझे अब दूर मत करो। मैं तुम्हारा मोक्ष नहीं चाहता, तुम्हींको चाहता हूँ।

५४७—ऐसे मौन साधे क्यों बैठे हो ? मेरी बातका जवाब दो। मेरा पूर्वसञ्चित सारा पुण्य तुम हो। तुम्हीं मेरे सत्कर्म हो, तुम्हीं मेरे स्वधर्म हो, तुम्हीं नित्य नियम हो। हे नारायण ! मैं तुम्हारे कृपावचनोंकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

५४८—प्रेमियोंके हे प्रियोत्तम ! हे सर्वोत्तम ! मुझसे बोलो। शरणागतको महाराज ! पीठ न दिखाओ, यही मेरी विनय है। जो तुम्हें पुकार रहे हैं उन्हें चट उत्तर दो, जो दुखी हैं उनको

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् । (यो० सू० १ । ३३)

अर्थात् यदि किसी पुरुषको सुखी देखे तो उसके प्रति मित्रताका भाव करे, यदि दुखी देखे तो करुणा करे, यदि पुण्यवान् देखे तो प्रसन्न हो और यदि पापी देखे तो उपेक्षा करे अर्थात् तटस्थ रहे ऐसा करनेसे चित्त प्रसन्न हो जाता है । सुखीके प्रति मित्रताका भाव करनेसे ईर्ष्या नहीं होती। दुखीके प्रति करुणाका भाव करनेसे क्रूरता और स्वार्थपरताकी आदत दूर होती है। पुण्यवान्-को देखकर प्रसन्न होनेसे असूया—गुणोंमें दोष ढूँढ़नेकी वृत्ति नष्ट होती है और पापीकी उपेक्षा करनेसे क्रोध, घृणा एवं हिंसारूप दोषोंका नाश होता है ।

हे सुमति ! मानसिक दोषोंको जरा-सी भी गुंजाइश नहीं देनी चाहिये । एक वार जब ये आ जाते हैं तो फिर इन्हें भगानेमें वड़ी कठिनाई पड़ती है । इसलिये वराबर होशियार रहना चाहिये। जो बराबर होशियार रहता है और संसारके दोषोंसे अलग रहता है वही अपने अन्तःकरणको शुद्ध रख सकता है । इस विषयमें महाभारतमें कहा गया है—

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥

अर्थात् हे पाण्डुपुत्र ! आत्मारूप नदी संयमरूप पवित्र तीर्थ-वाली है, उसमें सत्यरूप जल भरा हुआ है, उसका शील तट है

करो, अबतक रोते ही बीता है । कब यह मस्तक तुम्हारे चरणोंमें रखूँगा, यही एक ध्यान है ।

५५६–सोलह हजार तुम बन सकते हो, सोलह हजार नारियोंके लिये तुम सोलह हजार रूप धारण कर सकते हो पर इस अधमके लिये एक रूप धारण करना भी तुम्हारे लिये इतना कठिन हो गया है ?

५५७–भगवन् ! तुम्हारी उदारता मैं समझ गया । मैं तो तुम्हारे चरणोंपर मस्तक रखूँ और तुम अपने गलेका हार भी मेरी अञ्जलिमें न डालो ! हाँ, समझा ! जो छाछ भी नहीं दे सकता वह भोजन क्या करावेगा ?

५५८–द्वारपर खड़ा मैं कबसे पुकार रहा हूँ, पर 'हाँ' तक कहनेकी जरूरत आप नहीं समझते ? कोई अतिथि आ जाय तो शब्दोंसे उसको सन्तोष दिलानेमें क्या खर्च हुआ जाता है ?

५५९–भगवन् ! तुम भरमाने-भटकानेमें बड़े कुशल हो तो मैं भी बड़ा अड़ियल हूँ । तुम्हें मौन साधे बैठ रहना ही अच्छा लगता है तो क्या इतनेसे ही मैं तुम्हारा पल्ला छोड़ दूँगा ।

५६०–सचमुच ही परमात्मन् ! तुमसे ही तो मैं निकला हूँ । तब तुमसे अलग कैसे रह सकता हूँ ?

५६१–भगवन् ! तुम्हारे प्रेमकी खातिर, तुम्हारी एक बातके लिये, तुम्हारे दर्शन पानेके लिये मैं क्या नहीं कर सकता ! पर आज्ञा तो दो, कुछ बोलो तो ।

हैं वही सुखपूर्वक अपने परम लक्ष्यतक जा सकता है। नहीं तो ये घोड़े उद्दण्ड होकर कुपथकी ओर ले जाते हैं और रथको चकनाचूर करके रथी और सारथीको भी नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। इनको वशमें करनेकी सामर्थ्य वस्तुतः बुद्धिमें ही है। जो मनुष्य बुद्धिमानीसे काम लेता है, इन्द्रियोंके प्रत्येक विषयकी प्राप्ति होनेपर उससे होनेवाले अपने शारीरिक और मानसिक लाभ-हानिका विचार करके उसे ग्रहण या त्याग करता है वही उनके ऊपर विजय प्राप्त कर सकता है। जिसकी बुद्धिमें विषयोंके प्रलोभनसे बचनेका बल नहीं है उसे तो न लौकिक सुख ही प्राप्त हो सकता है और न आत्मानन्द ही। इसलिये इन्द्रियोंसे विषय-सेवन करनेसे पहले विवेकवती बुद्धिद्वारा उनसे होनेवाले लाभ-हानिका विचार करना बहुत आवश्यक है। जिस भोगकी तरफ़ इन्द्रियाँ जायँ उसी समय होशमें आकर मनपर काबू करना चाहिये और बलपूर्वक मनकी गतिको किसी दूसरी दिशामें पलट देना चाहिये।

सुमति! इन्द्रियाँ दस हैं। उनमें कर्ण, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, तथा हस्त, पाद, वाक्, पायु और उपस्थ–ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। जिन कान, नाक आदि शरीरके अंगोंको तुम देखती हो उनका नाम इन्द्रिय नहीं है। ये सब तो स्थूल शरीरके अंग हैं। इनमें रहनेवाली जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच विषयोंको ग्रहण करनेवाली शक्तियाँ हैं वे ज्ञानेन्द्रिय कहलाती हैं, तथा जो ग्रहण, गति, शब्दोच्चारण, त्याग और आनन्द-भोग करनेकी शक्तियाँ हैं वे कर्मेन्द्रिय कही जाती हैं। इनमें

५७०—भगवन् ! मुझसे आप कुछ बोलते नहीं। क्यों इतना दुखी कर रहे हैं ? प्राण कण्ठमें आ गये हैं । मैं आपके वचनकी बाट जोह रहा हूँ। मैं भगवान्‌का कहाता हूँ। और भगवान्‌से ही भेंट नहीं। इसकी मुझे बड़ी लज्जा आती है।

५७१—भगवन् ! मेरे प्रेमका तार मत तोड़ो। आपकी कृपा होनेपर मैं ऐसा दीन-हीन न रहूँगा। पेट भरनेपर क्या संसारसे कहना पड़ता है कि मेरा पेट भरा ? तृप्ति चेहरेसे ही मालूम हो जाती है, चेहरेकी प्रसन्नता ही उसकी पहचान है।

५७२—सतीको वस्त्रालङ्कार पहनाकर चाहे जितना सिंगारिये पर जबतक पतिका सङ्ग उसे नहीं मिलता तबतक वह मन-ही-मन कुढ़ा करती है, वैसे ही तुम्हारे दर्शन बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

५७३—भगवन् ! तुमसे यदि मेरी प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई और कोरी बातें ही करते रहे तो ये संत मुझे क्या कहेंगे। इसको भी तनिक विचारो !

५७४—जिसने भगवान्‌के साक्षात् दर्शन नहीं किये संतोंमें उसकी मान्यता नहीं। संत और भक्त वही है जिसे भगवान्‌का सगुण-साक्षात्कार हुआ हो। भोजनके बिना तृप्ति कहाँ ?

५७५—भगवान् आलिङ्गन देकर प्रीतिसे इन अंगोंको शान्त करेंगे और अमृतकी दृष्टि डालकर मेरे जीको ठण्ढा करेंगे। गोदमें उठा लेंगे और भूख-प्यास भी पूछेंगे और पीताम्बरसे मेरा मुँह पोछेंगे। प्रेमसे मेरी ओर देखते हुए मेरी ठुड्डी पकड़कर मुझे

समय भगवान्‌का स्मरण रखना चाहिये और यह याद रखना चाहिये कि वे हमारे सारे कामोंको देखते हैं। वे सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी हैं। हम अपनी किसी क्रियाको भी उनसे छिपा नहीं सकते और वे ही पूर्ण आनन्दस्वरूप भी हैं। इसलिये इस विषयतृष्णासे निकलकर हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हम उनके नित्यानन्दका ही अनुभव कर सकें। हमें निरन्तर भगवन्नामजप और सद्विचारोंका ही मनन करते रहना चाहिये। श्रीगीताजी और रामायणजी आदि सद्ग्रन्थोंका विचार करना चाहिये तथा जहाँतक बन पड़े सत्पुरुषोंके संगमें रहना चाहिये। सांसारिक विषय, सांसारिक दृश्य और सांसारिक चर्चासे सर्वदा दूर रहना चाहिये। भोजन और रहन-सहनमें भी बहुत सात्त्विकता और सरलता रखनी चाहिये तथा कभी निकम्मा नहीं रहना चाहिये। परमात्मासे नित्यप्रति ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि प्रभो! इस निःसार विषयासक्तिसे छुड़ाकर मुझे अपने पादपद्मोंके सरस-मकरन्दका मधुकर बना लीजिये, निरन्तर अपने और अपने दासोंके चरणोंकी सन्निधिमें रखिये तथा अपनी अहैतुकी भक्ति दान करके सदाके लिये इन वैषयिक सन्तापोंसे मुक्त कर दीजिये।

हे सुमति! इस प्रकार अपनी जीवनचर्याको सात्त्विक और भक्तिमयी रखनेसे इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त की जा सकती है। कुछ योगसम्बन्धी आसन और प्राणायाम भी इन्द्रियनिग्रहमें सहायक हैं; परन्तु सबसे अधिक उपयोगी स्थिरतापूर्वक बैठकर एकाग्रचित्तसे भगवान्‌का ध्यान करना है। यदि तुम इन सब बातोंपर सावधानीसे

५८२—गरुड़के पैरोंपर बार-बार मस्तक रखता हूँ ! हे गरुड़जी ! उन हरिको शीघ्र ले आइये, मुझ दीनको तारिये । भगवान्‌के चरण जिन लक्ष्मीजीके हाथोंमें हैं उनसे गिड़गिड़ाता हूँ कि हे लक्ष्मीजी ! उन हरिको शीघ्र ले आइये और मुझ दीनको तारिये । हे शेषनाग ! आप हृषीकेशको जगाइये ।

५८३— हे नारायण ! तुम्हें उन गोपालोंने अपने पुण्यवान् नेत्रोंसे कैसा देखा होगा । उनके उस सुखके लोभसे मेरा मन ललचाया है । मुझे वह आनन्द कब मिलेगा ? तुम्हारे श्रीमुखकी ओर टकटकी लगाये रहनेका आनन्द कैसा होगा ? अनुभवके बिना मैं उसे कैसे जानूँ ? तुम्हारा रूप इन आँखोंसे कब देखूँगा ? तुम्हारे आलिङ्गनका आनन्द कब लाभ करूँगा, चित्त प्रतिक्षण यही सोचता है ।

५८४—वह श्यामघननील, उनका वह पीताम्बर, वह मुकुट, वे कुण्डल, वह चन्दनकी खौर, वह निर्मल कौस्तुभमणि और वह वैजयन्ती माला, वह सुखनिर्मित श्रीमुख, ऐसे वह सुकुमार मदन-मूर्ति श्रीकृष्ण सामने खड़े हैं और उनके सखा गोपाल अनिमेष-लोचनोंसे उनके सुन्दर मुखकमलकी ओर आनन्दानुभवसे स्थिर होकर देख रहे हैं, यह सम्पूर्ण दृश्य नेत्रोंके सामने नाच रहा है ।

५८५—अपने नेत्रोंसे श्रीकृष्णको जीभर कब देखूँगा, श्रीकृष्ण अपनी बाहोंसे मुझे कब अपनी छातीसे लगावेंगे, प्रतिक्षण मेरे चित्तमें यही लालसा लगी रहती है ।

५८६—निगमके वनमें भटकते-भटकते क्यों थके जा रहे हो ? ग्वालोंके घर चले आओ, यहाँ वह रस्सीसे बँधे हैं ।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥
(१८ । ३०–३२)

अर्थात् जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य, भय और अभय तथा बन्धन और मोक्षको ठीक-ठीक जानती है वह सात्त्विकी है । जिसके द्वारा पुरुष धर्म और अधर्म तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको यथार्थ रीतिसे नहीं जान पाता वह राजसी है और जिस बुद्धिसे वह अधर्मको धर्म तथा अन्य सब विषयोंको भी उलटा ही समझता है वह तामसी बुद्धि है ।

सात्त्विकी बुद्धिद्वारा जीवका कल्याण हो सकता है । यदि बुद्धि बहुत तेज और गहन-से-गहन विषयोंको भी समझनेवाली हो परन्तु उसमें सात्त्विकताका अभाव हो तो वह लौकिकी उन्नति और प्रतिष्ठा आदिकी प्राप्ति भले ही करा दे, किन्तु उससे शान्ति, सुख और परमार्थतत्त्वका बोध नहीं हो सकता । इसके लिये तो निर्मल तथा विवेकवती बुद्धिकी ही आवश्यकता है; इसलिये उसीको प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये । आजकलकी दुनियामें बुद्धिमान् शब्दका अर्थ है चलता-पुर्जा अर्थात् जो उल्टा सीधा करना जानता हो, दूसरेको धोखेमें डालकर उसका धन-माल लूट सकता हो और चाहे जिस तरह हो अपने सुखकी सामग्री और साधन जुटाता हो । परन्तु यह तो राक्षसी बुद्धि है, यह बुद्धि बुद्धि नहीं है । इस ओरसे बहुत होशियार रहना चाहिये । बुद्धि तो वह है जिसमें भगवान्का प्रकाश हो, जो शुद्ध हो, सात्त्विकी हो और विवेकवती हो ।

५९४–भक्तिका रहस्य जानना हो तो आओ श्रीवृन्दावन-लीलाका आश्रय करो ।

५९५–चारों वेद जिसकी कीर्ति बखानते हैं, योगियोंके ध्यानमें जो एक क्षणभरके लिये भी नहीं आता वह ग्वालिनोंके हाथ बँध जाता है, भावुक ग्वालिनें उसे पकड़ रखती हैं । इन भक्तिनोंके पास वह गिड़गिड़ाता हुआ आता है और सयाने कहते हैं कि वह तो मिलता ही नहीं ।

५९६–इन भोरी अहीरिनोंके पूर्वपुण्यका हिसाब कौन लगा सकता है जिन्होंने मुरारिको खेलाया—अन्तःसुखसे खेलाया और बाह्यसुखसे भी उन्हें पाकर मुखका चुम्बन दिया ? भगवान्‌ने उन्हें अन्तःसुख दिया जिन्होंने एकनिष्ठभावसे उन्हें जाना । श्रीकृष्णमें जिनका तन-मन लग गया, जो घर-द्वार और पति-पुत्र-तकको भूल गयीं, जिनके लिये धन, मान और स्वजन विष-से हो गये, वे एकान्तमें वन बसाने लगीं ।

५९७–देहकी सारी भावना, सारी सुध-बुध बिसार दी तब वही नारायणकी सम्पूर्ण पूजा-अर्चा है । ऐसे भक्तोंकी पूजा भगवान् भक्तोंके जाने बिना ले लेते हैं और उनके माँगे बिना उन्हें अपना ठाँव दे देते हैं ।

५९८–इन ग्वालिनोंका भी कैसा महान् पुण्य था, वे गाय, भैंस और अन्य पशु भी कैसे भाग्यवान् थे ! ग्वालिनोंको जो सुख मिला वह दूसरोंके लिये, ब्रह्मादिके लिये भी दुर्लभ है ।

सत्य

सत्यके साधारण स्वरूपसे सभी परिचित हैं। यही धर्मका वास्तविक स्वरूप है। धर्मका ही नहीं यदि सूक्ष्मतासे विचारा जाय तो यही स्वयं भगवान्‌का स्वरूप है। वास्तवमें सत्य ही भगवान् है। यह तो सत्यका सूक्ष्मतम स्वरूप है। व्यावहारिक सत्य इसीकी उपलब्धिका साधन है।

'सत्य' शब्दसे साधारणतया सत्य व्यवहार और सत्यभाषण ही लिये जाते हैं। सत्य व्यवहारका ही दूसरा नाम सरलता है। जिस व्यवहारमें सरलता नहीं है, दिखावटीपन है, वह लोकमें भले ही चतुरता, कुशलता अथवा किसी और शिष्ट नामसे कहा जाय किन्तु उससे आध्यात्मिक उन्नतिमें तो बाधा ही आती है। इसलिये सत्यनिष्ठका व्यवहार बहुत सरल और स्पष्ट होना चाहिये। इसी प्रकार सत्यभाषणमें भी कपट और कटुतासे रहित वाक्य ही सत्यके अन्तर्गत माने जा सकते हैं। जो वाक्य ऊपरसे सत्य प्रतीत होनेपर भी भाव या ध्वनिसे श्रोताको विपरीत अर्थका ही बोध करानेवाले होते हैं वे सत्य नहीं कहे जा सकते। इसलिये जो कुछ कहा जाय वह स्पष्टतया वास्तविक स्थितिका बोधक होना चाहिये। इसके विपरीत कुछ ऐसे स्पष्टवादी भी होते हैं जो अपनी स्पष्टवादिताकी ओटमें आन्तरिक कटुता और उद्दण्डताको ही उगला करते हैं। परन्तु इससे अपनेमें व्यर्थ अभिमान और दूसरेके हृदयमें द्वेष उत्पन्न होनेके सिवा कोई लाभ नहीं होता। इसीसे शास्त्रकारोंने सत्यभाषणके साथ मीठी वाणीकी भी शर्त लगायी है। वे कहते हैं—'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्मा

शुद्ध है उसको सब जीव अपने जीवनके समान प्यार करते हैं, कारण सबके अन्तरमें एक ही भाव है ।

६०५—आघात करनेवाला लोहा भी पारसके स्पर्शमात्रसे सोना हो जाता है । दुष्टजन भी संतोंके स्पर्शमें आकर संत बन जाते हैं ।

६०६—जो कोई नारायणका प्रिय हो गया उसका उत्तम या कनिष्ठ वर्ण क्या ? चारों वर्णोंका यह अधिकार है, उसे नमस्कार करनेमें कोई दोष नहीं ।

६०७—चित्तकी उलटी चालमें मैं भी फँस गया था, मृगजलने मुझे भी धोखा दिया था पर भगवान्‌ने बड़ी कृपा की जो मेरी आँखें खोल दीं । तुमने मेरी गुहार सुनी, इससे मैं निर्भय हो गया हूँ ।

६०८—प्रभु अपने भक्तको दुखी नहीं करते, अपने दासकी चिन्ता अपने ही ऊपर उठा लेते हैं । सुखपूर्वक हरिका कीर्तन करो, हर्षके साथ हरिके गुण गाओ । कलिकालसे मत डरो, कलिकालका निवारण तो सुदर्शनचक्र आप ही कर लेगा । भगवान् अपने भक्तों-को कभी छोड़ते ही नहीं ।

६०९—हरिका नाम ही बीज है और हरिका नाम ही फल है । यही सारा पुण्य और सारा धर्म है । सब कलाओंका यही सार-मर्म है । निर्लज्ज नामसंकीर्तनमें सब रसोंका आनन्द एक साथ आता है ।

६१०—सब तीर्थोंकी मुकुटमणि यह हरिकथा है—यह ऊर्ध्ववाहिनी परमामृतकी धारा भगवान्‌के सामने बहती रहती है । भगवान्‌पर इस सुधा-धाराका अभिषेक होता रहता है ।

भूतकी तरह है; जिसपर यह सवार होता है उसकी विवेकशक्तिको नष्ट कर देता है, वह शिष्टता और शान्तिसे हाथ धो बैठता है तथा उसके मुख और शरीरकी कान्तिका भी नाश हो जाता है। कई बार क्रोधी पुरुष दूसरेकी हिंसा और आत्मघाततक कर बैठते हैं। अतः जो लोग इस दारुण पापके चंगुलमें फँसे हुए हैं वे कभी सुखी नहीं हो सकते।

क्रोधी मनुष्यको अपनी इच्छाके विरुद्ध बातें सुनने और सहनेकी बिलकुल आदत ही नहीं होती। इसलिये उसके लिये सामाजिक जीवन दुःखमय हो जाता है और वह भी समाजके लिये भाररूप हो जाता है। उसे विचारना चाहिये कि जब मैं सबके मनके अनुकूल नहीं चल सकता तो मुझे ऐसी इच्छा रखनेका ही क्या हक़ है कि सब लोग मेरे मनके अनुकूल चलें। अतः जिस प्रकार एक बगीचेमें विभिन्न प्रकारके वृक्ष उसकी शोभाको बढ़ानेवाले ही होते हैं उसी प्रकार मनुष्योंकी विभिन्न प्रकृतियाँ भी इस वैचित्र्यपूर्ण जगत्‌की शोभा ही हैं। हाँ, यदि हमारे विचारसे कोई बात सब लोगोंके लिये वस्तुतः हितकर है तो हमें उसे सुझा अवश्य देना चाहिये; किन्तु यह सब करना चाहिये प्रेम और सहानुभूतिके बलपर, किसी प्रकारकी बरजोरी या हठके बलपर नहीं।

देखो सुमति! आजकल बहुत-से लोग समालोचनाके नामपर दूसरोंको खरी-खोटी सुनानेमें ही अपना गौरव मानते हैं। परन्तु इससे समाजमें असन्तोष फैलता है। मान लो कि हमारी दृष्टिमें किसीकी कोई कृति या व्यवहार दोषपूर्ण है तो हमें यह बात उसे ऐसे ढंगसे सुझानी

गुणगानमें मग्न हो जाओ, संसार जो हौआ बनकर सामने आया है इसे भगा दो और इसी देहसे, इन्हीं आँखोंसे मुक्तिका आनन्द लूटो।

६१८—दिन-रातका पता नहीं। यहाँ तो अखण्ड ज्योति जगमगा रही है। इसका आनन्द जैसे हिलोरें मारता है उसके सुख-का वर्णन कहाँतक करूँ ?

६१९—श्रीहरिके प्रसादसे सब दुःख नष्ट हो जाते हैं। यही भव-रोगकी ओषधि है। जन्म, जरा, सब व्याधि और मृत्यु इससे दूर हो जाती हैं। उस श्यामसुन्दरकी छविको अपनी आँखों देख लो, कुटिल, खल, कामियोंका स्पर्श अपनेको न होने दो, मुखसे निरन्तर विष्णुसहस्रनामकी माला फेरते रहो।

६२०—अनृत बोलना छोड़ दो और सावधान होकर कुसंगसे बचते रहो।

६२१—अनुताप करते हुए भगवान्‌से यह कहो, मैं तो अनाथ हूँ, अपराधी हूँ, कर्महीन हूँ, मन्दमति और जडबुद्धि हूँ। हे कृपानिधे! हे मेरे माता-पिता! अपनी वाणीसे कभी मैंने तुम्हें याद नहीं किया। तुम्हारा गुणगान भी न सुना और न गाया। अपना हित छोड़ लोकलाजके पीछे मरा किया। हरि-कीर्तन, संतोंका संग कभी मुझे अच्छा नहीं लगा। परनिन्दामें बड़ी रुचि थी, दूसरोंकी खूब निन्दा की। परोपकार न मैंने किया न दूसरोंसे कभी कराया। दूसरोंको पीड़ा पहुँचानेमें कभी दया न आयी। ऐसा व्यवसाय किया जो न करना चाहिये और उससे पाया तो क्या, अपने कुटुम्बका भार ढोता फिरा।

सुव्यवस्था होनेकी तो स्वप्नमें भी आशा नहीं की जा सकती। ऐसे घर कलहके क्षेत्र हो जाते हैं और कुछ ही दिनोंमें उनकी सारी श्री और ख्याति नष्ट हो जाती है।

सुमति! यह पापी क्रोध तो सब प्रकार त्यागने ही योग्य है। सबसे अच्छी तरकीब यह है कि जब कभी यह आनेको हो तब चुप हो जाय। बोले ही नहीं। यथासम्भव क्रोधकी क्रिया न होने दे। इससे इसका बल घट जायगा। क्रोध जो करता है वही अपना सत्यानाश करता है, क्रोध जिसपर किया जाता है उसका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। ऐसा समझकर यह प्रण कर लेना चाहिये कि मैं क्रोध करके अपने चित्तको क्यों जलाऊँ? जिसपर मैं क्रोध करने चला हूँ वह तो दयाका पात्र है। ऐसे विचारोंसे क्रोध शान्त हो जायगा। इसके सिवा व्यर्थ मद और अभिमानको त्याग कर सर्वत्र भगवद्बुद्धि करे, क्रोधके दुष्परिणामोंपर विचार करे, क्रोधियोंकी दुर्गति देखे और ऐसा नियम कर ले कि क्रोध आनेपर कम-से-कम एक समय उपवास करूँगा। इसी प्रकार क्रोधको निकालनेका संकल्प रखकर प्रयत्न करनेसे धीरे-धीरे उससे छुटकारा मिल जायगा। गोस्वामी तुलसीदासजीका यह दोहा बराबर याद रखना चाहिये—

उमा जे रामचरन-रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥

सुमति! इस प्रकार मैंने तुम्हें मनुजीके बताये हुए धर्मके दस लक्षणोंकी व्याख्या सुनायी। यदि तुम सच्चा सुख प्राप्त करना

६२६—संगी-साथी एक-एक करके चले। अब तुम्हारी भी बारी आवेगी। क्या गाफ़िल होकर बैठे हो? काल सिरपर सवार है, अब भी सावधान हो जाओ, इससे निस्तार पानेका कुछ उपाय करो।

६२७—तुम्हारी देह तो नहीं रहेगी, इसे काल खा जायगा। अब भी जागो, नहीं तो धोखा खाओगे, नशेके बीच मारे जाओगे।

६२८—पर-उपकार करो, पर-निन्दा मत करो, पर-स्त्रियोंको माँ-बहन समझो। प्राणिमात्रमें दया-भाव रखो।

६२९—घर-गृहस्थीके प्रपञ्चमें लगे रहते हुए भी एक बात न भूलना—यह क्षणकालीन द्रव्य, दारा और परिवार तुम्हारा नहीं है। अन्तकालमें जो तुम्हारा होगा वह तो एक श्रीहरि ही हैं, उसीको जाकर पकड़ो।

६३०—भगवान्‌को चाहते हो तो चित्तको मलिन क्यों रखते हो? अभिमान, अकड़, आलस्य, लोकलज्जा, चञ्चलता, असद्-व्यवहार, मनोमालिन्य इत्यादि कूड़ा-करकट किसलिये जमा किये हुए हो? केवल बाहरी भेष बना लेनेसे थोड़े ही कोई भक्त होता है?

६३१—आग लगे उस बनावटी स्वाँगमें जिसके भीतर कालिमा भरी हुई है। वस्त्रोंको लपेटकर पेट बड़ा कर लेनेसे, गर्भवती होनेकी बात उड़ानेसे, दोहदका स्वाँग भरनेसे बच्चा थोड़े ही पैदा होता है, केवल हँसी होती है।

६३२—इन्द्रियोंका नियमन नहीं, मुखमें नाम नहीं; ऐसा

६४०—भक्तिकी जाति ऐसी है कि सर्वस्वसे हाथ धोना पड़ता है ।

६४१—नेत्रोंमें अश्रु-बिन्दु नहीं, हृदयमें छटपटाहट नहीं तो भक्ति काहेकी ? वह तो भक्तिकी विडम्बना है, व्यर्थका जन-मन-रञ्जन है । जबतक दृष्टिसे दृष्टि नहीं मिली तबतक मिलन नहीं होता ।

६४२—अहंता नष्ट हो, भगवान्‌के स्तुतिपाठमें सच्ची भक्ति हो, हृदयकी सच्ची लगन हो, हरिचरणोंमें पूरी निष्ठा हो । तब काम बने ।

६४३—सेवकके तनमें जबतक प्राण हैं तबतक स्वामीकी आज्ञा ही उसके लिये प्रमाण है ।

६४४—भगवान्‌के होकर रहो । ज्ञानलव-दुर्विदग्ध तार्किकों-की अपेक्षा अपढ़, अनजान भोले-भाले लोग ही अच्छे होते हैं । मूर्ख बल्कि अच्छे हैं, ये विद्वान् तार्किक तो किसी कामके नहीं ।

६४५—भगवान्‌के लिये सर्वस्वसे हाथ धोनेको तैयार हो जाना पूर्वपुण्यके बिना नसीब नहीं होता ।

६४६—इस संसारमें आये हो तो अब उठो, जल्दी करो । और उन उदार प्रभुकी शरणमें जाओ । यह देह तो देवताओंकी है, धन सारा कुवेरका है, इसमें मनुष्यका क्या है ? देने-दिलानेवाला, ले जाने-लिवा ले जानेवाला तो कोई और ही है । इसका यहाँ क्या धरा है ? रे मूरख ! क्यों नाशवान्‌के पीछे भगवान्‌की ओर पीठ फेरता है ?

विषयोंके साथ मिलकर विषयाकार ही बन गया था और उसने मुझे दुःखके समुद्रमें डुबा रक्खा था। अब मैं भी शान्तिदेवीके बताये हुए मार्गसे चलनेका प्रयत्न करूँगी। शरीरको जीव-सेवामें और मनको प्रभुके भजनमें लगाऊँगी। हे प्रभो! हे अन्तर्यामी! मेरे चित्तका हाल आपसे कुछ छिपा नहीं है। हे दयालो! दया करके मेरे हृदयसे विषयासक्तिके संकल्पोंको दूर कर दीजिये। अपनी इन्द्रियोंको भोगोंमें जानेसे रोक सकूँ ऐसी सामर्थ्य दीजिये। मैं मलिन बुद्धिके कारण यह नहीं जानती थी कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है? इसीसे बार-बार कहती थी कि मर जाऊँ तो अच्छा हो। परन्तु नहीं, अब मैं ऐसा न कहूँगी, बल्कि किसी ज्ञानी गुरुकी खोज करूँगी और अपने सुखस्वरूपमें स्थित रहनेका उपाय पूछूँगी। मैं अपने धर्मको न जानकर ही अबतक भटकती रही। अब इस मनुष्य-जन्मको सार्थक करूँगी। यदि अपने रूपको पहचानना—अपने स्वरूपको अनुभव करना ही मनुष्य-शरीरका उद्देश्य है, तो मैं अब मरनेकी इच्छा क्यों करूँ? आज ही मौत आ जाय अथवा बहुत दिनोंतक जीवित रहूँ, इसका चिन्तन ही मैं क्यों करूँ? मुझे तो सब प्रकार स्वरूप-साक्षात्कारका ही प्रयत्न करना चाहिये।

ओहो! मैंने नाना प्रकारकी इच्छाएँ कीं परन्तु ऐसी कौन-सी इच्छा है जो निर्विघ्न पूरी हुई हो। दुःख और सुख इन दोनोंका कारण इच्छा ही है। मैंने अपने जीवनमें खूब देख लिया कि जो वस्तु चाहती हूँ वह मिल गयी तो मिलनेसे जो सुख होता है उससे कहीं अधिक उसके कारण दुःख भोगना पड़ता है। दुःखोंसे

६५४—सकुचकर ऐसे छोटे क्यों बन गये हो ? ब्रह्माण्डका आचमन कर लो। पारण करके संसारसे हाथ धो लो। बहुत देर हुई अब देर मत करो।

६५५—शास्त्र जिस चीजको छोड़ देनेको कहे, उसे, चाहे वह राज्य ही क्यों न हो, तृणवत् त्याग दे। शास्त्र जिसे ग्रहण करनेको कहे, चाहे वह विष ही क्यों न हो, उसे जरूर ग्रहण करे।

६५६—मार्गमें अन्धेके आगे जैसे आँखवाला चलकर उसे रास्ता बताता है उसी तरह संत महापुरुष भी धर्मका आचरण करके जो अज्ञानी हैं उन्हें धर्मका तत्त्व बतलाते हैं।

६५७—संत पहाड़की चोटीपर खड़े होकर पुकार रहे हैं—भगवान्‌की शरण लो, प्राणिमात्रमें उसीका भजन करो। गो, खर, गज, श्वान सबको समानरूपसे वन्दन करो।

६५८—जन्मके प्रसंगसे स्त्री-देहका जो स्पर्श हुआ सो हुआ, पर उसके बाद सम्पूर्ण जीवनमें कभी वह स्पर्श न हो—ऐसा जिसका कठिन ब्रह्मचर्य है वही सच्चा ब्रह्मचारी है।

६५९—फिर चलो, फिर चलो रे जीव ! नहीं तो गोते खाओगे। मायानदीकी इस बाढ़में बह जाओगे। भवनदीका पानी, प्यारे ! बड़े वेगसे खींचता है और बड़े-बड़े तैराकोंको उठाकर नीचे गिराता है। संसार क्षणभङ्गुर है, इसका कोई भरोसा नहीं। यह दुर्लभ नरतनु छूट जायगा तब पीछे पछताओगे।

६६०—जो गये हुएका स्मरण नहीं करता, मिले हुएकी

अपनेको खड़े पाया। उस समय एक देवीने पीछे उसका आँचल पकड़कर कहा, 'सुमति! तुम इन वस्त्र और आभूषणोंको उतार दो। तुम्हें इसी समय चार योद्धाओंसे युद्ध करना होगा। लो, मैं तुम्हें यह वस्त्र देती हूँ, इसे पहन लो।'

देवीके कहनेसे सुमतिने अपने अङ्गोंपर दृष्टि डाली तो अपनेको दिव्य वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित पाया। उसने वे वस्त्र और आभूषण उतार दिये और उस देवीके दिये साधारण वस्त्र पहन लिये।

इतनेमें वह देवी तो न जाने कहाँ चली गयी, उसने अपने सामने घोड़ोंपर सवार हाथमें तलवार लिये चार योद्धा देखे। उन्हें देखकर सुमति हाथ जोड़कर आँखें बंद किये प्रार्थना करने लगी, 'प्रभो! मुझे इन योद्धाओंसे युद्ध करना है—यह तो उस देवीने बताया; किन्तु मैं न तो युद्धविद्या ही जानती हूँ और न मेरे पास कोई शस्त्र ही है। फिर किस प्रकार इनसे युद्ध करूँगी? इसी समय पहली मंजिलकी खिड़की खुली; और एक दिव्यस्वरूप देवीने उसे खड्ग देते हुए कहा, 'लो सुमति! इससे तुम इन चारों योद्धाओंको जीत लोगी।'

फिर वह खिड़की वंद हो गयी। अब युद्ध आरम्भ हुआ और बड़ी देरतक होता रहा। अन्तमें सुमतिने चारों ही योद्धाओंको परास्त कर दिया। उसने देखा कि उनकी पीठपर 'काम', 'क्रोध', 'लोभ' और 'मोह'—ये नाम लिखे हैं। फिर सुमतिने अपनी तलवारकी ओर देखा तो उसपर 'वैराग्य' शब्द लिखा हुआ था। युद्ध समाप्त होनेपर सुमतिकी इच्छा हुई कि ऊपर चलकर उन देवीजीके भी दर्शन

चलना जैसे सीधा होता है वैसे ही उसका भाव सरल होता है, उसमें शङ्का या आकाङ्क्षा नहीं होती।

६६७—माँके पास जाते बच्चेको जैसे कोई सोच-सङ्कोच नहीं होता, वैसे ही संतके लिये लोगोंको अपना मन देते कोई शङ्का नहीं होती। उसके लिये कोई कोना-अँतरा नहीं हुआ करता। उसकी दृष्टिमें कपट नहीं होता, बोलनेमें सन्देह नहीं होता। दसों इन्द्रियाँ उसकी सरल, निष्प्रपञ्च और निर्मल होती हैं और उसके पञ्च प्राणोंके स्तर आठों प्रहर मुक्त रहते हैं।

६६८—भागते हुए मेघोंके साथ आकाश नहीं दौड़ता, वैसे ही संत पुरुषका मन चलते हुए शरीरके साथ नहीं चला करता, ध्रुव-जैसा स्थिर रहता है।

६६९—समुद्रमें गङ्गाजल जैसे मिलकर भी मिलता रहता है वैसे ही संत पुरुष भगवत्स्वरूप होकर भी भगवान्‌को सर्वस्व देकर भजता रहता है।

६७०—जो तीर्थोंमें, पवित्र जलाशयोंके किनारे, सुन्दर तपोवनोंमें और गुहाओंमें रहना पसन्द करता है, एकान्तसे जिसकी अत्यन्त प्रीति होती और जनपदसे जिसका जी ऊबा हुआ होता है उसे ज्ञानकी मनुष्याकार मूर्त्ति ही जानो।

६७१—पञ्चतत्त्वोंकी देह बनी और फिर कर्मोंके गुणोंसे बँधकर जन्म-मृत्युका चक्कर काट रही है। कालानलके कुण्डमें यह मक्खनकी आहुति है। मक्खीका पंख हिलते-न-हिलते इसका काम तमाम हो जाता है। इस देहकी तो यह दशा है!

अगले दिन—

दूसरे दिन जब शान्तिदेवी सुमतिके घर आयीं तो उन्होंने कहा—'सुमति ! तुमने विचारा कि इस संसारमें सुखी जीवन बनानेके क्या उपाय हैं ? क्या तुमने उन दुर्गुणोंकी जड़को पहचाना जिन्होंने मानव-जीवनको दुःखमय बना रक्खा है ?'

सुमति—'बहिनजी ! कल आपके घर जानेपर मैं यह विचार कर रही थी कि बाह्य वस्तुओंमें राग करनेसे इच्छाओंका जाल-सा बिछ जाता है। वे सारी इच्छाएँ पूरी तो हो नहीं सकतीं, इसलिये मनुष्यको दुःख आ घेरता है। जब कामनाओंकी प्रबलता होती है

देखता, नदियाँ समुद्रको नहीं देखतीं, अपनी छाया अपनेसें अलग करके पकड़ी नहीं जाती वैसे ही जिस ज्ञानको शिवादिसे लेकर तृणपर्यन्त अपनेसे भिन्न नहीं दिखायी देते वह सात्त्विक ज्ञान है, वही मोक्ष-लक्ष्मीका भुवन है।

६७८—अरे! अदने-से राजाके साथ सोनेवाली दासी भी राजाकी बराबरी करती है! फिर मैं तो साक्षात् विश्वेश्वर हूँ। मेरे मिलनेपर भी जीव-ग्रन्थि न छूटे ऐसा कैसे हो सकता है? ऐसा निपट झूठ कानमें भी न पड़ने दो।

६७९—दोनों दर्पण उठकर, एक-दूसरेके पास आमने-सामने आ गये। अब बताइये, कौन किसको देख रहा है?

६८०—हौएसे डरना बचपनमें होता है। पर जो बच्चे नहीं हैं उनके लिये हौआ क्या? वैसे ही मृत्युको भी कौन माने?

६८१—फल देकर फूल सूख जाता है, फल रस पकनेपर नष्ट होता है। रस भी तृप्ति देकर समाप्त होता है। आहुतिको अग्निमें डालकर हाथ हट जाता है। गीत आनन्द पाकर मौन हो जाता है। वैसे ही सत्-चित्-आनन्द-पद द्रष्टाको दिखाकर मौन हो जाते हैं।

६८२—भगवान्‌के द्वारपर पलभर तो खड़े रहो।

६८३—चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण हरिके ही गीत गाते हैं।

६८४—दिन-रात प्रपञ्चके लिये इतना कष्ट करते हो! भगवान्‌को क्यों नहीं भजते?

बराबर राजसिक विचार उठते रहते थे और मैं दिन-रात यह सोचा करता कि जब मुझे राज्य मिलेगा तब मैं अन्य राजधानियोंको भी अपने अधीन कर लूँगा, यह कर लूँगा, वह कर लूँगा और एक बड़ा सम्राट् बन जाऊँगा।

एक समय घूमता-घामता एक महात्माके आश्रमकी ओर जा निकला। वहाँ कुछ मनुष्य एकत्रित थे। मैं भी महात्माको प्रणाम करके समीप ही एक ओर जा बैठा। महात्मा बोले—'देखो बेटा! लक्ष्मी, जिसके लिये जीव निरन्तर उद्विग्न रहता है और रात-दिन जिसके बढ़ानेकी ही धुनमें लगा रहता है, स्वरूपसे चञ्चला ही है। इसमें मूर्खोंको ही आस्था होती है। इसका कुछ भी भरोसा नहीं किया जा सकता। आज जो लखपति, करोड़पति है कल ही लक्ष्मी उसे त्याग जाती है। अरे, नाशवान् धनकी आशा करनेवालो! चेतो और उस परम धनकी खोज करो जो सदा तुम्हारे साथ रह सकता है।'

इतना सुनते ही मेरे चित्तसे राजसुखकी आशा एकदम निकल गयी और मैंने समय पाकर गुरुदेवकी शरण ली। मेरे गुरुदेव ब्रह्मज्ञानी थे। मेरी जिज्ञासा देखकर उन्होंने उपदेश दिया, जिससे मेरे चित्तको बड़ी शान्ति मिली। अब मैं घर छोड़कर ऐसे ही भ्रमण करता रहता हूँ। मेरे घर छोड़ देनेपर उस राजधानीका क्या हुआ वह भी सुनो। एक दिन ऐसा भूकम्प आया कि महल, मकान आदि सभी नष्ट-भ्रष्ट हो गये। धन और जायदादकी क्या कहें, बहुत-से स्त्री, पुरुष और बच्चे भी उसमें

६९५-हे गोपाल ! हे हरि ! जगत्रयजीवन ! यह मन तेरे ही ध्यानमें लग जाय, एक क्षण भी खाली न जाय ।

६९६-तन-मंन तेरे ही चरणोंमें शरणालङ्कृत किये हैं। रुक्मिणीदेविवर मेरे बाप हैं। मैं और कुछ नहीं जानता ।

६९७-हरि आदिमें है, हरि अन्तमें है, हरि सब भूतोंमें व्यापक है। हरिको जानो, हरिको बखानो, वही मेरे माँ-बाप हैं ।

६९८-हृदयमें भगवान्के निराकार रूपका ध्यान, नेत्रोंसे भगवत्-लीलाका दर्शन और जीभसे राम-नामका जप । इतना हो सके तो फिर और करना ही क्या रहा ?

६९९-श्रीरामके नामका स्मरण करो । यह सञ्जीवनी ओषधि है।

७००-जिसकी कहीं गति नहीं उसके लिये एकमात्र अवलम्बन राम-नाम है ।

७०१-अलख-अलख क्या बकता फिरता है; एक सीधा मुक्तिका मार्ग श्रीरामनाम् जप ।

७०२-अनेक जन्मोंकी बिगड़ी हुई आज अभी सुधर जाय यदि तू बुरी संगति छोड़कर श्रीराम-नामको जप ।

७०३-राम-नाम स्मरण करनेसे सब सिद्धियाँ हाथ आ जाती हैं और प्रत्येक पगपर परम आनन्द प्राप्त होता है ।

७०४-रामका मुझे सहारा हो, रामका बल हो, राम-नाममें

दादीजीके ऊपर दुःखका पहाड़ ही टूट पड़ा। उनकी माँ, बहिन और भाई आदि भी उस समय वहीं थे। स्वयं उनकी माताने कुंजियाँ अपने हाथों कर लीं और उन्होंने बाबाजीका अन्तिम संस्कार कराया। पीछे सारी जमींदारी आदिका हिसाब और धन-आभूषण आदिकी कुंजियाँ उनके भाईके पास रहीं। देखो भाई! इस संसारमें किसीका क्या भरोसा? दादीके सहोदर भाइयोंने उस लाखोंकी जायदादको खाकमें मिला दिया। एक समय था जब मेरी दादीके पास धनकी कुछ भी कमी नहीं थी और वे रानियोंका-सा ठाट-बाट रखती थीं। किन्तु अब बिल्कुल दरिद्रका जीवन बिता रही हैं। मुझे एक साहूकारकी दूकानमें नौकरी मिल गयी है, उसीसे सबका किसी प्रकार निर्वाह हो जाता है।'

इतनी बात सुनकर शान्तिदेवीने कहा, बहिन! उन दोनों यात्रियोंने जब यह आप-बीती गाथा सुनायी तो उनकी बात सुनकर मेरे मनमें भी वैराग्य हुआ और मेरा चित्त संसारी वस्तुओंसे उपराम हो गया। घरके सब धन्धे मैं अब भी करती हूँ परन्तु यह कभी नहीं भूलती कि इस संसारकी किसी भी वस्तुमें स्थायी सुख नहीं है। सब काम उदासीन चित्तसे ही करती हूँ। मुझे किसी भी कर्मसे न बहुत सुख होता है और न विशेष दुःख ही होता है।

जिस समय मनुष्यको सच्चे वैराग्यकी प्राप्ति हो जाती है उस समय वह अपनेको बाधाओंसे रहित पाता है और आनन्दमग्न हो जाता है। बहिन! इस विषयमें मैं तुम्हें एक सच्चे त्यागी महात्मा-की कथा सुनाती हूँ।

७१३—जन्मके पहले तू ईश्वरका जितना प्यारा था उतना ही मृत्युपर्यन्त वना रहे ऐसा आचरण कर ।

७१४—धन-दौलत कमानेके पीछे क्यों पड़े हुए हो ? तुम्हारी जरूरियातोंको पूरा करने और तुम्हारी देखभाल रखनेका सारा भार तो उस ईश्वरने ही ले रक्खा है । यदि उसका भरोसा करोगे तो सब तरहसे शान्ति और सुख पाओगे ।

७१५—जो इस नाशवान् संसारमें आसक्त नहीं है वही अनुभव-सिद्ध ज्ञानी ऋषि है । तल्लीन होकर ईश्वरका गुण गाना, मत्त होकर संगीत सुनना और प्रभुकी अधीनता मानकर काम करना ही संतका धर्म है ।

७१६—प्रायश्चित्तकी तीन सीढ़ियाँ हैं—आत्मग्लानि, दूसरी वार पाप न करनेका निश्चय और आत्मशुद्धि ।

७१७—प्रभुके मार्गमें प्राणतक देनेकी तैयारी न हो तो उसके प्रति प्रेम है ऐसा मानना ही नहीं चाहिये ।

७१८—ईश्वरमें निमग्न होनेमें ही अपने मनका नाश है ।

७१९—अन्तःकरणमें उपजा हुआ ईश्वर-दर्शनका एक कण-जितना उत्साह भी स्वर्गके लाखों मन्दिरोंमें जानेकी मिठाससे भी अधिक मीठा है ।

७२०—सच्चा संत जब बाहरसे चुपचाप होता है तब वह भीतर-ही-भीतर ईश्वरसे बात करता रहता है और जब उसके नेत्र मुँदे होते हैं तब वह ईश्वरकी महिमा अथवा उसके स्वरूपको देखता रहता है ।

बड़ी कृपा की है जो आपके दर्शन हुए। अब आप मेरे साथ महलोंमें पधार कर मुझे शान्तिका उपाय बताइये।'

महात्मा—'राजन्! यदि शान्ति चाहते हो तो रागको छोड़ दो।'

राजा—'महाराज! आप मेरे साथ महलोंमें चलिये, वहाँ आपके आज्ञानुसार मैं सब प्रकारकी सुविधा कर दूँगा। आपको कोई किसी प्रकारका कष्ट न होगा।'

महात्मा—'नहीं, राजन्! हमारे लिये तो जंगल और बस्ती समान ही है। हमें कहाँ क्या कष्ट होगा। कष्टका मूल तो स्पृहा ही है।'

इस प्रकार महात्माजीके बहुत समझानेपर भी राजाको उनके कथनमें विश्वास न हुआ। उसने सोचा, अभी इस भोले साधुको महलोंके सुखका क्या पता? इसीसे इतना वैराग्य प्रकट कर रहा है। जिस समय वे राजसी भोग मिलेंगे तो सारी निःस्पृहता धरी रह जायगी। इसलिये उसने आग्रह करते हुए महात्मासे फिर कहा, 'जब आपको जंगल और बस्ती बराबर ही है तो मेरे साथ चलनेमें कोई आपत्ति भी क्यों होनी चाहिये?' इस प्रकार जब राजाने बहुत आग्रह किया तो महात्मा उसके साथ चलनेको तैयार हो गये। उनके शुद्ध अन्तःकरणमें राजाके कल्याणका संकल्प जाग्रत् हो गया और वे राजाके साथ ही उसके हाथीपर सवार होकर महलोंकी ओर चल दिये।

राजाने बनावटी श्रद्धा प्रकट करते हुए कहा, 'भगवन्! मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आप राजधानीमें चलकर वहाँकी भूमिको

७२९—जो मनुष्य लौकिक लालसाके वशमें होकर ऋषि-मुनियों-के हृदयस्थ हरिकी आवाजकी अवगणना करता है उसे तो ग्लानिका कफ़न ओढ़कर अपमानकी श्मशान-भूमिमें ही जलना पड़ता है। और जो इन्द्रियों और भोगेच्छाको दुर्बल बनाकर लौकिक पदार्थोंसे दूर रहता है वह सत्य, सुख, शान्तिकी चादर ओढ़कर सम्मानकी भूमिमें, स्वयं श्रीहरिकी गोदमें सो जाता है।

७३०—ईश्वरको जाननेवालेका हृदय निर्मल काँचकी हाँडीमें जलते हुए दीपकके समान है। उसका प्रकाश सर्वत्र फैलता है। खुद उसे तो फिर डर ही कैसा ?

७३१—इन असंख्य तारों और नभोमण्डलके सिरजनहारकी नजर तू जहाँ कहीं भी होगा वहीं रहेगी—ऐसा विचारकर सदा-सर्वदा सावधान रहना।

७३२—किन-किन बातोंसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है ? गूँगे, बहरे और अन्धेपनसे। प्रभुके सिवा न कुछ बोलो, न सुनो और न देखो।

७३३—मनुष्यका सच्चा कर्त्तव्य क्या है ? ईश्वरके सिवा किसी दूसरी चीजसे प्रीति न जोड़ना।

७३४—ईश्वरके भजन-पूजनमें जो दुनियाकी सारी चीजोंको भूल जाता है उसे सभी चीजोंमें ईश्वर-ही-ईश्वर दिखलायी देने लगता है।

७३५—सभी हालतोंमें प्रभु और प्रभुभक्तोंका दास होकर रहना ही अनन्य और एकनिष्ठ भक्ति करना है।

रहा था तब उन्होंने कहा, 'अब हमें जाने दो।' तब राजा उन्हें तुरन्त छोड़ आनेको राजी हो गया। किन्तु उस समय भी महात्माजीको प्रसन्नवदन देखकर वह चकित हो गया और सोचने लगा, 'इनके पास ऐसी क्या वस्तु है जो इन्हें जंगलमें इतना सुखी बनाये रखती है?' फिर उसने सोचा, सम्भव है इन्होंने ऊपरी मनसे कह दिया हो, इनका चित्त जानता ही होगा कि जंगलमें बड़ा कष्ट है और यहाँ सब प्रकारका सुख है। अच्छा चलूँ और इनके सवारी आदिका प्रबन्ध कराऊँ। यदि जानेके समय भी इनके मुखपर उदासी न आवे तो जानूँगा कि ये सच्चे त्यागी महात्मा हैं।

बस, उसने सेवकको सवारी तैयार करनेकी आज्ञा दी और थोड़ी ही देरीमें सवारी तैयार होकर महलके द्वारपर आ गयी। तब राजाने कहा, 'महाराज! चलिये! चलिये!' महात्माजी तुरंत चलनेके लिये तैयार हो गये। उस समय भी उनका मुख वैसा ही प्रसन्न और शान्त देखकर राजाने कहा, 'महाराज! मैं तो समझता था कि अब जंगलमें जानेसे आप उदास होंगे, परन्तु देखता हूँ आपके चित्तमें तनिक भी खेद नहीं है इससे जान पड़ता है आपके पास कोई ऐसी वस्तु है जो इन राजसिक भोगोंसे भी अधिक सुखमयी है। जिसके कारण आप जंगल और महलको एक समान ही समझते हैं। भगवन्! जिसके कारण आप सर्वदा आनन्दमग्न रहते हैं और महल तथा जंगलको समान समझते हैं, क्या वह अलौकिक वस्तु मुझे मिल सकती है?'

इतना सुनकर महात्मा बोले, 'हाँ, हाँ मिल क्यों नहीं सकती? तुम बाहरी वस्तुओंमें सुख समझते हो और मैं जानता हूँ कि वह

देखने लायक उसीको समझता है, उसने सब कुछ सुन लिया है, देख लिया है और जान लिया है।

७४५—अगर तुम दुनियाकी खोजमें जाओगे तो दुनिया तुमपर चढ़ बैठेगी; उससे विमुख होओगे तब ही उसे पार कर सकोगे।

७४६—फकीर वह है जिसे आज और कल—किसी दिनकी परवा नहीं। जो अपने और प्रभुके सम्बन्धके आगे लोक और परलोक दोनोंको तुच्छ समझता है।

७४७—बिना ईश्वरका नाम लिये कोई भी बात विचारने अथवा करनेसे बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ता है।

७४८—जो प्रभुको पाता है वह अपने रूपमें न रहकर प्रभुके रूपमें समा जाता है।

७४९—मुँह बन्द रखो। ईश्वरके सिवा दूसरी बात ही मत करो। मनमें भी ईश्वरके सिवा और किसी बातका चिन्तन न करो। इन्द्रियों और अपने कार्योंके द्वारा वैसे ही काम करो जिनसे ईश्वर खुश हो।

७५०—एकान्तमें प्रभुके साथ बैठनेवालेका लक्षण है दुनिया-की सब वस्तुओं और दूसरे सब मनुष्योंकी अपेक्षा प्रभुहीको अधिक प्यार करना।

७५१—जो छोटे-छोटे प्राणियोंसे प्यार नहीं कर सकता वह ईश्वरसे क्या प्यार करेगा ?

७५२—संतों और भक्तोंकी सेवा करना, उनके उपदेशोंका

राजा—'मैं उस समय भजन कर रहा था।'

महात्मा—'भजन करते समय क्या कह रहे थे?'

राजा—'मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता था कि भगवन्! मेरे शत्रुओंको मुझसे दूर रखिये और ऐसी कृपा कीजिये कि राज्य निष्कण्टक बना रहे। धन, आयु आदि वस्तुओंके लिये तो मैं भगवान्से नित्य प्रार्थना करता हूँ।'

महात्मा—'ठीक है, परन्तु राजन्! यह धन और राज्यादि तो न सदा किसीके रहे हैं और न रहेंगे ही। भला, यह तो बताओ तुमसे पहले यहाँ कौन राज्य करता था?'

राजा—'मेरे पिताजी।'

महात्मा—'और उनसे पहले?'

राजा—'मेरा पितामह।'

महात्मा—'अच्छा जब तुम्हारा शरीर छूट जायगा तो कौन राज्य करेगा?'

राजा—'तब मेरा लड़का राज्य करेगा।'

महात्मा—'राजन्! इससे यह तो तुम समझ ही सकते हो कि यह राज्य न सदासे तुम्हारा है और न सदा रहेगा। तब तुम तो इसे 'मेरा राज्य' कहते हो यही तुम्हारी अशान्तिका कारण है। तुम प्रार्थना करते समय भगवान्से भगवान्को ही माँगा करो। नाशवान् वस्तुओंके लिये प्रार्थना मत किया करो। जो प्रारब्ध-भोग हैं दुःख अथवा सुख—वे तो बिना माँगे भी मिलेंगे ही। यदि तुम शान्ति चाहो तो अपने मनको सब ओरसे रोककर केवल परमात्माका ही ध्यान किया करो। किसी संसारी वस्तुको

तो सदा निर्निमेष दृष्टिसे बादलकी ओर ही ताकता रहता है। इसी प्रकार हे नाथ! मेरी अभिलाषाके एकमात्र विषय तुम ही हो। जो तुम्हें चाहता है उसे त्रिभुवनकी सम्पत्तिसे कोई मतलब नहीं।

७५८—जिसका चित्त अखिल सौन्दर्यके भण्डार भगवान् नारायणके चरण-कमलोंका चञ्चरीक बन चुका है वह क्या एक नारीके रूपपर आसक्त हो सकता है? जबतक जगत्के किसी भी पदार्थमें आसक्ति है तबतक प्रभुचरणोंमें प्रीति कहाँ?

७५९—हे प्रभो! अब ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी वाणी केवल तुम्हारा ही गुणगान करे, मेरे हाथ तुम्हारे ही पैर पलोटें, मेरा मस्तक तुम्हारे ही चरणोंमें झुके, मेरे नेत्र सर्वत्र तुम्हारे ही दर्शन करें, मेरे कान तुम्हारे ही गुणोंका श्रवण करें, मेरे चित्तके द्वारा तुम्हारा ही चिन्तन हो और मेरे हृदयको तुम्हारा ही स्पर्श प्राप्त हो।

७६०—किसी जंगली हरिनको फँसानेके लिये पालतू हरिन-की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार भगवान् नारायण भी भक्तोंके द्वारा ही संसारासक्त जीवोंका उद्धार करते हैं।

७६१—जो आदमी अपना सारा संसार और अपने जीवनको प्रभुके अर्पण नहीं कर देता, वह दुनियाके इस भयानक जंगलको पार कर ही नहीं सकता।

७६२—ईश्वरका स्मरण करो तो ऐसा कि फिर दूसरी बार उसे याद ही न करना पड़े।

७६३—शरीर, वाणी, मन तीनों मेरे नहीं। उन्हें तो मैं

रहे हो। तुम्हें मोहने ही भ्रमित कर रक्खा है। भोगकी कामनाएँ ही तुम्हें लोभ, मोह आदि दुर्गुणोंमें फँसाती हैं। जब तुम निष्काम कर्म करोगे, अपने प्रत्येक कर्म भगवान्‌के अर्पण कर दोगे तो धीरे-धीरे तुम्हारा चित्त शान्त हो जायगा।'

महात्माजीने इतनी बातें कहीं, परन्तु राजाकी समझमें कुछ भी न बैठा। वह बोला, 'महाराज! हम गृहस्थोंसे यह निभना असम्भव है, आप तो त्यागी हैं। गृहस्थियोंके बन्धनका आपको अनुभव नहीं है।' इसी प्रकार कुछ और बातें करके राजा अपने महलको चला गया।

इसके पीछे वह कभी-कभी महात्माजीकी कुटीपर जाता रहता था। एक दिन उसे आता देख महात्माजी झटपट एक वृक्षकी डाल पकड़कर लटक गये। राजाने महात्माजीके पास पहुँचकर उन्हें दण्डवत् किया और अपने साथ चलनेके लिये कहा।

महात्मा—'राजन्! क्या करूँ, इस वृक्षने मुझे बाँध रक्खा है।'

राजा—'वाह महाराज! यह आपने खूब कहा! यह वृक्ष तो जड है, आप चेतनको भला कैसे बाँध सकता है?'

महात्मा—'राजन्! ठीक है, यह वृक्ष तो जड है; किन्तु राज्य, धन, महल, सेना तथा पुत्र-कलत्रादि क्या हैं, जिनसे तुम अपनेको बँधा हुआ बताते हो? क्या तुम्हारे संकल्प और कामनाओं-ने ही तुम्हें इनसे नहीं बाँध रक्खा है? मुझे वह मायारूप रस्सी तो दिखाओ, जिससे तुम अपनेको बँधा हुआ बताते हो। जैसे मैं इस वृक्षसे बँधा हूँ वैसे ही तुम मायासे बँधे हुए हो। अन्तर केवल इतना है कि तुम अपनेको बँधा हुआ मानते हो और मैं जानता हूँ

७७१—सारे संसारका एक ग्रास बनाकर भी यदि बालकके मुँहमें दे दिया जाय तो भी वह भूखा ही रहेगा। जिसका मन खान-पान और गहने-कपड़ेमें ही बसा है उसकी स्थिति पशुसे भी गयी-बीती है।

७७२—दुनियाकी सारी चीजोंसे मुँह मोड़कर एकमात्र प्रभुकी ओर लग जाओ। इस दुनियाको आज नहीं तो कल छोड़ना ही है।

७७३—ईश्वर अपने भक्तसे बार-बार कहता है कि तू दुनियासे विमुख हो जा और मेरी ओर आ। बिना मेरी ओर आये तुझे सच्ची शान्ति और सुख नहीं मिलेंगे। कबतक तू मुझसे भागता फिरेगा, कबतक मुझसे विमुख रहेगा?

७७४—पहनने-ओढ़नेमें सादगीका खयाल रखना। शौकीनी-की पोशाक और आडम्बरसे परे ही रहना।

७७५—भक्त जब प्रभुका सर्वभावसे आश्रय लेता है, तभी परमेश्वर उसकी रक्षा, योगक्षेमका सारा भार अपने हाथमें ले लेते हैं।

७७६—ईश्वरपर सतत दृष्टि रखना ही ईश्वरीय ज्ञानका फल है।

७७७—पूरे जागे हुए मनका यही अर्थ है कि ईश्वरके सिवा दूसरी किसी चीजपर चले ही नहीं। जो मन हरिकी प्रीतिमें डूब गया फिर उसे दूसरे किसीकी क्या जरूरत?

७७८—जिनकी सदा ईश्वरकी ओर दृष्टि है और संसारसे जो विरक्त हैं वही ऋषि हैं।

तरह-तरहके विचार करता अपनी राजधानीमें आया और अपने कर्मचारियोंको महात्माजीकी कही हुई बात सुना दी। इससे सर्वत्र बड़ी खलबली मच गयी। सब लोग नाना प्रकारकी सुख-सामग्रियोंसे राजाको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करने लगे। किन्तु उसकी चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। मृत्युके भयने उसके सारे सुखको मिट्टी कर दिया और वह दिनोंदिन दुर्बल होने लगा। आखिर सातवाँ दिन आ ही गया। आज उसकी व्यग्रताकी सीमा नहीं थी। उसे पल-पलपर मृत्युका खटका लगा हुआ था। अन्तमें उसने मन्त्रीको भेजकर महात्माजीको बुलाया। महात्माजीने उसकी ऐसी दयनीय दशा देखकर बहुत प्रेम प्रकट करते हुए पूछा, 'कहो राजन्! क्या हाल है? इतने दीन, दुखी और दुर्बल क्यों दिखायी देते हो, मैंने तो तुम्हें इन दिनों खूब भोग भोगनेकी छुट्टी दे रक्खी थी।'

राजाने कहा, 'भगवन्! भोग भोगनेसे क्या होता है? मेरे चित्तपर तो हर समय मृत्युका भूत सवार रहता था। उसके कारण मुझे पलभरको भी चैन नहीं और न मुझे भोगोंमें ही कोई आनन्द आता था।'

महात्माजी बोले, 'बस, सात दिन मृत्युका स्मरण रहनेसे ही तुम्हें सारे भोग फीके दिखायी देने लगे। मुझे तो हर समय शरीरकी नश्वरताका स्मरण रहता है। फिर मेरा चित्त किसी वस्तुके लिये कैसे लालायित हो सकता है? जब किसी पदार्थमें सुख दिखायी नहीं देता तो उसे पानेकी इच्छा ही क्यों हो? यह निःस्पृहता ही मुझे संसारके सारे बन्धनोंसे मुक्त रखती है और यही वास्तवमें परम सुख है; कहा भी है—'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं

७८६—अहंकारी साधकको 'साधक' नहीं कहा जा सकता, वह तो महा अपराधी है; परन्तु प्रभुकी प्रार्थना करनेवाला एक पापी भी 'साधक' है।

७८७—बिना पश्चात्तापके सच्ची साधनाका आरम्भ नहीं होता। इसीलिये ईश्वरसाधनाका पूर्व अंग है पश्चात्ताप। ईश्वरस्मरण-के समय तो पश्चात्तापके विचारोंको भी दूर कर देना चाहिये जिससे सब इष्ट वस्तुओंका स्थान एक ईश्वर ग्रहण कर ले।

७८८—जिस समय लोग 'उन्मत्त' और 'मस्त' कहकर मेरी निन्दा करेंगे तभी मेरे मनमें गूढ़ तत्त्वज्ञानका उदय होगा।

७८९—सहनशील ऋषि और कृतज्ञ धनवान्‌में श्रेष्ठ कौन? सहनशील ऋषि। धनवान् चाहे जितना भला हो, पर उसका मन लक्ष्मीमें लिप्त रहता है किन्तु एक ऋषिका हृदय तो लगा रहता है अपने प्रभुमें।

७९०—जो मनुष्य जीवन-निर्वाहके लिये नीतिपूर्वक व्यवहार करता है वह भी ईश्वरकी महिमाको समझता है, परन्तु जो मनुष्य ईश्वरके लिये ही जीवन-निर्वाह करता है वह तो ईश्वरको प्राप्त करता है।

७९१—तुम प्रभुको तो जानते हो न? तो अब तुम और कुछ भी न जानो तो कोई हानि नहीं। ईश्वर तुम्हें जानता है न? तो अब कोई दूसरा तुम्हें नहीं जाने तो कोई हानि नहीं।

७९२—जो मनुष्य ईश्वरको छोड़कर दूसरेसे स्नेह करता है वह क्या कभी सुखी हो सकता है?

उन्हींके आदर्शका अनुसरण करो। तुम किसी भी वस्तुको अपनी मत मानो। तुमने स्वयं ही कहा था कि यह राज्य पहले तुम्हारे पिता और पितामह आदिका था और तुम्हारे पीछे इसपर तुम्हारे पुत्रादिका अधिकार रहेगा। तुम्हें तो यह कुछ दिनके लिये प्रबन्ध करनेको मिला है। और इसी प्रकार तुम्हारे पूर्वजोंको भी केवल इसके प्रबन्धका ही अधिकार था। इसके वास्तविक प्रभु तो भगवान् ही हैं। तुम अपनेको उनका कर्मचारी समझकर उनकी आज्ञा पालन करते हुए इसका प्रबन्ध करो। यही तुम्हारा कर्तव्य है और कर्त्तव्यपालन ही मनुष्यके कल्याणका एकमात्र कारण है। देखो, भाई! जिसकी सत्तासे संसारके सारे व्यापार हो रहे हैं, जिसके संकल्पसे यह सारा विश्व खड़ा हुआ है वह अखिलेश्वर ही जीवोंको भिन्न कार्योंमें नियुक्त करता है। तुम सारे क्रियाकलापमें उसीका हाथ देखते हुए उसीकी खोज करो। वह तुम्हारे हृदयमें विराजमान है। उसका साक्षात्कार करनेपर ही तुम्हें अक्षय शान्ति प्राप्त हो सकती है।

राजन्! तुम कहते हो कि मायाने मुझे बाँध रक्खा है, किन्तु हमने आजतक मायाको देखा नहीं है, जरा उसकी सूरत तो दिखाओ। भाई, यह माया-वाया कुछ नहीं है। एकमात्र परमात्मा ही विभिन्नरूपमें सर्वत्र विराजमान है। अपना भ्रम ही माया है और यह भ्रम ही सारे दुःखोंका कारण है। एक लड़का किसी बड़े कमरेके भीतर खड़ा था। उसने आवाज़ लगायी, 'माताजी!' इसके उत्तरमें 'माताजी' ऐसी प्रतिध्वनि हुई। लड़केने फिर कहा 'माताजी' और कमरेसे फिर 'माताजी' ऐसी प्रतिध्वनि हुई। लड़केने समझा कोई दूसरा लड़का मेरी नक़ल कर रहा है। इससे चिढ़कर वह

प्रकारके संगोंका परित्याग करनेमें समर्थ न हो सके तो सज्जन और संत-महात्माओंका ही संग करना चाहिये क्योंकि संगसे जो काम उत्पन्न होता है उसकी ओषधि संत ही हैं।

७९८-भगवत्सेवामें जो अनुकूल पड़े उसीका चिन्तन करना और जो भगवत्तत्त्वोंमें विघातक हों उनका सर्वथा त्याग करना।

७९९-जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रीको इस बातका पूर्ण विश्वास होता है कि जिसने मेरा एक बार अग्निके सम्मुख पाणिग्रहण किया है वह मेरी अवश्य ही रक्षा करेगा, उसी प्रकार श्रीकृष्णपर भरोसा रखना कि वे हमारी अवश्य ही रक्षा करेंगे।

८००-भगवान्‌को आत्मनिवेदन करनेपर उनके प्रति भारी दीनता रखना।

८०१-छायाको छोड़कर असली आनन्दको खोजो, तुम्हें शान्ति मिलेगी।

८०२-जब हृदयमें किसीसे कुछ लेनेकी इच्छा ही नहीं तब जैसा ही धनी वैसा ही गरीब।

८०३-कीर्ति तो पतिव्रता है, पुंश्चली नहीं है। उसने तो एक ही पुरुष श्रीहरिको वरण कर लिया है, इसलिये तुम उसकी आशाको छोड़ दो, छोड़ दो, छोड़ दो।

८०४-भक्तिमार्गकी ओर बढ़नेवाले साधकको कामिनी-काञ्चन और कीर्तिके स्वरूप पद, प्रतिष्ठा, पैसा, पुत्र, परिवार आदि जो यावत्-प्रेम पदार्थ हैं उनका परित्याग करके तब इस पथकी ओर अग्रसर होना चाहिये।

इतना सुनकर सुमतिने पूछा-'बहिनजी ! मुक्तिके विषयमें लोगोंके कई प्रकारके विचार सुननेमें आते हैं । कोई कहते हैं मुक्तिसे भी लौटना होता है और कोई उसे नित्य मानते हैं । इस विषयमें आपका जैसा निश्चय हो वह बतानेकी कृपा करें ।'

शान्तिदेवी—'सुमति ! इस विषयमें बहुत मतभेद है । वास्तवमें तो जो यह नहीं जानते कि ब्रह्म क्या है ? आत्मा क्या है ? माया किसे कहते हैं ? मैं कहाँसे आया हूँ ? कैसे संसारबन्धनमें बँध गया ? और कर्मफल किसे कहते हैं—वे ही मोक्षको अनित्य मानते हैं । वस्तुतः मोक्ष कोई अवस्था-विशेष नहीं है । वह तो जीवका स्वरूप ही है । वह उसे नित्य-प्राप्त है । इसलिये जब विवेक-विचारादि साधनोंद्वारा अज्ञानका नाश हो जाता है तो आत्माको अपने सहजस्वरूपका बोध हो जाता है । यही उसकी बन्धननिवृत्ति है । जो जिसका स्वरूप होता है उससे वह कभी च्युत नहीं होता ।'

सुमति—'इसके लिये मुख्य साधन क्या है ?'

शान्तिदेवी—'मोक्षका असली साधन तो आत्मज्ञान ही है । इसके लिये चित्तशुद्धिकी बड़ी आवश्यकता है । चित्त शुद्ध होनेपर अपने हृदयके भीतर ही अपने असली स्वरूपका दर्शन होता है । जिस प्रकार दर्पणमें मुख देखनेके लिये उसे साफ करना आवश्यक है उसी प्रकार आत्मदर्शनके लिये अन्तःकरणकी सफाईकी आवश्यकता है । चित्तशुद्धिका प्रधान साधन निष्कामता है । निष्काम पुरुषसे कभी कोई बुरा काम नहीं हो सकता । इसके सिवा मनकी

सकता, घर छोड़नेपर भी जिसे भिक्षाका सङ्कोच है वह तो इन्द्रियोंका गुलाम है। परमार्थका पथ उससे बहुत दूर है।

८१४–विरागीको निरन्तर नाम-जप करते रहना चाहिये।

८१५–समयपर रूखा-सूखा जो भी भिक्षामें प्राप्त हो जाय उसीपर निर्वाह करके केवल कृष्णकथाकीर्त्तनके निमित्त इस शरीरको धारण किये रहना चाहिये।

८१६–सभी शास्त्रोंका सार यही है कि श्रीकृष्णकीर्त्तन और नामस्मरण ही संसारमें सुखका सर्वश्रेष्ठ साधन है। प्रेमकी उपलब्धि नामस्मरणसे ही हो सकती है।

८१७–जिसे प्रेमकी प्राप्ति करनी हो उसे सबसे पहले साधु-संग करना चाहिये।

८१८–भजन, कीर्त्तन, सत्संग, भगवत्-लीलाओंका स्मरण यही मुख्य धर्म है

८१९–अदोषदर्शी होना वैष्णवोंके लिये सबसे मुख्य काम है।

८२०–ग्राम्यकथा कभी श्रवण नहीं करनी चाहिये। ग्राम्यकथा सुननेसे चित्तमें वे ही बातें स्मरण होती हैं जिससे भजनमें चित्त नहीं लगता।

८२१–विषयी लोगोंकी बातें करनेसे चित्त विषयमय बन जाता है।

८२२–सुस्वादिष्ट अन्न और चमकीले वस्त्रसे बचना चाहिये।

हानि-लाभ, जीवन-मरण एवं सुख-दुःखमें भी उस समस्वरूप परमात्मतत्त्वकी ही झाँकी होती है।

सुमति! एक बात और ध्यानमें रखनेकी है। तुम्हारा व्यवहार बराबर सच्चा होना चाहिये। मनमें कुछ और मुखसे कुछ—ऐसा नहीं होना चाहिये। सच पूछो तो हमारे भीतर जैसा भाव होता है दूसरेपर वैसा ही असर पड़ता है। ऊपरसे हम चाहे जितनी भी चिकनी-चुपड़ी बातें करें हृदय तो हृदयको परख ही लेता है। इस विषयमें तुम्हें एक कहानी सुनाती हूँ।

राजा और सेठ

एक राजाकी किसी सेठसे मित्रता थी। सेठ चन्दनका व्यापार करता था। दोनों ही सत्यवादी, धर्मात्मा तथा राग-द्वेषादि दुर्गुणोंसे दूर रहनेवाले थे। दोनोंहीको साधुसेवा और सत्संगसे विशेष प्रेम था। वे अपने-अपने धर्मको ईश्वराज्ञा समझकर पालन करते थे तथा परस्पर एक दूसरेके सुख-दुःखको अपना ही सुख-दुःख समझकर सर्वदा एक-दूसरेकी सहायता एवं सेवा करनेको तैयार रहते थे। वे अपने प्रेमपूर्ण वर्तावसे एक प्राण दो शरीरकी उक्तिको चरितार्थ कर रहे थे।

एक दिन साहूकारने अपने मुनीमसे पूछा, 'मुनीमजी! आज-कल चन्दनके बाजारका क्या हाल है?'

मुनीमने कहा, 'सेठजी! आजकल चन्दनकी बिक्री बहुत थक गयी है। हमारे यहाँ अभी चालीस मन चन्दन गोदाममें पड़ा हुआ है। उसमें घुन लगना आरम्भ हो गया है। यदि इसी प्रकार

बहुत बोलते हैं, उनसे कुछ नहीं होता, संसारमें ऐसा कोई उपाय नहीं, जिससे सब लोग प्रसन्न हो सकें।

८३१—अरे, विषयोंमें इतना क्यों रम रहा है? कभी उनसे मुख नहीं मोड़ता, श्रीहरिका भजन कर, जिससे यमके फन्देमें न पड़ना पड़े।

८३२—जिस गृहस्थमें सत्य, धर्म, धृति और त्याग नामक चार धर्म होते हैं, उसे मरकर इस लोकसे परलोकको प्राप्त होनेपर सोच नहीं करना पड़ता।

८३३—जिसके चित्तसे राग-द्वेषका नाश हो गया है, वही ज्ञानी, गुणी, दानी और ध्यानी है।

८३४—मनके अहङ्कारको छोड़कर ऐसी जबान बोलनी चाहिये, जिससे दूसरोंको भी शान्ति पहुँचे और अपनेको भी शान्ति मिले।

८३५—रातको सोना और दिनका खाना भूलकर, सारी बकवाद छोड़कर दिन-रात श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये।

८३६—जैसे शत्रु हुए बिना मित्रकी कीमत नहीं मालूम होती, वैसे ही प्रेमकी शक्तिके व्यवहारका स्थान न हो तो प्रेमकी शक्तिका भी पता नहीं लगता।

८३७—लोग भाँति-भाँतिकी चर्चा किया करते हैं, परन्तु उन्हें अपने भीतरी और बाहरी जीवनकी जाँच तथा समालोचना करनी चाहिये; अपने कार्य तथा स्वभावकी ओरसे सदा सावधान रहना

पर उसकी कोई बुराई नहीं की थी । आजतक कभी उसका कोई छल-कपटका व्यवहार भी नहीं देखा गया । इस प्रकार जब कुछ भी निश्चय न हुआ तो उसने इस विषयमें साहूकारसे ही पूछनेका निश्चय किया ।

दूसरे दिन जब सेठ राजाके पास आया और यथोचित अभिवादनके पश्चात् बैठ गया तो राजाने साफ-साफ अपने मनकी हालत बताकर उससे कहा, 'भाई ! आजतक तुम्हारे प्रति मेरा कभी कोई कुभाव नहीं हुआ । इस समय जो यह क्षोभ हुआ है इसमें अवश्य तुम्हारी कोई बुरी नीयत ही कारण है । इसलिये इस समय मेरे प्रति तुम्हारा जो भाव हो उसे स्पष्ट बता दो, नहीं तो, ऐसा न हो मेरे हाथसे तुम्हारा कोई नुकसान हो जाय । देखो, सच्ची बात बतानेमें दोनोंका ही हित है ।'

साहूकारका राजाके प्रति कोई द्वेष तो था ही नहीं । मनकी मलिनताके कारण लालचसे उसके हृदयमें जो भाव उठा था वह तो उसे भी बुरा ही मालूम होता था । इसलिये उसने राजासे साफ-साफ अपने मनकी बात कह दी । सेठके निष्कपट व्यवहारसे राजाको बड़ी खुशी हुई । उसने अपने मन्त्रीको सारा चन्दन खरीदनेकी आज्ञा दी और उससे अपने बगीचेमें एक सुन्दर बँगला तैयार कराया । बस, दोनोंका मनोमालिन्य दूर हो गया और दोनोंके हृदयमें फिर पहलेकी तरह एक-दूसरेके प्रति अच्छे भाव रहने लगे ।

बहिन सुमति ! इस कहानीसे तुम यह बात अच्छी तरह समझ गयी होगी कि दूसरोंके दिलमें अपने प्रति बुरे भाव होनेमें

८४५—जो तेरे लिये काँटे बोवें, तू उनके लिये भी फूल बो।

८४६—धनकी लालसासे जमीनको खोदा, पहाड़ोंकी धातुओंको फूँका, समुद्र-यात्रा की, बड़े प्रयत्नसे राजाओंको खुश किया, मन्त्र-सिद्धिके लिये श्मशानमें रातें बितायीं, पर कहीं भी एक फूटी कौड़ी न मिली। हे तृष्णे! तू अब तो मेरा पिण्ड छोड़।

८४७—प्रेम ही प्रभुका ऐश्वर्य है, जिसको प्रेम मिल जाता है उसे सब कुछ मिल जाता है।

८४८—केवल उपासनासे ही आत्माकी उन्नति और पूर्णता नहीं होती, उसके लिये प्रेम चाहिये, प्रेमसे ही आत्माका पूर्ण विकास होता है।

८४९—तुम जितना प्रयत्न संसारके विषयोंकी प्राप्तिके लिये करते हो, उतना यदि परमधामके लिये करो तो तुम्हें वहाँ अवश्य ही स्थान मिले।

८५०—यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि कोई मनुष्य तुम्हारा भला-बुरा नहीं कर सकता, जो कुछ होता है, ईश्वरहीका किया होता है।

८५१—गोविन्दके गुण नहीं गानेसे जीवन व्यर्थ जा रहा है, रे मन! श्रीहरिको वैसे ही भज, जैसे मछली जलको भजती है।

८५२—दृढ़निश्चयी, कोमलस्वभाव, इन्द्रियविजयी, क्रूर कर्म करनेवालोंका संग न करनेवाला, अहिंसक पुरुष इन्द्रियदमन और दानके द्वारा स्वर्गको जीत लेता है।

शान्तिदेवीके घर

दूसरे दिन सुमति स्वयं ही शान्तिदेवीके घर चली गयी। उसे उनकी बातें सुननेकी इतनी तीव्र इच्छा हो गयी थी कि भोजनादिसे निवृत्त होनेके पश्चात् उसे शान्तिदेवीका इन्तजार करना कठिन हो गया। सुमतिको आयी देख शान्तिदेवीके घरकी महिलाओं-ने उसका यथोचित सत्कार किया। फिर जब सब निश्चिन्त होकर बैठ गयीं तो सुमतिने कहा—'बहिनजी! आपकी कलकी बातें सुनकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। दरअसल संसारको हमने ही पकड़ रक्खा है। यदि हम यह जान जायँ कि इस दुनियाकी सारी चीजें नष्ट होनेवाली हैं तो कभी भी ये पदार्थ हमें बाँध नहीं

उगता, इसी प्रकार जबतक ज्ञानका उदय नहीं होता, तभीतक मनुष्य विषयोंमें लगा रहता है।

८६०—भगवत्प्राप्त पुरुष भगवद्भजनको छोड़कर दूसरेका पथप्रदर्शक नहीं बनता, क्योंकि वह अपने प्रभुके सिवा किसीको भी रक्षक, शिक्षक या मार्गदर्शक नहीं देखता।

८६१—बिना विश्वासके भक्ति नहीं होती, भक्ति बिना भगवान् प्रसन्न नहीं होते और भगवत्कृपा बिना जीवको सपनेमें भी शान्ति नहीं मिल सकती।

८६२—जैसे पक्षी रातको आकर पेड़पर बसेरा करते हैं और दिन उगते ही उड़ जाते हैं, वैसी ही हालत कुटुम्बकी समझनी चाहिये।

८६३—धन, स्त्री और पुत्रोंमें ही चित्त लगा रक्खा है, विपत्तिमें काम आनेवाले मित्र भगवान्‌की खोज क्यों नहीं करता ?

८६४—जो असन्तोषी है वही दरिद्र है, जो इन्द्रियोंके वशमें है वही कृपण है, जिसकी बुद्धि विषयोंमें फँसी हुई नहीं है, वही स्वतन्त्र है।

८६५—दुःख पानेपर भी सामनेवालेको कड़वे वचन नहीं कहने चाहिये। ऐसे किसी काममें बुद्धि नहीं लगानी चाहिये जिससे दूसरेका द्रोह होता हो, ऐसी वाणी नहीं बोलनी चाहिये जिससे लोगोंको उद्वेग हो।

८६६—जिसके घरसे अतिथि निराश लौट जाता है, उसका सैकड़ों घड़े घीका होम भी व्यर्थ है। अतिथिकी जात-पाँत, विद्या

उसका कारण पूछा। ब्राह्मणने कहा, 'महाराज! रोऊँ नहीं तो क्या करूँ। मेरे पड़ोसी खूब मौज कर रहे हैं और मैं दाने-दानेको मुहताज हो रहा हूँ!' महात्माने कहा, 'भाई! तुझे धनकी जरूरत है, सो तो ठीक है; परन्तु तू अपने पड़ोसियोंको सुखी देखकर क्यों जलता है? यदि तू सच्चा सुख चाहता है तो तुझे दूसरोंके सुखमें ही अपना सुख मानना चाहिये। अच्छा, ले, तू यह शंख ले जा। इससे तू जो चीज माँगेगा वही मिल जायगी। परन्तु याद रख उससे दूनी तेरे पड़ोसियोंको मिलेगी।' ऐसा कहकर वे महात्मा अन्तर्धान हो गये।

ब्राह्मणदेवता उस शंखको लेकर घरकी ओर चले। परन्तु यह बात जानकर कि इससे जो कुछ माँगा जायगा उससे दूना पड़ोसियोंको मिल जायगा—उनका चित्त प्रसन्न नहीं था। वह पड़ोसियोंके दूने लाभको सहन नहीं कर सकते थे। घर पहुँचनेपर सुशीलाने उनसे पूछा, 'आप कई दिनसे कहाँ चले गये थे। अब तो घरमें कुछ भी है नहीं, फिर किस तरह गुजर होगी?'

ब्राह्मण—'इसका उपाय तो मैं कर आया हूँ मगर अफसोस इस बातका है कि उससे मुझे जितना धन मिलेगा उससे दूना-दूना मेरे पड़ोसियोंको मिल जायगा। इस तरह मुफ्तमें ही अपने पड़ोसियोंका मालामाल होना मैं सह नहीं सकता।'

सुशीला—'यह तो अच्छा ही हुआ। इससे तो सहज ही आप अपने अड़ोस-पड़ोसके लोगोंकी भलाई कर सकेंगे। अब सोचते-विचारते क्या हैं, उस जड़ीको काममें लाइये।'

८७३—आत्मा नित्य सिद्ध है, इसकी प्रतीतिके लिये देश, काल अथवा शुद्धि आदि किसीकी भी अपेक्षा नहीं है।

८७४—भगवान्‌के नाममें रुचि, जीवोंपर दया और भक्तोंका सेवन—इन तीन साधनोंके समान और कोई साधन नहीं।

८७५—जिस गृहस्थमें सत्य, धर्म, धृति और त्यागनामक चार धर्म होते हैं, वही मरकर इस लोकसे परलोकको प्राप्त होकर सोच नहीं करता।

८७६—जो दूसरेको बदनाम करके नाम कमाना चाहते हैं, उनके मुँहपर ऐसी कारिख लगेगी जो मरनेपर भी नहीं धुलेगी।

८७७—जिस घरमें साधुकी निन्दा होती है, वह समूल नष्ट हो जाता है, उसकी नींव, नाम और जगहका भी पता नहीं लगता।

८७८—हरिनामरूपी गोलीके साथ प्रेम, भक्ति, आग्रह, एकाग्रता और निष्ठारूप अनुपान रहनेसे इन्द्रियरूप रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

८७९—मायामोहको छोड़कर श्रीरामका भजन करना चाहिये। पारसका स्पर्श किये बिना लोहा दिन-दिन छीज रहा है।

८८०—जबतक मनुष्य पहले गाँवको नहीं छोड़ देता, तबतक दूसरे गाँवको नहीं पहुँच सकता, इसी प्रकार जबतक संसारका सम्बन्ध नहीं छोड़ा जाता तबतक प्रभुके धाममें नहीं पहुँचा जा सकता।

[जब] चिड़िया चुग गयीं खेत ?' बस, वह जन्मभरके लिये लँगड़ा रह गया। बहिन सुमति! जो दूसरोंके लिये बुरी बात सोचता है उसका कभी हित नहीं हो सकता। ऐसे दुष्ट पुरुषोंके संगसे अच्छे पुरुषोंको भी दुःख ही होता है, इसलिये इनसे सदा दूर रहना चाहिये। बुरी सोहबत किसीके लिये भी ठीक नहीं है।'

सुमति—'बुरी सोहबतमें पड़नेसे अच्छे आदमी कैसे बिगड़ सकते हैं ? यदि बुरे लोग अपनी आदत नहीं छोड़ते तो सज्जन ही क्यों अपनी आदत छोड़ें ? इस बातको कुछ विस्तारसे समझानेकी कृपा करें।'

कुसङ्गका कुफल

शान्तिदेवी—'सुमति! सुनो, इस विषयमें मैं तुम्हें एक कहानी सुनाती हूँ। एक बार एक राजकुमार वनमें शिकार खेलने गया। अपने निशानेके पीछे दौड़ते-दौड़ते वह बहुत दूर निकल गया और उसके सब साथी पीछे रह गये। धूप बहुत तेज थी, दिन भी बहुत चढ़ गया था, इसलिये अन्तमें भूख-प्याससे घबड़ाकर और बुरी तरह थक जानेके कारण वह एक वृक्षके नीचे लेट गया। वृक्षकी छायामें ठंडी-ठंडी वायुका झोंका लगते ही उसे नींद आ गयी और वह बेखबर सो गया।

उसी समय एक हंस उड़ता हुआ उस वृक्षपर आकर बैठ गया। इसी समय एक कौआ भी वहाँ आ बैठा। वह हंसके साथ चिकनी-चुपड़ी बातें बनाने लगा। शुद्ध हृदय हंस उसकी कुटिलता-को क्या समझ सकता था। इतनेहीमें हंसने देखा कि वृक्षके नीचे

लेनेके बाद और किसी साधन-भजनकी आवश्यकता नहीं । सत्य ही कलियुगकी तपस्या है ।

८९०—जब मिले तभी मित्रका आदर करो, पीछेसे प्रशंसा करो और जरूरतके वक्त बिना संकोच सहायता करो ।

८९१—दुर्जन यदि विद्वान् हो तो भी उसका संग नहीं करना चाहिये, क्योंकि मणिसे सुशोभित साँप क्या भयानक नहीं होता ?

८९२—तन, मन और वचनकी एकता रखनी चाहिये ।

८९३—जो मनुष्य दूसरे लोगोंके सामने तो भगवान्की बातें करता है और अपने मनमें सदा मान प्राप्त करनेकी तथा दूसरी सांसारिक चिन्ताओंमें लगा रहता है, वह कभी-न-कभी बेइज्जत होकर जरूर आफतमें पड़ेगा ।

८९४—स्वार्थ ही सारे अपराधों और पापोंकी जड़ है और स्वार्थकी जड़ अज्ञान है ।

८९५—जिसने कामनाओंका नाश कर मनको जीत लिया और शान्ति प्राप्त कर ली, वह राजा हो या रंक, संसारमें उसको सुख-ही-सुख है ।

८९६—कुमार्गपर चलनेवाला, बिना जीता हुआ मन ही परम शत्रु है । मनको जीतकर समत्वको प्राप्त होना ही भगवान्की मुख्य आराधना है ।

८९७—संसारमें वैराग्यरूपी सौभाग्यका पात्र, प्रसन्नचित्त, विषयोंकी आशासे रहित और यथाप्राप्त प्रारब्धफल भोगनेवाला पुरुष इसी जन्ममें कृतार्थ हो जाता है ।

करनेवालेके साथ जो बुरा करता है उसका कभी भला नहीं होता। इसीलिये वह वेहद डर गया था। उसके दुःखकी सीमा न थी। राजकुमारको दुखी होते देखकर हंसने उसे वहुत समझाया और कहा कि 'यह तो मेरे ही दोषका फल है। तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो। यदि मैं कौएकी कुसङ्गति न करता तो भला, यह गति क्यों होती? कुसङ्गति तो एक क्षणकी भी वहुत हानिकारक ही होती है। हम लोग तो सरलहृदय होते हैं; कौओंका कपट क्या जानें? इनका खाद्य ही अत्यन्त मलिन है, फिर हृदय कैसे शुद्ध हो सकता है। अस्तु, मुझे उसके एक क्षणके कुसङ्गका फल मिल गया। इससे तुम भी याद रखना कि कभी एक क्षणके लिये भी कुसङ्ग न हो। अच्छा, अब दिन ढलने लगा है, तुम निश्चिन्त होकर अपने नगरको जाओ।'

राजकुमार बोला, 'मेरे द्वारा तुम्हें जो कष्ट हुआ है, उसका दुःख मेरे हृदयको अब भी साल रहा है। परन्तु हो ही क्या सकता है। तुम अपनी उदारतासे ही मेरा अपराध क्षमा करना। मैं यहाँसे अपने नगरका भी मार्ग नहीं जानता, कोई साथी भी पास नहीं है, इसलिये समझ नहीं पड़ता कैसे जाना होगा।'

हंसने कहा, 'राजकुमार! तुम्हारे प्रति मेरे चित्तमें तनिक भी रोष नहीं है। यह सब मेरा प्रारब्ध-भोग है। तुम यहाँसे सीधे पूर्वकी ओर चले जाओ। कुछ दूर जानेपर तुम्हें एक साथी मिल जायगा।'

इतना कहकर हंस वेहोश हो गया और उसके प्राण-पखेरू उसका शरीर छोड़कर उड़ गये। राजकुमार दुखी होकर उठा और

घण्टे भरमें जितने प्रश्न कर बैठता है, बुद्धिमान् उनका पूरा उत्तर सात वर्षमें भी नहीं दे सकता ।

९०६—इच्छाको रानी बना लो या दासी; रानी बनाकर उसकी आज्ञामें चलोगे तो वह दुःखके कुण्डमें डुबो देगी और दासी बनाकर अपनी आज्ञामें रक्खोगे तो सारे सुखोंकी प्राप्ति होगी ।

९०७—हरिसे नहीं, तू तो हरिके जनसे प्रेम कर, हरि तो माल-मुल्क ही देते हैं पर हरि-जन तो साक्षात् हरिको ही दे देते हैं ।

९०८—जरा-सी कामना रहते भगवान् नहीं मिलते । तागेमें अगर जरा-सा भी रवूँदा हो तो वह सूईमें नहीं जा सकता ।

९०९—सभी प्राणियोंके अन्दर भगवान् श्रीहरि आत्मरूपसे विराजमान हैं, अतः सब प्राणियोंको भगवान्का निवासस्थान समझकर किसीसे भी द्रोह न कर, ऐसा करनेसे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं ।

९१०—शान्त, धर्ममय, प्रिय और सत्य वचन ही सुभाषण है । ऐसी बात कहनी चाहिये जो आत्माके विरुद्ध न हो और जिससे किसीको दुःख न पहुँचे ।

९११—सज्जनको झूठ जहर-सा लगता है और दुर्जनको सच विषके समान लगता है । वे इनसे वैसे ही दूर भागते हैं जैसे आगसे पारा ।

९१२—जहाँतक हो, चुप रहो और जरूरत पड़नेपर उतना ही बोलो, जितना काम हो ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

'हे अर्जुन ! यह रजोगुण (राग) से उत्पन्न होनेवाला काम है—यह क्रोध है । यह बहुत खानेवाला और बड़ा पापी है । तुम उसे नित्य वैरी समझो ।' काम और क्रोध भाई-भाई हैं । जहाँ इनमेंसे एक रहता है वहाँ दूसरा भी रहता ही है । यह बहुत खानेवाला है इसका मतलब यह कि कामनाका कभी पेट नहीं भरता । इच्छित पदार्थ जितने-जितने मिलते जाते हैं उतनी ही और पानेकी आग बढ़ती जाती है । वह काम जिस समय क्रोधरूपमें प्रकट होता है उस समय ऐसा कोई पाप नहीं है जो उससे न हो सके। इसलिये उसे महापापी कहा है । यह समझ लो सुमति ! कि जबतक हम बुद्धिपूर्वक सावधानीसे काम करते हैं तबतक काम-क्रोध हमारे पास नहीं फटकते, परन्तु हमारे जरा-सा बेखबर होते ही ये हमपर हमला कर बैठते हैं । इसलिये इन काम और क्रोधको अपना घोर दुश्मन समझकर इनसे बराबर होशियार रहना चाहिये ।

सुमति ! अब तुम अच्छी तरह समझ गयी होगी कि मोह ही सारे दुःखकी जड़ है । तुम यदि सच्चा सुख चाहती हो तो संसारकी सब चीजोंका मोह छोड़कर, बिल्कुल मनको संसारसे मोड़कर, अपने सब कर्तव्योंका पालन किया करो । जो काम करना हो उसका नतीजा पहले सोच लो । ऐसा कोई काम मत करो जिससे किसी तरह किसीकी कोई बुराई हो । हमेशा सबके लिये उत्तम विचार रक्खो, शुभ भाव रक्खो और हर समय भगवान्‌का नाम लिया करो । ऐसा करते-करते तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जायगा और तुम्हें भगवान्‌की झलक मिलने लगेगी । सचमुच देखो तो, परमात्मा तुमसे तनिक भी दूर नहीं है ।

भाँति-भाँतिके कष्ट भोगता है, फिर जब पापका फल भोगकर शुद्ध होता है, तब उसे मनुष्ययोनि मिलती है।

९२०–शरीरके द्वारा किये हुए दोषोंके मनुष्यको स्थावर (वृक्ष आदि) योनि मिलती है, वाणीद्वारा किये हुए कर्मोंके दोषसे पशु-पक्षीकी योनि मिलती है और मनद्वारा किये हुए कर्मोंके दोषसे चाण्डालकी योनि मिलती है।

९२१–पिताके कर्जको चुकानेवाले तो पुत्र आदि भी होते हैं, परन्तु भव-बन्धनको छुड़ानेवाला तो अपने सिवा और कोई नहीं है।

९२२–लालच बुरी बला है। जिन्होंने धन पैदा करके उसे अच्छे कामोंमें लगाना नहीं सीखा, उनकी बुरी दशा होती है, इससे तो धन न होना ही अच्छा है जो व्यर्थकी चिन्ता तो न हो।

९२३–क्रोध दिलानेपर भी चुप रहना बड़ी भारी बुद्धिमानी और महत्त्वका लक्षण है। मौनमें ही सारी शक्ति भरी है।

९२४–जो कुछ मिले उसीमें सन्तोष करना और दूसरोंसे डाह न करना, यही शान्तिके खजानेकी कुञ्जी है।

९२५–दुर्बल मस्तिष्कके मनुष्य ही संकटोंसे घबराकर उनके वशमें हो जाते हैं, मनोबलसे सम्पन्न पुरुष तो संकटोंको पैरों-तले दबाकर उनपर सवार हो जाता है।

९२६–सत्यके पायेपर खड़े रहनेसे जो आनन्द मिलता है, उसकी तुलना अन्य किसी प्रकारके आनन्दसे नहीं की जा सकती।

सुमति—'बहिनजी ! आपने यह क्या कहा कि देवताओंको भी असली सुख प्राप्त नहीं है । उनसे तो सांसारिक लोग भी सुख पानेकी आशा रखते हैं । इसीलिये वे अनेक प्रकारके कष्ट सहकर देवताओं-की पूजा-अर्चा करते हैं ।'

शान्तिदेवी—'हाँ बहिन, सच्चा सुख देवताओंको भी प्राप्त नहीं है । यह ठीक है कि देवलोकोंमें जो सुखकी सामग्री है वह इस लोक-की अपेक्षा बहुत ऊँची श्रेणीकी है तथा देवताओंकी उम्र भी हम-लोगोंकी अपेक्षा बहुत बड़ी है; परन्तु एक दिन अन्त तो उनका भी होता ही है तथा उनके ऐश्वर्यमें भी कमी-बेशी होती रहती है इसलिये उनका सुख नष्ट होनेवाला तथा घटने-बढ़नेवाला है । इस कारण वह दुःखरूप ही है । जहाँ अपने ऐश्वर्यके नष्ट होनेका भय बना रहे, दूसरेके बढ़े हुए ऐश्वर्यको देखकर चित्तमें डाह हो तथा अपनेसे नीचेके ऐश्वर्यवानोंको देखकर मनमें अभिमान हो वहाँ सुख कैसे हो सकता है ? इसलिये विचारवान् पुरुषोंके लिये तो स्वर्गादिका सुख भी हेय ही है ।

बहिन सुमति ! रागमें ही द्वेष समाया हुआ है । एक वस्तुसे रागका अर्थ है दूसरेसे द्वेष । और यही दुःखका कारण है । इसलिये सुमति ! तुम लौकिक और पारलौकिक सब प्रकारके विषयोंसे मुख मोड़कर अपने अन्तःकरणमें स्थित आनन्दके अखण्ड भण्डार अपने आत्माका ही साक्षात्कार करो । वही सच्चे सुखका एकमात्र स्रोत है, उसीको पाकर जीव नित्य सुख प्राप्त कर सकता है । उस सुख-सागर आत्मदेवकी ही उपासना करो और सारे विषयोंकी कामना

९३३--चित्तको पवित्र करने-जैसा कल्याणकारक साधन और कोई है नहीं; क्योंकि चित्त ही चिन्तामणिकी भाँति सब पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाली भूमि है।

९३४--जिसके विचार और चिन्तन पवित्र हैं, उससे अपवित्र क्रिया बन ही नहीं सकती, उससे तो विशुद्ध कर्म ही होते हैं।

९३५--हे भिक्षुओ! जबतक तुम लोग ब्रह्मचारियोंसे कायिक, वाचिक, मानसिक मित्रता रक्खोगे, भीखका अन्न समान भावसे बाँट कर खाओगे तथा सत्-धर्मकी रक्षा करोगे और सत्-धर्मपर ही दृष्टि रक्खोगे, तबतक तुम लोगोंका पुण्य क्षय नहीं होगा।

९३६--इन्द्रियोंको वशमें रखना, जीभको क़ाबूमें रखना, सत्कार्यमें दृढ़संकल्प रहना और भगवान्‌की इच्छापर खुश रहना चाहे वह तुम्हारे प्रतिकूल ही हो, बस, यही सच्ची शूरता है।

९३७--दया, नम्रता, दीनता, क्षमा, शील और सन्तोष--इन छःको धारण करके जो भगवान्‌को स्मरण करता है, वह निश्चय ही मोक्ष पाता है।

९३८--शरीर खेत है, मनुष्य किसान है, पाप-पुण्य दो बीज हैं, जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही फल होता है।

९३९--ईश्वरके आश्रित मनुष्यमें ये बातें होती हैं, १--उसकी विचारधारा सदा ईश्वरकी तरफ ही बहती है, २--ईश्वरमें ही उसकी स्थिति होती है और ३--ईश्वरकी प्रीतिके लिये ही उसके सारे कर्म होते हैं।

उसी प्रकार सत्सङ्ग सुमार्गमें ले जानेवाला है। कभी-कभी तो एक क्षणका सत्सङ्ग भी जीवके जीवनको बदल देता है। इस विषयमें रत्नाकर डाकूका इतिहास प्रसिद्ध है, जो पीछे महर्षि वाल्मीकिके नामसे प्रसिद्ध हुआ था।'

सुमति—'बहिनजी! रत्नाकरका इतिहास क्या है? उसे सुननेकी मेरी बहुत इच्छा है।'

शान्तिदेवी—'अच्छा, अब तो बहुत समय हो गया है। मुझे भी कई काम देखने हैं। कल मैं सबेरे ही तुम्हारे घर आऊँगी तब इस विषयमें चर्चा होगी।'

सुमति अभिवादन कर अपने घर चली गयी।

९४७—रातको पहले पहर सब जागते हैं, दूसरे पहर भोगी जागते हैं, तीसरे पहर चोर जागते हैं और चौथे पहर योगी जागते हैं।

९४८—पण्डित तो वह है जिसके प्रेम-चक्षु खुल गये हैं, जो ज्ञान और प्रेमके आवेशमें पशु, वनस्पति और पाषाणतकमें अपने ठाकुरको देखता और पूजता है।

९४९—लोग भली कहें या बुरी, उनकी बातोंपर ध्यान नहीं देना चाहिये। संसारके यश और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वर-पथमें चलना चाहिये।

९५०—जैसे नमक और कपूर एक ही रंगके होते हैं, पर स्वादमें फर्क होता है, इसी प्रकार मनुष्योंमें भी पापी और पुण्यात्मा होते हैं।

९५१—संसारमें वैसे ही रहो जैसे मुँहमें जीभ रहती है, जीभ कितना ही घी खा ले परन्तु चिकनी नहीं होती।

९५२—जो दुःखियोंपर दया करता है, धर्ममें मन रखता है, घरसे वैराग्यवान् होता है और दूसरोंका दुःख अपना-सा जानता है उसीको अविनाशी भगवान् मिलते हैं।

९५३—जिसने युद्धमें लाखों आदमियोंको जीत लिया, वही असली विजयी नहीं है, वास्तविक विजयी तो वह है जिसने अपने आपको जीत लिया है।

९५४—मनुष्योंके द्वारा जितना व्यवहार होता है, सब

सत्पुरुषकी क्षणभरकी सङ्गति भी संसार-सागरसे पार होनेमें नौकारूप होती है। यह बात रत्नाकरके चरितसे अक्षरशः सिद्ध होती है। सुनो, मैं उसकी कथा तुम्हें सुनाती हूँ। रत्नाकरका जन्म ब्राह्मणवंशमें हुआ था, किन्तु उसके आचरण शूद्रोंके समान थे। वह हमेशा लुटेरोंके साथ रहता और बेचारे निर्दोष यात्रियोंकी हत्या करके उनका सब माल-मता छीन लेता। यही उसकी आजीविका थी।

एक दिन दैवयोगसे देवर्षि नारद उस ओर आ निकले। रत्नाकरने उनकी ओर झपटकर कहा, 'ठहरो, ठहरो, आगे मत बढ़ना।'

नारदजी—'अरे दुष्ट ब्राह्मण! तू क्या चाहता है?'

रत्नाकर—'तुम जानते नहीं, मैं डाकुओंका सरदार रत्नाकर हूँ। तुम्हारे पास जो कुछ हो यहाँ सीधे रख दो, नहीं तो, तुम्हारी खैर नहीं।'

नारदजी—'भाई, हमारे पास तो केवल यह वीणा और श्रीहरि-नाम है। तुम प्रसन्नतासे जब चाहो तब ले सकते हो।'

रत्नाकर—'अच्छा, तुम जरा गाकर तो सुनाओ। तुम्हारी वीणाका स्वर तो बड़ा अच्छा जान पड़ता है।' तब श्रीनारदजीने अत्यन्त सुमधुर स्वरमें भगवान्‌के त्रिलोकपावन नामोंका कीर्तन करना आरम्भ किया। उसके प्रभावसे रत्नाकरका कठोर हृदय कुछ पसीजा। उसमें कुछ दयाका सञ्चार हुआ। वह बोला, 'मुने! मेरे हृदयमें सदा आग-सी जलती रहती है, आज तुम्हारा कीर्तन सुनकर मुझे कुछ शान्ति-सी जान पड़ती है। क्या इसमें कोई जादू है?'

९६१—उस विश्वासको लाओ जो ध्रुवमें, प्रह्लादमें और नामदेवमें आया था, इसी विश्वासकी बदौलत सम्पूर्ण शङ्का, सन्देह और झगड़े दूर हो जाते हैं।

९६२—कामातुर मनुष्य ही कंगाल है। जो सदा सन्तुष्ट है वह यथार्थ धनी है। इन्द्रियाँ ही मनुष्यत्वकी शत्रु हैं। विषयोंका अनुराग ही बन्धन है। संसार ही मनुष्यका चिररोग है। संसारसे निर्लिप्त होकर रहना ही इसकी एकमात्र दवा है।

९६३—जैसे स्त्री नैहरमें रहती है, परन्तु उसकी सुरति पतिमें लगी रहती है इसी प्रकार भक्त जगत्में रहता है परन्तु वह हरिको कभी नहीं भूलता।

९६४—ऊँची जातिका अहंकार कोई मत करो। साहेबके दरबारमें केवल भक्ति ही प्यारी है।

९६५—पृथ्वीकी ओर देखकर पैर रखना, जलको कपड़ेसे छानकर पीना, वाणीको सत्यसे पवित्र करके बोलना और मनमें विचार करनेपर जो उत्तम प्रतीत हो, वही करना।

९६६—मनको सन्मार्गपर ले जानेका पहला साधन 'सत्य' है, दूसरा 'संसारसे उपरामता' है, तीसरा 'आचरणकी उच्चता और पवित्रता' है और चौथा 'अपने अपराधोंके लिये प्रभुसे क्षमाकी प्रार्थना करना' है।

९६७—कभी चरित्रसे पतित न होना चाहिये। गिरनेमें गौरव नहीं है। पतितावस्थासे पुनः-पुनः उठकर खड़े होओ, इसीमें परम गौरव है।

तब वे दोनों बोले, 'बेटा ! धनोपार्जन करके हमारा पालन करना तेरा धर्म है। यदि तू अधर्मसे धन बटोरता है तो हम उसमें क्या कर सकते हैं ? उसका फल तो अकेले तुझे ही भोगना पड़ेगा। जो जैसा करता है उसे वैसा भोगना पड़ता है। हम तेरे पापके भागी कैसे हो सकते हैं ?'

माता-पिताका यह कोरा उत्तर सुनकर रत्नाकरको बड़ा खेद हुआ। उसे ऐसी आशा कभी नहीं थी। फिर उसने अपनी स्त्रीसे जाकर यही बात पूछी।

स्त्रीने कहा, 'स्वामिन् ! मेरा धर्म तो आपकी सेवा करना है। यदि मैं उसमें त्रुटि करूँगी तो मुझे नरक भोगना पड़ेगा। धन लाना तो आपका काम है। यदि आप पापपूर्वक धन संग्रह करते हैं तो उसकी जिम्मेवारी आपपर ही है। मैं उसका फल क्यों भोगूँगी ?'

अपने परिवारसे ऐसा सूखा उत्तर पाकर रत्नाकरको बड़ा खेद हुआ। उसे स्वप्नमें भी यह आशा नहीं थी कि मेरे कुटुम्बी केवल धनके ही साथी हैं, उन्हें मेरे दुःखभोगकी कोई चिन्ता नहीं है। वह मन-ही-मन पछताता हुआ नारदजीके पास आया और उनका बन्धन खोलकर चरणोंमें गिर गया। उस समय पश्चात्तापकी आगसे उसके हृदयका सारा मल जल गया। और वह फूट-फूटकर रोने लगा। उसे अत्यन्त दुखी देखकर नारदजीने ढाढ़स बँधाया। तब उसने रोते हुए उनसे अपने उद्धारका उपाय पूछा।

नारदजी—'भाई ! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो

९७४—तीन चीजें हैं जिनको जितना बढ़ाओगे, उतनी ही बढ़ती रहेंगी, इनसे सावधान रहो—भूख, नींद और भय।

९७५—भगवान्‌की अनन्य भक्तिसे मनुष्य सर्व लोकोंके महेश्वर, समस्त जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले, वेदोंको उत्पन्न करनेवाले परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है।

९७६—मेरे सद्गुण मेरे साथ कभी बीमार नहीं पड़ते। इसी प्रकार वे मेरी कब्रमें भी मेरे साथ नहीं गड़ सकते।

९७७—जो मनुष्य मानव-जीवनका मूल्य नहीं समझता, वह दुःखी और साधु पुरुषोंकी सेवासे मिलनेवाले माधुर्यका अनुमान नहीं कर सकता।

९७८—ईश्वरपर अपनी मर्जी मत चलाओ। शारीरिक आवश्यकताओंके सम्बन्धमें ईश्वरकी इच्छाको पूर्ण होने दो। सांसारिक आवश्यकताओंमें ईश्वरकी मर्जीको ही अपनी मर्जी बना लो।

९७९—जो मनुष्य अपने सुखके लिये किसी भी प्राणीको मारता है वह जीते हुए और मरनेपर कहीं भी सुख नहीं पाता।

९८०—चारों अवस्थाओंको व्यर्थ खो दिया, श्रीहरिका नाम नहीं लिया, जब शरीर छूट जायगा, तब यमराजके यहाँ यमकी यातनाएँ सहनी पड़ेंगी। फिर पछतानेसे कुछ नहीं होगा।

९८१—जिसने प्रेमका नियम नहीं लिया, जिसने कामको नहीं जीता और जिसने नेत्रोंसे अलखपुरुष भगवान्‌के दर्शन नहीं किये उसका जीवन व्यर्थ है।

सीताजीको वनवास हुआ था तो वे भी इन्हींके आश्रमपर रही थीं और उसी समय उनके गर्भसे कुश और लवका जन्म हुआ था। इन दोनों कुमारोंकी शिक्षा-दीक्षा भी इन्हींके द्वारा हुई थी। इनकी शान्तवृत्तिके कारण इनके आश्रममें सिंह और मृग एक साथ विचरते थे। यह सब श्रीनारदजीके क्षणिक सत्सङ्गका प्रभाव था।

देखो सुमति! जीवके जब उद्धारके दिन आते हैं तो इसी तरह अनायास कोई-न-कोई संत मिल जाते हैं। इन संतोंकी महिमा और प्रभावका कहाँतक वर्णन किया जाय? इन्हें स्वयं तो किसी भी वस्तुकी इच्छा नहीं होती किन्तु जो इनकी शरण जाते हैं उन्हें ये वह चीज देते हैं जिसे पाकर फिर किसी और वस्तुकी इच्छा नहीं रहती और जिससे बढ़कर त्रिलोकीका कोई भी पदार्थ नहीं है। उसके विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण भी कहते हैं—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

'जिस लाभको पाकर जीव उससे बड़ा कोई और लाभ नहीं समझता तथा जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े-से-बड़े दुःखसे भी विचलित नहीं होता।' जिसे आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है उसके आनन्दकी तुलनामें ब्रह्माका सुख भी अत्यन्त तुच्छ है। उसकी महिमा किसीकी भी बुद्धिमें नहीं आ सकती। वह त्रिलोकीके राज्यको भी तृणके समान समझता है। कारण कि आत्मज्ञानसे ऊँचा कोई पदार्थ है ही नहीं। इस ज्ञानको पाकर मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त कर लेता है और उसे फिर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रह जाती। इस विषयमें मैं तुम्हें एक इतिहास सुनाती हूँ। सुनो—

चेष्टा की उसीको धर्म मिल जाता है। सज्जनोंको दूसरोंके दोषोंमें भी धर्मके दर्शन होते हैं।

९८९—विवेकरहित वैराग्य हठवादिताका पागलपन है और केवल शाब्दिक ज्ञानसे तो मनुष्य स्वयं ही घबड़ा उठता है। इसलिये जिसमें विवेक और वैराग्य दोनों हैं, वही पुरुष भाग्यवान् साधु है।

९९०—श्रद्धालु मनुष्यका हृदय ईश्वरका गुणानुवाद गाने और सुननेसे अत्यन्त पवित्र हो जाता है, भगवच्चर्चा ही उसका अन्न है, प्रभु-प्रेम उसकी शान्ति है, हरिका स्थान ही उसकी दूकान है, भजन-कीर्तन उसका व्यापार है, धर्मग्रन्थ उसकी सम्पत्ति है, भूलोक उसका खेत है, परलोक उसका खलियान है, और प्रभु-प्राप्ति ही उसके परिश्रमका फल है।

९९१—'चलो-चलो' की पुकार तो सभी मचाते हैं, परन्तु पहुँचता कोई विरला ही है। क्योंकि इस मार्गमें 'कनक' और 'कामिनी' की दो बड़ी घाटियाँ हैं।

९९२—किसीके मनमें सच्चा प्रेम पैदा हो और वह साधन-भजन करनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो जाय तो उसे मार्ग बतलानेवाले सद्गुरु आप ही मिल जाते हैं, उसे गुरुकी खोज नहीं करनी पड़ती।

९९३—बहुत अधिक बोलनेसे व्यर्थ और असत्य शब्द निकल जाते हैं इसलिये कर्मक्षेत्रमें जितना कम बोलनेसे काम चले, उतना ही कम बोलना चाहिये।

९९४—केवल मुँहसे ही ज्ञान बघारनेवाला पण्डित नहीं है,

स्वादिष्ठ व्यञ्जन होंगे । हर समय कितने ही सेवक सेवामें रहेंगे । यहाँ तो सिंहादि जङ्गली जानवरोंके भयसे आपको नींद भी नहीं आती होगी । वहाँ ऐसा कोई खटका नहीं रहेगा । आप मेरे साथ अवश्य चलिये ।'

महात्मा—'भाई ! तुम इतना आग्रह मत करो । हमें तुम्हारे ऐसे किसी भोगकी इच्छा नहीं है । हम यहाँ बड़े आनन्दमें हैं ।'

बादशाहने इसपर भी बहुत आग्रह किया । किन्तु महात्मा उसके साथ चलनेको तैयार न हुए । इससे उसके चित्तको बड़ी ठेस लगी और वह बोला, 'देखिये महाराज ! मैं बादशाह हूँ । आपको मेरी बात माननी ही चाहिये । यदि आप मेरे साथ राजीसे नहीं चलेंगे तो अच्छा नहीं होगा ।'

महात्मा—'हाँ, तुम प्रसन्नतासे इस शरीरको कैद कर सकते हो; परन्तु तुम्हारे बताये हुए भोगोंके लालचसे तो मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा ।'

बादशाह—'कैद ही नहीं, मैं कत्ल भी करा सकता हूँ । इसलिये आपको मेरी बात मान लेनी चाहिये ।'

इसपर महात्माने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, 'भैया ! तुम कैसी अभिमानकी बातें करते हो । तुम्हारी क्या ताक़त है जो मेरा बाल भी बाँका कर सको । तुम जानते नहीं मैं क्या चीज़ हूँ । देखो, आग मुझे जला नहीं सकती, जल मुझे गला नहीं सकता, हथियार मुझे काट नहीं सकता और वायु मुझे सुखा नहीं सकता । मैं वह वस्तु हूँ जो सदा-सदैव एकरूप रहती है, गर्मी और सर्दी

ठहरता है, इससे जो नीचा होता है वह पानी निकालकर पी लेता है, पर ऊँचेको प्यासा ही लौट जाना पड़ता है।

१००२—सदा याद करते रहनेकी तो एक ही वस्तु है। सदा-सर्वदा, सर्वत्र श्रीकृष्णके सुन्दर नामोंके ही स्मरणसे प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है। सदा उसीका स्मरण करते रहना चाहिये।

१००३—मनमें कामना रखकर भजन करनेसे सिर्फ उसका फल मिलता है, परन्तु निष्कामभजनसे भगवान्‌की प्राप्ति होती है। सांसारिक फल तो मनुष्यको भगवान्‌से दूर करता है इसलिये निष्कामभावसे भगवान्‌का भजन करना ही श्रेष्ठ है।

१००४—जबतक यह शरीर स्वस्थ है, जबतक वृद्धावस्था दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयु शेष नहीं हुई है, तभीतक परमात्माको पानेके लिये उपाय कर लो। नहीं तो फिर, घरमें आग लग जानेपर जो कुआँ खोदनेकी बात सोचकर चुपचाप बैठा रहता है, उसे जलना पड़ता है, यही दशा होगी।

१००५—भगवान्‌का नाम ही भव-रोगकी दवा है। अच्छा न लगनेपर भी नाम-कीर्तन करते रहना चाहिये, करते-करते क्रमशः नाममें रुचि हो जायगी।

१००६—विषयी पुरुष नीचे लिखी तीन बातोंके लिये अफसोस करते हुए मरते हैं—(१) इन्द्रियोंके भोगोंसे तृप्ति नहीं हुई, (२) मनकी बहुत-सी आशाएँ अधूरी ही रह गयीं और (३) पर-लोकके लिये कुछ साथ न ले चले।

शान्तिदेवी—'इसके लिये तुम यह विचार करो कि इस शरीरमें 'मैं' कहलानेवाली वस्तु क्या है ? हाथ, पाँव, नाक, कान, पेट या पीठ अथवा इन सबका समूह ? इनमेंसे तो कोई 'मैं' कहा नहीं जा सकता, क्योंकि इन्हें 'मेरा हाथ', 'मेरा पाँव' इत्यादि प्रकारसे कहा जा सकता है। लोकमें मेरी कही जानेवाली वस्तु सर्वदा मुझसे भिन्न ही होती है, इसलिये इन वाक्योंसे सिद्ध होता है कि मैं इन सबसे भिन्न हूँ। जैसे मेरा मकान मुझसे भिन्न है और मैं उसका स्वामी हूँ इसी प्रकार मेरे हाथ-पाँव आदि भी मुझसे भिन्न हैं और मैं उनका स्वामी हूँ। मैं आत्मा हूँ और अपने इन मन, बुद्धि एवं देहादिको चेतना प्रदान करनेवाला हूँ। ये सब मेरे अंग हैं। जैसे हाथ-पाँव आदि अंगोंमेंसे किसीका नाश होनेपर भी देह-का नाश नहीं होता उसी प्रकार इन देहादिके नाशसे भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। देखो, सुमति ! जब हम सो जाते हैं या स्वप्न देखते हैं तो हमें इन मन-बुद्धि आदिका कोई भान नहीं रहता परन्तु हम तो ज्यों-के-त्यों रहते ही हैं। इसलिये ये सब पदार्थ क्षणभरमें ही नष्ट होनेवाले हैं किन्तु आत्मा नित्य एवं अविनाशी है। वह सुख-स्वरूप है। विषय तो सभी नाशवान् हैं। उनसे पूर्ण सुख नहीं मिल सकता। पूर्ण सुख तो आत्मरमणमें ही है। इस आत्मदेवसे मुँह फेर लेनेके कारण राजा-प्रजा, धनी-दरिद्र, योगी-यति, सधवा-विधवा सभी दुखी रहते हैं। यदि ये विषयोंकी ओरसे मुख मोड़-कर आत्मचिन्तन करने लगें तो सारे दुःखोंसे छूटकर परमानन्द लाभ कर सकते हैं।'

सुमति—'बहिनजी ! मैं तो अबतक यह समझती थी कि गरीबी

मनसे कामनाका त्याग नहीं करते, वे चीजका चौगुना दाम चाहनेवाले लोग सेवक नहीं हैं ।

१०१५–जिसका मन परमात्मामें रहता है, परमात्मा उसकी सँभाल रखते हैं ।

१०१६–मनुष्य जब किसी उत्तम कार्यमें लग जाता है तब उसके नीची श्रेणीके कार्य दूसरे लोग आप ही सँभाल लेते हैं । इसी प्रकार ज्यों-ज्यों अपने ध्येयकी ओर आगे बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों उसके सांसारिक और शारीरिक कार्य कुदरतके नियमसे उलटे अच्छी तरह होने लगते हैं ।

१०१७–जिस विद्यासे लोग जीवन-संग्राममें शक्तिमान् नहीं होते, जिस विद्यासे मनुष्यके चरित्रका विकास नहीं होता और जिस विद्यासे मनुष्य परोपकार-प्रेमी और पराक्रमी नहीं बनता, उसका नाम विद्या नहीं है ।

१०१८–बदला लेनेका खयाल छोड़कर क्षमा करना अन्धकारसे प्रकाशमें आना है और जीते-ही-जी नरककी जगह स्वर्गका सुख भोगना है ।

१०१९–असली सत्त्वगुणी भक्त लोग रातको मशहरीमें पड़े-पड़े ध्यान किया करते हैं । लोग समझते हैं कि वे सोते हैं परन्तु जिस समय सब लोग सोते हैं, उस समय वे परलोकका काम बनाया करते हैं । वे बाहरका दिखावा बिल्कुल ही पसन्द नहीं करते ।

कोई मूर्ख यह समझने लगे कि जलमें भी सूर्य रहता है तो उसकी इस समझपर समझदारोंको तो हँसी ही आवेगी। इसी प्रकार जो सुख आत्माका स्वरूप है उसे दुनियाके विषय-भोगोंमें समझनेवाले मूर्खोंकी बुद्धिपर महानुभावोंको तो तरस ही आता है। जिस प्रकार गड्ढेका जल सूखनेपर उसमें सूर्यकी परछाईं दिखायी नहीं देती उसी प्रकार विषयोंमें दिखायी देनेवाला सुख तो उनके साथ ही नष्ट हो जाता है। इसलिये सुमनि! तुम संसारके सारे विषयोंसे चित्त हटाकर एकान्त स्थानमें आत्मचिन्तनका अभ्यास किया करो। अपनी सारी इन्द्रियोंके व्यापारोंको रोककर मनको आत्मामें स्थिर करो। ऐसा अभ्यास करते-करते जब तुम्हारा चित्त स्थिर हो जायगा तो तुम्हें उस आनन्दका रस मिलेगा जिसको कहकर समझाना मुश्किल है। वह आनन्द जिसे मिल जाता है वही उस रसको समझता है। फिर तुम्हें सारे विषय फीके दिखायी देंगे। कोई भी विषय तुम्हें फँसा न सकेगा। बहिन! दुनियाके ये विषय तो जहर मिले हुए लड्डू हैं। जो इनकी मधुरतामें फँसकर इन्हें चखने जाता है उसका तो सर्वनाश ही हो जाता है। इसलिये तुम दुनियाके किसी भी पदार्थमें ममता मत करो। सारे विषयोंकी इच्छाको कूड़ा समझो और विचार-रूपी झाड़ू लगाकर दिलसे इस कूड़ेको निकाल फेंको। एक महात्मा कहते हैं—

छोड़ ख्वाहिशें जान जहान कूड़ा
कहा आरिफाँदा हिये धारिये जी।

अर्थात् सारी इच्छाओंको छोड़ दो, संसारको कूड़ा समझो तथा संतोंकी बात हृदयमें धारण करो।

१०२६—कछुएकी पीठपर चाहे बाल उग जायँ, वन्ध्याका पुत्र किसीको मार डाले, आकाशमें फूल फूल जायँ, मृग-जलसे प्यास मिट जाय, खरगोशके सींग आ जायँ, अन्धकार सूर्यका नाश कर दे और बर्फमें अग्नि प्रकट हो जाय परन्तु रामसे विमुख मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता।

१०२७—ज्ञानीकी बुद्धिमें फल और हेतुसे आत्माकी पृथक्ता प्रत्यक्ष है, इसलिये उसके मनमें अनात्म पदार्थोंमें मैं यह हूँ, ऐसा आत्मभाव नहीं हो सकता।

१०२८—गोविन्द-विरहमें मेरा निमेषकाल भी युगके समान बीतता है। मेरी आँखोंने वर्षा-ऋतुका रूप धारण किया है और समस्त जगत् मुझे शून्य-सा प्रतीत होता है।

१०२९—प्रभुको प्राप्त करनेका पहला साधन है—प्रभुको प्राप्त करनेका निश्चय ! यह निश्चय होनेपर ही इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। कुविचार क्षीण हो जाते हैं और उच्च अवस्था प्राप्त हो जाती है।

१०३०—अरी बुद्धि चकई ! तू भगवान्के चरण-सरोवरमें जा बस, जहाँ न तो कभी प्रेम-वियोग होगा और न रोग, दुःख या शोक ही है, तथा रात-दिन 'राम-राम' की वर्षा हो रही है।

१०३१—कल करना हो सो आज ही कर लो और जो आज करना हो, उसे अभी कर लो, पलमें मृत्यु हो जायगी, फिर कब करोगे। लोग कैसे बावले हैं जो झूठे सुखको सुख कहते

देखकर खेद एवं शोक भी होता है। किन्तु जब आँखें खुलती हैं तो कहते हैं कि हम नाहक दुखी हो रहे थे। वहाँ तो भय या शोकका कोई कारण ही नहीं था। इसी प्रकार जबतक हम मोहकी नींद ले रहे हैं तबतक हमें संसारके ये सब पदार्थ सत्य ही दिखायी देते हैं, किन्तु जब यह निद्रा टूट जाती है और हम असली तौर-पर जाग जाते हैं तो संसारके सब विषय तुच्छ जान पड़ते हैं। फिर किसी भी प्रकारका मोह, भय या बन्धन नहीं रहता और हम निर्भय होकर कह सकते हैं कि संसार मिथ्या है, केवल ब्रह्म ही सत्य है। देखो, सुमति! जिस समय चित्तसे दुनियाके सुखोंकी आशा मिट जायगी उस समय तुम्हें स्वयं ही आत्मसूर्यके परमपवित्र प्रकाश-का अनुभव होने लगेगा। यह विषयोंकी चाह ही आत्माको ढकने-वाला सबसे मोटा परदा है; यह दूर हुआ कि सारे दुःखोंसे सदाके लिये छुटकारा मिल गया। एक महात्मा कहते हैं—

चाह चमारी चूहड़ी, तू नीचनकी नीच।
मैं तो पूरन ब्रह्म था, होती तू नहिं बीच॥

एक दूसरे महात्मा कहते हैं—

चाह गयी चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जाको कछू न चाहिये, सो जग शाहनशाह॥

नहीं है, राग ही सबसे बढ़कर दुःख देनेवाला है और त्यागके समान कोई सुखदाता नहीं है ।

१०३८—साधुओंके संगसे श्रीभगवान्‌के पराक्रमका यथार्थ ज्ञान करानेवाली, हृदय और कानोंको सुख देनेवाली कथाएँ सुननेको मिलती हैं, उन कथाओंसे मोक्षरूप भगवान्‌में श्रद्धा होती है, श्रद्धासे रति और रतिसे भगवान्‌में भक्ति होती है ।

१०३९—बुद्धिमान् धीर पुरुषोंको चाहिये कि और सब कर्मोंको छोड़कर आत्माके विचारमें तत्पर रहकर संसार-बन्धनसे छूटनेका यत्न करें ।

१०४०—धन चुराया गया, रोता क्यों है ?-क्या चोर ले गये ? रो अपनी इस समझपर । प्यारे ! लेने-ले जानेवाला दूसरा कोई नहीं है, वह एक ही है जो नये-नये बहानोंसे तेरा दिल लिया चाहता है । गोपियोंके इससे बढ़कर और क्या भाग्य होंगे कि श्रीकृष्ण उनका मक्खन चुरावें । धन्य है वह जिसका सब कुछ चुरा लिया जाय । मन और चित्ततक भी बाकी न रहे ।

१०४१—अहंकार करना व्यर्थ है । जीवन, यौवन कुछ भी यहाँ नहीं रहेगा । सब तीन दिनोंका सपना है ।

१०४२—हे प्रभो ! तेरे सामने हाथ जोड़कर सच्चे हृदयसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि मैं माँगूँ या न माँगूँ, मुझे ऐसी कोई चीज कभी न देना जो मुझे अच्छी लगनेपर भी मेरा बुरा करनेवाली हो और मेरी बुद्धिको कुमार्गपर ले जानेवाली हो ।

१०४३—वैराग्यके तीन प्रकार हैं— (१) अपवित्र वस्तुओं-

दूध मिल जाय तो मैं स्वयं ही खीर बना लूँ। एक दिन दैवयोगसे एक ग्वालिनी दूध बेचती हुई उधर आ निकली। उसे देखकर बालक बड़ा प्रसन्न हुआ और उससे हाथ जोड़कर कहने लगा, 'मैया! मुझे खीर खानेकी बड़ी इच्छा है; किन्तु मैं बड़ा कंगाल हूँ, मेरे पास दूध मोल लेनेके लिये पैसा नहीं है। परमात्माने तुझे दूध देनेमें समर्थ बनाया है और उन्हींकी इच्छासे तू मेरे पास आयी है; सो क्या तू मुझे थोड़ा-सा दूध देगी?'

ग्वालिनी परमात्माकी भक्त थी। उसका हृदय बड़ा कोमल था। लड़केकी बातें सुनकर उसकी आँखोंमें आँसू भर आये और वह बड़े स्नेहयुक्त मधुर वचनोंमें बोली, 'ले बेटा! दूध ले ले।'

बालक एक लोटा उठा लाया और बोला, 'माँ! इसमें दूध दे दे।' ग्वालिनीने उसे दूधसे भर दिया और जाने लगी। वह समझता था कि ग्वालिनी उसे कठिनतासे आधा सेर दूध देगी, परन्तु जब देखा कि उसने बड़ी प्रसन्नतासे उसका एक सेर दूधका लोटा भर दिया है तो उसका लोभ बढ़ा और वह बोला, 'मैया! मुझे थोड़ा दूध और दे दे, इतने दूधकी भला कितनी खीर बनेगी?'

ग्वालिनी—'तू दूसरा बरतन ले आ। इसमें तो और आ नहीं सकता।'

बालक—'मैया! तू मुझे कितना दूध और दे देगी।'

ग्वालिनी—'मेरी तो टोकनी भरी है, तुझे जितना चाहिये उतना ले ले।'

१०५०-जिसका मन विषयोंमें नहीं है, जिसका मन निर्मल है, जिसकी इन्द्रियाँ विकारको प्राप्त नहीं होतीं, उसीका नाम वैष्णव है।

१०५१-अपनी स्त्रीके सिवा अन्य किसी स्त्रीसे सम्बन्ध न रक्खे। किसी भी स्त्रीको अपने पास सहसा न रहने दे। अपनी स्त्रीसे भी उचित ही सम्बन्ध रक्खे और चित्तको कभी आसक्त न होने दे।

१०५२-धान जबतक सीजता नहीं, तभीतक उग सकता है। लेकिन एक बार भी सीज जानेपर वह नहीं उगता। ऐसे ही जीव एक बार ज्ञानाग्निमें पक गया तो फिर उसे जन्म लेना नहीं पड़ता। जबतक अज्ञान है तभीतक आना-जाना है।

१०५३-जब विवेकके द्वारा मनकी सारी उपाधियाँ छूट जाती हैं और वैराग्यके उत्पन्न हो जानेसे गृहस्थीका बखेड़ा छूट जाता है तब मनुष्य अन्दर और बाहर दोनों ओरसे मुक्त होकर योगी हो जाता है।

१०५४-जिस क्षण भगवन्नामका स्मरण न हो, वही सबसे बड़ा दुःख है और भगवन्नामका स्मरण होता रहे तो शरीरको चाहे कितना भी क्लेश हो उसे परम सुख ही समझना चाहिये।

१०५५-तुम्हारे सब सांसारिक बन्धन और सम्बन्ध तुम्हें चिन्ता और दुर्भाग्यके वशमें डालते हैं। उनसे ऊपर उठो। ईश्वरसे अपनी एकताका अनुभव करो, बस, तुम्हारा निस्तार है। तुम स्वयं मोक्षरूप हो।

पी सकेगा। वस, वह दूधको आगपर रखकर चावल और चीनी माँगने चला गया। भाग्यसे आज उसे सत्र चीज़ें मुँहमाँगी मिल गयीं। जत्र वह चावल और चीनी लेकर आया तो देखा कि सारा दूध उवलकर वरतनसे वाहर निकल गया है और जो थोड़ा-सा वचा है वह वरतनमें ही जल गया है। यह देखकर उसकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। उसे ग्वालिनीकी वात याद आयी और उसके कानमें ये मधुर शव्द गूँजने लगे, 'वेटा! तू खीर मत वना, खीर वनानेमें कष्ट होगा, तू दूध पी ले।' अत्र तो वह वहुत पछताया। ग्वालिनीके कहनेसे उसने जो दूध पी लिया था वही उसका रहा, वाकी सत्र तो तृष्णाकी आगमें जल गया।

इतनेहीमें ग्वालिनी दूध वेचकर इसी मार्गसे वापिस लौटी। लड़केको उदास और रोते देखकर वोली, 'वेटा! क्यों रो रहे हो?'

वालक—'मैं आगपर दूध चढ़ाकर चावल और चीनी माँगने चला गया था। मेरे पीछे सारा दूध उवलकर निकल गया।'

ग्वालिनी—'वेटा! तूने आगपर दूध क्यों चढ़ाया था। पहले चावल और चीनी ले आता।'

वालक—'पीछे कुत्ता-विल्ली पी जाता तो?'

ग्वालिनी—'इससे उनका तो पेट भरता। अत्र तो न तेरा रहा न उनका।'

वालक—'वता माँ! अब मैं क्या करूँ? मैंने वड़ी मूर्खता की जो तेरा कहा नहीं माना। इसीसे मुझे दुःख हो रहा है।

बालकके समान अथवा पिशाचादिके समान स्वेच्छानुसार भूमण्डलमें विचरते रहते हैं।

१०६३—भगवान्‌की भक्ति करना ही मनुष्यका परम पुरुषार्थ है। उन्हींकी भक्ति करके परमशान्तिको प्राप्त करो।

१०६४—मेधावी और बहुश्रुत सत्पुरुषोंका संग करो, क्योंकि जो महापुरुषोंकी शरण लेता है वह उसको जानकर सुख प्राप्त करता है।

१०६५—जब एक रामकी ही शरण लेनेसे स्वार्थ और परमार्थ सहजमें ही सिद्ध हो जाते हैं तब दूसरेके द्वारपर जाकर अपनी हीनता दिखलाना उचित नहीं।

१०६६—मनुष्य! उस दिनको याद रख जिस दिन तेरी देह छूट जायगी और गंगा-तटपर जाकर जला दी जायगी, यहाँका न कुछ संग जायगा और न वहाँ कोई सहायक होगा।

१०६७—व्याकुल होकर उसके लिये रोनेसे वह मिलता है। लोग लड़के-बच्चेके लिये, रुपये-पैसेके लिये कितना रोते हैं, किन्तु भगवान्‌के लिये क्या कोई एक बूँद भी आँसू टपकाता है? उसके लिये रोओ, आँसू बहाओ तब उसको पाओगे।

१०६८—मूर्ख समझता है कि वह इन्द्रियोंके सुख लूटता है किन्तु वह यह नहीं जानता कि अस्वच्छ विचार या कार्यके लिये बदलेमें उसकी जीवन-शक्ति ही बिक जाती अथवा नष्ट हो जाती है।

१०६९—हृदयकी सरलता और निर्मलता ईश्वरीय ज्योति है, यह ज्योति ही ईश्वरका मार्ग दिखलाती है। प्रभुसे क्षमाकी आशा

ग्वालिनीका शब्द कैसे सुनता ? जब ग्वालिनीने उसके शिरपर हाथ रखकर हिलाया तो वह बोला, 'क्या कहती हो माँ !' और फिर रामा-रामा ही रटने लगा ।

ग्वालिनीने कहा, 'बेटा ! दूध ले ले ।'

भक्तू–'दूध ! दूध तो मैं पी चुका । रामा-रामा·······'

ग्वालिनी–'वह तो तूने कल पिया था ।'

भक्तू–'बस, मुझे और नहीं चाहिये । रामा-रामा·······'

ग्वालिनीने सोचा, 'कहीं लड़का पागल न हो जाय ।' तब फिर आवाज दी, 'भक्तू, बेटा ! दूध ले ले ।'

भक्तू–'माँ ! मेरा बरतन छोटा है । जितना उसमें आता है उतना मैं ले चुका, और लूँगा तो गिर जायगा ।'

इस समय भक्तू रामा-रामाकी धुनमें लगकर भूख-प्यास सब कुछ खो बैठा था । इसमें उसे इतना रस आ रहा था कि उसके आगे उसे कुछ भी नहीं सुहाता था । उसकी दूधकी सारी चाह शान्त हो चुकी थी । दूसरे दिन जब ग्वालिनी आयी तो उसने उसे बिल्कुल शान्त बैठा पाया । ग्वालिनीको देखकर भक्तूने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोला, 'माता ! तूने मुझे बड़ा सुखदायी दूध पिलाया है । इसने तो मेरी कायापलट ही कर दी ।'

ग्वालिनी–'बेटा ! आज तुम्हारा क्या हाल है ? कल तुम्हें क्या हो गया था ? तुम रामा-रामा क्यों रट रहे थे ?'

भक्तू–'माँ ! मैंने तुम्हारा नाम तो इसलिये रटना आरम्भ किया था कि मैं उसे भूल न जाऊँ । परन्तु अब तो वह ध्वनि मेरे रोम-

१०७५—ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु उस ज्ञानकी कद्र करनेवाला शुद्ध मन भी तो होना चाहिये। वैराग्यके विना ज्ञान कभी नहीं ठहर सकता।

१०७६—भोजनमें जहर मिला हो और यह बात भोजन करनेवालेको माल्रम हो जाय तो वह तुरन्त थाली छोड़कर उठ जायगा, इसी प्रकार संसारकी अनित्यता और दुःखरूपताका पता लगते ही मनुष्यको वैराग्य हो जाता है। फिर वैराग्य मनसे हटता ही नहीं।

१०७७—मैंने संसारके सुख-दुःख, जीवन-मरण तथा जरा और रोग देख लिये हैं, उन्हींके चङ्गुलसे बचनेके लिये मैंने संन्यास लिया है। क्या फिर भी मैं मूर्खोंकी तरह उनका स्वाद चखनेके लिये लौट सकता हूँ?

१०७८—भगवान्‌की खोज करना और राज्यपदकी इच्छा रखना ये दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते; इनमें उतना ही विरोध है, जितना धूप और छायामें, आग और पानीमें। जो मनुष्य राज्यपद पाना चाहता है उसके लिये शान्तिकी इच्छा करना व्यर्थ है।

१०७९—देहको चाहे जितना सुख-दुःख हो, भक्त उसका ख्याल नहीं करते। उनकी वृत्ति एकमात्र भगवद्भक्तिमें लगी रहती है। वे नित्य भक्तिके ऐश्वर्यमें सराबोर रहते हैं।

१०८०—घरमें दीया जलानेसे वह झरोखेमें भी प्रकाशित

फलकी इच्छा न कर उसे भगवान्को समर्पण कर दे। ऐसा करनेसे उसका सब दुःख दूर हो सकता है।

सुमति! भगवान् तो सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनमें आनन्दके सिवा एक तृणको भी स्थान नहीं है। ऐसे आनन्दघन भगवान्को छोड़कर जो सांसारिक वासनाओंकी पोट बाँधे हुए हैं उन्हें भला, कब सुख मिल सकता है। देखो, वासनाओंका अन्त भोगके द्वारा कभी हो नहीं सकता। इसीसे जीव निरन्तर जन्म-मरणके चक्करमें पड़कर भटकता रहता है। किन्तु जो पुरुष वासनाओंके प्रलोभनोंकी ओरसे मुख मोड़-कर भगवद्भजनमें लग जाता है उसके सारे दुःखोंका सर्वदाके लिये अन्त हो जाता है। इसलिये निरन्तर भगवत्स्मरणका ही प्रयत्न करना चाहिये।

इसके पश्चात् शान्तिदेवी सितार बजाकर यह पद गाने लगीं—

यह जग है गोरखधन्दा। मत बोल किसीको मन्दा ॥टेक॥
एक हाड़-चाम है इसमें। मल-मूत्र भरा है जिसमें॥
इस तनुको लख तू गन्दा। मत बोल किसीको मन्दा ॥ १॥
मत कुटुँब देख तू फूलै। मत धन-यौवनमें भूलै॥
यह बिछा मोहका फन्दा। मत बोल किसीको मन्दा ॥ २॥

बहिन! तुमने देखा होगा गोरखधन्धा लोहे या पीतलके तारोंका बना हुआ एक यन्त्र होता है। उसे इधर-उधर घुमानेसे कुछ-का-कुछ बन जाता है। इसी प्रकार संसारकी दशा है। इसका कभी कोई भरोसा नहीं करना चाहिये। संसारसे उदासीन रहकर आत्मकल्याणका ही प्रयत्न करना चाहिये। देखो, श्रीनारायणस्वामी कहते हैं—

जन्म, मृत्यु और जराखूप दुःखोंवाले संसारमें ही पड़ा करते हैं, कुछ भी विचार नहीं करते, उन्हें पशु ही समझना चाहिये ।

१०८६—जो अपने लिये या किसी दूसरेके लिये पुत्र, धन और राज्य नहीं चाहते और न अधर्मसे ही अपनी उन्नति चाहते हैं वे ही पुरुष सदाचारी, प्रज्ञावान् और धार्मिक हैं ।

१०८७—गौ अपने गलेमें पड़ी हुई मालाके रहने या गिरने-की तरफ जिस प्रकार कुछ भी ध्यान नहीं देती इसी प्रकार प्रारब्धकी डोरीमें पिरोया हुआ यह शरीर रहे या जाय, जिसके चित्तकी वृत्ति आनन्दरूप ब्रह्ममें लीन हो गयी है, वह पुरुष फिर उसकी ओर देखता ही नहीं ।

१०८८—भगवान्‌के रूपका ध्यान करो, भगवन्नामसंकीर्तन करो, भगवान्‌के गुणानुवादका गायन करो, भगवान्‌की लीलाओंका परस्पर कथन और श्रवण करो ।

. १०८९—हे भगवन् ! मेरे जीवनके शेष दिन किसी पवित्र वनमें 'शिव, शिव, शिव' जपते हुए वीतें । साँप और फूलोंका हार, वलवान् वैरी और मित्र, कोमल पुष्प-शय्या और पत्थरकी शिला, रत्न और पत्थर, तिनका और सुन्दरी कामिनी—इन सबमें मेरी दृष्टि सम हो जाय ।

१०९०—भगवान् श्रीराम जिसकी ओर कृपाकी नजरसे देखते हैं उसके लिये विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं, समुद्र गौके खुर बराबर हो जाता है, अग्नि

दिया। अब मैं सारी कामनाओंको छोड़कर आत्मानन्द प्राप्त करूँगी। आज आपकी बातोंसे मुझे अपूर्व सुख और शान्ति मिली है, ऐसा मालूम पड़ता है मानो आँखोंपरका पर्दा हट गया हो।'

शान्तिदेवी—'अच्छा, सुमति ! अब मैं जाऊँगी। कल तुम मेरे साथ चलना। यहाँ हरिद्वारसे एक देवीजी पधारी हैं। वे स्त्रियोंको बड़ा सुन्दर उपदेश करती हैं। उनके यहाँ कुछ हरिचर्चा होगी।'

सुमति—'मैं पिताजीसे पूछूँगी। यदि उनकी आज्ञा मिल गयी तो अवश्य चलूँगी।' शान्तिदेवीने मुसकाकर कहा, 'यदि सत्संगके लिये तुम्हारी तीव्र इच्छा होगी तो कौन रोकेगा? रोका तो उन्हींको जाता है जो गृहकार्योंको बेगार समझकर उनकी उपेक्षा करती हैं, बात-बातमें झूठ बोलती हैं और अपने कर्तव्यका ध्यान नहीं रखतीं। वे यह नहीं जानतीं कि सब प्राणियोंमें एक ही आत्मा विराजमान है। इसीलिये बात-बातमें मुँह फुला लेती हैं और दूसरोंपर अपना क्रोध झाड़कर उन्हें दुखी करती हैं। देखो बहिन! समता, सन्तोष, सत्संग और विचार—ये ही मोक्षके चार द्वारपाल हैं। इनका सर्वदा संग करना चाहिये। जो लोग सेवा और सत्संगकी निन्दा करते हैं वे तो स्वयं ही अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारते हैं। परन्तु तुमने तो अपने सद्व्यवहारसे अपने सब सम्बन्धियोंको जीत लिया है। वे भला,—तुम्हें सत्संगसे क्यों रोकेंगे? संसारमें सत्संगसे बढ़कर कुछ भी नहीं है। जिस पुरुष या स्त्रीपर भगवान्‌की असीम कृपा होती है उसीकी सत्संगमें प्रवृत्ति होती है, वही गुरुकी खोज करता है और फिर गुरुकृपासे आत्मज्ञान प्राप्त करके कृतार्थ हो जाता है।'

कीर्तन करते हुए ही घरका सारा काम करते हैं, वे भक्तगण धन्य हैं !

१०९७–एक क्षणके लिये भी आयुका नाश होना बन्द नहीं होता, क्योंकि शरीर अनित्य है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको विचारना चाहिये कि नित्य वस्तु कौन-सी है। उस नित्य वस्तुको जान लेना ही सबसे बड़ा ज्ञान है।

१०९८–जब काल सुमेरु-जैसे पर्वतको भी जला देता है, बड़े-बड़े सागरोंको सुखा देता है, पृथिवीका नाश कर देता है तब हाथीके कानकी कोरके समान चञ्चल मनुष्य तो किस गिनतीमें है।

१०९९–काम-क्रोध बड़े ही क्रूर हैं, इनमें दयाका नाम नहीं, इन्हें काल ही समझो। ये ज्ञाननिधिके साँप, विषयकन्दराके बाघ भजनमार्गके घातक हैं। ये जलमें नहीं, बिना ही जलके डुबो देते हैं, बिना ही आगके जला देते हैं और बिना ही शस्त्रके मार डालते हैं।

११००–वे माता-पिता धन्य हैं, और वही पुत्र धन्य है जो किसी प्रकारसे रामका भजन करता है। जिसके मुखसे धोखेसे भी रामका नाम निकलता है उसके पैरोंकी जूती मेरे तनके चमड़ेसे बने तो भी कम ही है। वह चाण्डाल भक्त अच्छा जो रात-दिन रामको भजता है। जिसमें हरिका नाम नहीं, वह ऊँचा कुल किस कामका ?

११०१–मनरूपी पखेरू तभीतक विषयवासनाके आकाशमें उड़ता है, जबतक कि वह ज्ञानरूपी बाजकी झपेटमें नहीं आता।

सन्तुष्ट रहूँगी ।' इस प्रकार चिन्तन करते-करते सुमतिका हृदय आनन्दसे भर आया और वह गाने लगी—

हे रे मन ! मैं तो राम जपूँगी,
राम जपूँगी, श्रीराम जपूँगी ॥ टेक ॥

तूने मुझको बहुत भुलाया अब नहिं ऐसी भूल करूँगी ।
हरिको अपना सखा बनाकर, हरिका ही अब नाम रटूँगी ॥ १ ॥
पुण्य-पापमय कर्मजनित सब, सुख-दुःखोंको सहन करूँगी ।
शुचि सन्तोष हृदय धारणकर, आत्मतत्त्वकी खोज करूँगी ॥ २ ॥
सभी शुभाशुभ कर्मोंका मैं, मनसे पूरा त्याग करूँगी ।
ऊँच-नीचका भाव न रखकर, सभी जनोंसे प्रेम करूँगी ॥ ३ ॥
हे रे मन ! मैं तो राम जपूँगी !

या तो (सड़ जानेपर) कीड़े हो जाते हैं; या (जला देनेपर) राख हो जाती है, अथवा (पशु आदिके खानेपर उनकी) विष्ठा बन जाती है । ऐसे शरीरके लिये जो मनुष्य दूसरे प्राणियोंसे द्रोह करता है जिससे नरककी प्राप्ति होती है, वह क्या अपने स्वार्थको जानता है ?

११०८—परमात्माका वाचक प्रणव है, उसका जप और उसके अर्थकी भावना करनी चाहिये । इससे आत्माकी प्राप्ति और विघ्नोंका अभाव होता है ।

११०९—परलोकमें सहायताके लिये माता-पिता, पुत्र-स्त्री और सम्बन्धी कोई नहीं रहते । वहाँ एक धर्म ही काम आता है । मरे हुए शरीरको बन्धु-बान्धव काठ और मिट्टीके ढेलोंके समान पृथ्वीपर पटककर घर चले आते हैं । एक धर्म ही उसके साथ जाता है ।

१११०—मन, वाणी और कर्मसे प्राणिमात्रके साथ अद्रोह, सबपर कृपा और दान, यही साधु पुरुषोंका सनातन धर्म है ।

११११—जो आत्मनिष्ठ हैं तथा जो आत्माके सिवा कुछ भी नहीं चाहते, वे विषयी मनुष्योंकी भाँति रमणीय वस्तुकी प्राप्तिमें हर्षित नहीं होते और दुःखरूप वस्तुकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होते ।

१११२—सोये हुए गाँवको जैसे बाढ़ बहा ले जाती है, वैसे ही पुत्र और पशुओंमें लिप्त मनुष्योंको मौत ले जाती है । जब मृत्यु पकड़ती है उस समय पिता, पुत्र, बन्धु या जातिवाले

उनके दर्शन करते ही सुमतिको एक विचित्र शान्ति और आनन्दका अनुभव हुआ तथा उसका हृदय सहज ही उनकी ओर खिँचने लगा। जब सब बैठ गयीं तो कीर्तन आरम्भ हुआ—

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं श्रीरामचन्द्रं भजे॥

यह कीर्तन प्रायः बीस मिनटतक होता रहा। इसके पश्चात् देवीजीने अपना उपदेश आरम्भ किया——

'बहिनो! तुम्हारा और सम्पूर्ण जीवोंका वास्तविक स्वरूप तो सत्य, ज्ञान और आनन्द ही है। तुम अपने इस सच्चे स्वरूपको भूलकर जो अपनेको देहादि मानने लगी हो यही तुम्हारे दुःखका कारण है। तुम इस प्रकार मोहमें फँसकर इन विषय-भोगरूपी काँचके टुकड़ोंके लिये अपने जीवनके अनमोल रत्नको क्यों लुटाती हो? इस संसारको तो तुम एक नाट्यशाला समझो। इसमें तरह-तरहके स्वाँग खेलनेके लिये ही ये सारी सामग्रियाँ एकत्रित की गयी हैं। इसमें कुछ लोग तो ऐसे हैं जो इस खेलमें ऐसे फँस जाते हैं कि इसकी असलियतको भूलकर इसे ही परम इष्ट मानने लगते हैं और कुछ इसकी असलियतको जानते हुए तटस्थभावसे अपना पार्ट खेलते हैं। इनमें जो पहले प्रकारके लोग होते हैं उन्हें पशु-पक्षी एवं कीट-पतंगादि नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकना पड़ता है। यह सब मोहकी ही महिमा है। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप तो सब प्रकारके मोह, अज्ञान और दुःखसे रहित है। तुम तो स्वयंप्रकाश हो। फिर यह आवरण कैसा? यह केवल भोगासक्तिका ही कुफल है। स्त्री, पुत्र, धन एवं इज्जतका मोह

जितेन्द्रियता तथा वृद्ध पुरुषोंकी सेवा इनसे मनुष्यको मोक्षकी प्राप्ति होती है ।

११२०—जिससे सब जीव निडर रहते हैं और जो सब प्राणियोंसे निडर रहता है वह मोहसे छूटा हुआ सदा निर्भय रहता है ।

११२१—जो मनुष्य समस्त भोगोंको पा जाता है और जो सब भोगोंको त्याग देता है, इनमें सब भोगोंको पानेवालेकी अपेक्षा सबका त्याग करनेवाला श्रेष्ठ है ।

११२२—जो संग्रहका त्याग करके अपरिग्रहमें रत है, ऐसे चित्तके मलोंसे रहित हुए ज्ञानवान् पुरुष ही निर्वाणको प्राप्त होते हैं ।

११२३—जबतक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापा नहीं आया, इन्द्रियोंकी शक्ति बनी हुई है, आयुके दिन बाकी हैं, तभीतक बुद्धिमान् पुरुषको अपने कल्याणकी चेष्टा अच्छी तरह कर लेनी चाहिये । घरमें आग लगनेपर कुआँ खोदनेसे क्या लाभ ?

११२४—जब दृश्य नहीं है, तब दृष्टि भी कुछ नहीं है । दृश्यके बिना देखना कहाँ, दृश्यके कारण ही द्रष्टा और दर्शन हैं ।

११२५—काम, क्रोध, मद, लोभकी खान जबतक मनमें है, तबतक पण्डित और मूर्खमें क्या भेद है ? दोनों एक समान ही हैं ।

११२६—सब ओरसे मनको हटाकर भगवान्के चरणोंका आश्रय लेनेवाले भगवान्के प्रिय पुरुषमें यदि कोई दोष भी हो तो हृदयमें रहनेवाले सर्वेश्वर भगवान् उसे नष्ट कर देते हैं ।

११२७—यह अखिल जगत् सर्वभूतमय भगवान् विष्णुका ही

और यदि छोड़ दो तो लौटकर तुम्हारी ही ओर आता है। परन्तु सावधान, तुम उसे पकड़ना मत, नहीं तो उसके मोहमें फँस जाओगे।' संसारमें रहकर विषयसुखकी इच्छा मत करो। तुम जितनी इच्छा बढ़ाओगे उतना ही तुम्हें सुख कम मिलेगा। यदि सुख चाहते हो तो अपनी इच्छाओंको कम करो, अपनी आवश्यकताएँ घटाओ। तुम्हें जो कुछ सामग्री मिली है भगवान्‌का दिया हुआ समझकर भगवान्‌की सेवामें उसे लगा दो, उसे अपने स्वार्थमें नष्ट न करो। तुम शरीर नहीं हो, शरीर तुम्हारा है, तुम शरीरादिके द्रष्टा हो। बस, तुम सबके द्रष्टा बने रहो। इससे विषय तुम्हें अपनी ओर न खींच सकेंगे। इस बातको भूलना ही माया है, इसके रहते हुए तो मायाका कहीं पता भी नहीं लगेगा। स्वरूपका भूलना मायाका आना समझो।

'ऐ आनन्दकी खोज करनेवालो! आनन्द तो तुम्हारा स्वरूप ही है। तुम आनन्दको बाहर कहाँ ढूँढ़ते हो? भाई, सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द तो है। केवल विषयासक्तिके कारण ही तुम इस आनन्दसे वञ्चित हो रहे हो। यदि तुम्हें आनन्दकी चाह है तो संतोंकी शरण ग्रहण करो, विषयभोगोंकी इच्छा छोड़ो। यदि इच्छा ही करनी है तो करो उस परमधनकी जो सर्वदा तुम्हारे साथ रहनेवाला है। संसारी भोगोंकी इच्छा करना तो दुःख ही मोल लेना है। तुम अपने मनको एकाग्र करके निजानन्द प्राप्त करो। इसके लिये भगवान्‌की कोई प्रतिमा सामने रखकर चित्त एकाग्र करनेका अभ्यास किया करो।

समय साधक अनेक बार गिर पड़नेपर कहीं अन्तमें सिद्धि-लाभ करता है ।

११३४—यदि मेरे दिलमें तीरकी नोंक नहीं चुमती तो तीरका क्या दोष है ? क्योंकि मेरे दिलमें जो प्रेमकी आग जलती है, वह इतनी भड़क रही है कि उसमें लोहा भी पड़े तो वह गल जाता है ।

११३५—जो कोमल और दीनहृदय विरहसे व्याकुल है, उसीमें प्रभुका आगमन होता है ।

११३६—संसारके लोग मेरी जितनी चाहें निन्दा करें, मैं इसका कुछ विचार नहीं करता । जिसके मुख हैं वह जो इच्छा हो सो कहे । मैं तो हरिरसमें मतवाला होकर कभी धरतीपर लोटता हूँ, कभी नाचता हूँ और कभी सो जाता हूँ ।

११३७—मनुष्य मनुष्यकी आँखमें धूल झोंक सकता है; पर परमात्माकी आँखोंमें धूल नहीं झोंकी जा सकती ।

११३८—स्त्रियोंकी मीठी बातोंमें नहीं भूलना चाहिये । इनकी बातें रसमयी हैं, किन्तु वैरागीके लिये तलवारकी धारके समान हैं । उनसे अपनी रक्षा करना कठिन है ।

११३९—जो परायी स्त्रियोंको माताके समान नहीं मानता वह महामूर्ख है । उसके पापका प्रायश्चित्त नहीं ।

११४०—जो पर-स्त्रियोंको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेलेके समान और सब प्राणियोंको अपने समान समझता है, वही देखता है और तो सब अन्धे हैं ।

पूरा करना, सबको प्रसन्न रखना, दैवयोगसे प्राप्त हुए सुख-दुःखको धैर्यके साथ भोगना तथा समयपर नित्य-नियम करना हमारा धर्म है। जो स्त्री या पुरुष प्राणियोंकी सेवा और भगवान्‌की पूजा करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें भगवान् सद्गतिरूप वेतन देते हैं।

'भगवान्‌ने जीवको जो भोग्य पदार्थ दिये हैं वे भी उसके कल्याणके लिये ही हैं। उनका ठीक-ठीक इस्तेमाल करनेसे वह शरीरसे नीरोग रहेगा, मनसे प्रसन्न रहेगा और उसके हृदयमें बराबर शान्ति बनी रहेगी। लेकिन नासमझी और मोहसे हम उनको बुरे कामोंमें लगाकर दुःख ही उठाते हैं। विवेकी लोग तो विषयोंको दवाकी तरह मानते हुए उनमें चिपकते नहीं वरं आत्मानन्दकी ही इच्छा करते हैं। वे जानते हैं कि आनन्द तो आत्माका ही स्वरूप है। जब चित्त किसी बाह्य वस्तुके लिये व्याकुल होता है तो उसे हासिल करनेपर उसमें कुछ थोड़ी देरके लिये चित्त ठहर जाता है। उस समय उसमें आत्मानन्दकी ही परछाईं पड़ती है। इसीसे अज्ञानीलोग समझते हैं कि विषयोंमें आनन्द है। परन्तु विषय तो जड हैं, भला उनमें आनन्द कहाँ! आनन्द तो तुम्हारे आत्माकी ही झलक है। जिसे इस आत्मानन्दका ठीक-ठीक अनुभव हो जाता है उसके लिये तो सारे विषय नीरस हो जाते हैं। वे कभी उनमें फँसते नहीं।

'परन्तु एक बात याद रहे। जिनका चित्त विषयोंसे उदासीन हो गया है उन लोगोंको भी मायासे बराबर होशियार ही रहना चाहिये। बेखबर नहीं हो जाना चाहिये। यह ठगिनी हर समय अपना घात देखा करती है। जो इसे पकड़ना चाहते हैं उनसे तो यह दूर भागती है और जो इसकी ओरसे मुँह मोड़ लेते हैं उनके पीछे

११४९–सूर्यके उदय और अस्तके साथ मनुष्योंकी जिन्दगी रोज घटती जाती है। समय भागा जाता है, पर कारोबारमें मशगूल रहनेके कारण वह भागता हुआ नहीं दीखता। लोगोंको पैदा होते, विपत्तिग्रस्त होते और मरते देखकर भी मनमें भय नहीं होता। इससे मालूम होता है कि मोहमयी प्रमादरूप मदिरा (शराब) के नशेमें संसार मतवाला हो रहा है।

११५०–मनुष्य दूसरेको बूढ़ा हुआ तथा मरनेवाला देखता है पर आप यही समझता है मैं तो सदा जवान रहूँगा—अमर रहूँगा।

११५१–मनुष्यो! मिथ्या आशाके फेरमें दुर्लभ मनुष्य-देहको यों ही नष्ट न करो। देखो, सिरपर काल नाच रहा है। एक श्वासका भी भरोसा न करो। जो श्वास बाहर निकल गया वह वापस आवे न आवे इसलिये गफलत और बेहोशी छोड़कर, अपनी कायाको क्षणभङ्गुर समझकर दूसरोंकी भलाई करो और अपने सिरजनहारमें मन लगाओ; क्योंकि नाता उसीका सच्चा है।

११५२–माँगना और मरना दोनों समान हैं बल्कि माँगनेसे मरना भला। याचना करनेसे त्रिलोकीनाथ भगवान्‌को भी छोटा होना पड़ा, तब दूसरोंके लिये तो कहना ही क्या?

११५३–हाथके ऊपर हाथ करो, पर हाथके नीचे हाथ न करो, जिस दिन दूसरोंके आगे हाथ फैलानेकी नौबत आवे, उस दिन मरण हो जाय तो अच्छा।

खिलाड़ी होते हैं उन्हें जो भी पार्ट खेलनेको मिलता है उसीको वे कमाल कर दिखाते हैं। इसीमें उनकी कुशलता है। उसे कौन-सा पार्ट फिट होगा इसकी तजवीज कम्पनीका मालिक करता है। ठीक उसी तरह इस जगन्नाट्यके सूत्रधार श्रीभगवान्‌ने तुम्हें जो भी पार्ट दिया है उसे ठीक-ठीक खेलना ही तुम्हारा कर्तव्य है। जब तुम्हें कोई खेल खेलना ही है तो जो भी खेलना पड़े उसे खूब सावधानीसे खेलो। तुम्हारा खेल तो मालिककी मर्जीसे उसीकी प्रसन्नताके लिये है। तुम्हें उससे कुछ लेना-देना नहीं है। इसलिये तुम अपने स्वरूपको स्मरण रखते हुए सावधानीसे अपना कर्तव्य पालन करो। शरीरसे जगत्‌का कार्य करो, परन्तु मनसे भगवान्‌का चिन्तन करो। इस प्रकार संसारमें रहते हुए भी संसारसे परे रहकर कर्तव्य करना ही कर्मकौशल है, यही योग है और यही भगवान्‌को पानेका सबसे सुन्दर रास्ता है।

'बहिनो! यह याद रक्खो कि पापमें जाते समय हर एकके दिलमें एक खटका होता है। ऐसा मालूम पड़ता है कोई भीतरसे रोक रहा है। यही है अन्तरात्माकी आवाज। इसे अनसुनी करके हम पाप कर बैठते हैं और पीछे हाथ मलते और रोते-पछताते रहते हैं। यह जान लो कि इच्छा ही जीवको पापमें प्रवृत्त करती है। जब कोई कार्य इच्छाके विपरीत हो जाता है तो वही इच्छा क्रोधमें परिणत हो जाती है। यह कामना कितनी प्रबल है इसका कुछ ठिकाना नहीं है। इसका पेट कितना ही भरे जाओ यह कभी अघाती नहीं। इसे जितने-जितने भोग्य पदार्थ मिलते जाते हैं उतनी-उतनी

११६२—जितनी आवश्यकताएँ कम होंगी उतना ही सुख बढ़ेगा इसीलिये महात्मा लोग महलोंमें न रहकर वृक्षोंके नीचे उम्र काट देते हैं ।

११६३—विषयोंको हमने नहीं भोगा, किन्तु विषयोंने हमारा ही भुगतान कर दिया; हमने तपको नहीं तपा, किन्तु तपने हमें ही तपा डाला; कालका खात्मा न हुआ, किन्तु हमारा ही खात्मा हो चला; तृष्णाका बुढ़ापा न आया किन्तु हमारा ही बुढ़ापा आ गया ।

११६४—लोग दुनियाको नहीं छोड़ते, दुनिया ही भले उन्हें निकम्मा करके छोड़ दे ।

११६५—जो लोग शक्ति-सामर्थ्य रहते विषयोंको छोड़ते हैं, वे ही प्रशंसाके भाजन होते हैं ।

११६६—घर-जंजालोमें रहकर सर्दी-गर्मी और शोक-ताप आदिके कष्ट उठाने ही पड़ते हैं; फिर तप ही क्यों न किया जाय? क्योंकि घरकी झंझटोंके दुःखसे कोई लाभ नहीं, किन्तु तपसे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है ।

११६७—धनके ध्यानसे जो सुख मिलता है, वह क्षणस्थायी और झूठा है । इसलिये धन-ध्यान छोड़कर, आशुतोष भगवान् शिवके चरणोंका ध्यान करना अच्छा जिससे सभी मनोरथ पूरे होते हैं और अन्तमें जन्म-मरणके झगड़ोंसे छुटकारा मिलकर परमपद—मोक्ष मिल जाता है ।

कामनाकी उत्पत्ति विषयसेवनसे होती है। मनुष्य इन्द्रियोंके द्वारा विषय-ग्रहण करता है, मनसे उनका चिन्तन करता है और बुद्धिसे उनके सुख-दुःखका निश्चय करता है। इस बुद्धिसे ऊपर आत्मा है। अतः कामका निवास मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें ही है। तुम बुद्धिसे ऊपर हो, इसलिये कामको जीतनेमें सब प्रकारसे समर्थ हो। किन्तु इसके लिये एक बातकी बहुत अधिक आवश्यकता है—वह है वैराग्य। जबतक भोगोंमें वैराग्य नहीं होगा तबतक याद रक्खो इस कामरूप शत्रुको जीतना दुश्वार है। याद रक्खो, संसारका प्रत्येक सुख दुःखसे मिला हुआ है। उस दुःखका विचार करके सुखकी लालसा छोड़ देनी चाहिये। जिस सुखके पीछे दुःख उठाना पड़े उसे भला सुख कैसे कहा जाय? इसलिये सबसे पहला काम यह है कि इन्द्रियोंको भोगोंकी ओरसे हटाओ, मनमें दृढ़ वैराग्य लाओ।

यह माना कि इन्द्रियाँ बहुत प्रबल हैं; परन्तु मन इन्द्रियोंसे भी अधिक बलवान् है, क्योंकि मनके इशारेके बिना इन्द्रियाँ कुछ नहीं कर सकतीं। मनसे बुद्धि बलवती है, क्योंकि बुद्धिके द्वारा विचार करके मनके वेगको रोका जा सकता है। इसलिये बुद्धिको शुद्ध करके उसके द्वारा कामरूप घोर शत्रुको शिकस्त करो। जो इस निजानन्दको जान लेता है उसका कामरूप शत्रु स्वयं ही मर जाता है। निजानन्दका अनुभव करनेवाला तो अपनेको कर्ता-भोक्ता न मानकर केवल द्रष्टा समझता है। वह सब प्रकारके कार्य करते हुए भी उनसे अलग रहता है। जिस महाभागकी स्वरूपदृष्टि बनी रहती है उसपर काम-क्रोध आदि शत्रुओंका कुछ भी वश नहीं चलता।'

राक्षसीके भुलावेमें न आवें। इसके चक्करमें फँसनेसे मनुष्य बाध्य होकर नीच-से-नीच कर्म करनेपर उतारू हो जाता है।

११७९–सूर्य और चन्द्रको रात-दिन चक्कर लगाने पड़ते हैं। एक दिन क्या एक क्षण भी ये स्वेच्छानुसार आराम नहीं कर सकते तब हम और आप तो किस गिनतीमें हैं।

११८०–बड़ोंकी दुर्दशा देखकर छोटोंको अपनी विपत्तिपर रोना-कलपना नहीं बल्कि सन्तोष करना चाहिये। संसारमें कोई सुखी नहीं है।

११८१–विषयोंको चाहे जितने दिनोंतक क्यों न भोगो, वे एक दिन तुम्हें निश्चय ही छोड़ देंगे, तो उन्हें तुम स्वयं ही क्यों न छोड़ दो? तुम्हारे छोड़नेसे तुम्हें अनन्त सुख मिलेगा और उनके छोड़नेसे तुम्हें अत्यन्त दुःख उठाना पड़ेगा।

११८२–तृष्णा विषयोंके संसर्गसे बेहद बढ़ती है।

११८३–जो तृष्णाको त्यागते हैं, तृष्णासे नफरत करते हैं, उसे पास फटकने नहीं देते, उनसे तृष्णा भी दूर भागती है।

११८४–तृष्णाको शीघ्र छोड़ो! पुरानी होनेसे वह और भी बलवती हो जायगी; फिर उसे त्यागना आपकी शक्तिके बाहर हो जायगा।

११८५–पत्तों और जलपर गुजर करनेवाले ऋषि भी जब स्त्रियोंपर मोहित हो गये, तब घी-दूध खानेवालोंकी क्या बात है?

कई वार हँसी-खुशीका समय आया, कई बार शोकके अवसर आये। देवीजीकी यह बात भी बहुत ठीक है कि इस नाट्यशालामें कोई लोग तरह-तरहके खेल करते हैं और कोई केवल उन्हें देखते हैं। इन्होंने कहा कि यदि सुखी जीवन चाहती हो तो किसी ब्रह्मवेत्ता गुरुकी शरण लो। मैं भी अब इनकी शरण लेकर अपना जन्म कृतार्थ करूँगी और इनसे सुखी जीवनके साधन पूछूँगी।'

दूसरे दिन अपने पिताजीसे आज्ञा लेकर सुमति देवीजीके आश्रमको चली। वह मार्गमें सोचती जाती थी, 'फलकी कामनासे कर्म करनेसे अन्तमें दुःख ही उठाना पड़ता है। मैं कामना क्यों करूँ? और किसके लिये करूँ? मुझसे लोग तरह-तरहकी बातें कहते हैं। कोई कहता है, 'लड़का गोद ले लो, उससे चित्त बहला रहेगा।' कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। यह सब कैसे भोलेपनकी बातें हैं। जिस प्रपञ्चमें फँसकर लोग स्वयं अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं, मोहवश उसीमें सुख समझकर मुझे भी फँसानेकी चेष्टा करते हैं। मैं कभी इन प्रलोभनोंमें नहीं फँसूँगी। ये सब तो दुःखके ही कारण हैं। क्या सभी बालक मेरे बालक नहीं हैं? प्रत्येक मनुष्यको सेवाभावसे ही कार्य करना चाहिये। अपनेको भगवान्‌के चरणोंमें सौंपकर निष्काम भावसे कर्म करनेसे ही अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। हे दयामय प्रभो! वह दिन कब आवेगा जब बिना किसी कामनाके स्वाभाविक कर्म होंगे? कर्ममें मुझे किसी प्रकारका न राग होगा न द्वेष। हे मनमन्दिरमें निवास करनेवाले मेरे करुणामय प्रभो! मुझे सब प्रकार अपनी ही बना लो। हे दयानिधे! मैं

११९६–रूपकी लालसा काली नागिन है । केवल ईश्वरका नाम जपनेवाले ही उससे बचें ।

११९७–जलमें डूबा बच जाता है पर विषयोंमें डूबा नहीं बचता ।

११९८–एक कञ्चन और दूसरी कामिनी इनसे बचकर रहो । ये भगवान् और जीवके बीचमें खाई बनाते हैं ।

११९९–आपका जितना प्रेम जगत्के रूपोंमें है उतना उस जगदीशमें हो तो आपका भला हो जाता ।

१२००–सूखी हड्डीमें खून नहीं होता पर कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है । उसे अपने खूनका स्वाद आता है पर वह अज्ञानी उस आनन्दको हड्डीमें समझता है । यही दशा विषयी पुरुषोंकी है ।

१२०१–दुर्लभ मनुष्य-चोला पाकर और वेद-शास्त्र पढ़कर भी यदि मनुष्य संसारमें फँसा रहे तो फिर संसार-बन्धनसे छूटेगा कौन ?

१२०२–काम, क्रोध, लोभ और मोहको छोड़कर आत्मामें देख कि मैं कौन हूँ । जो आत्मज्ञानी नहीं हैं, जो अपने स्वरूप या आत्माके सम्बन्धमें नहीं जानते, वे मूर्ख नरकोंमें पड़े हुए सड़ते हैं ।

१२०३–जिसे किसी चीजकी जरूरत नहीं, वह किसीकी खुशामद क्यों करेगा ? निःस्पृहके लिये तो जगत् तिनकेके समान है । इसलिये सुख चाहो तो इच्छाओंको त्यागो ।

स्वाभाविक ही शुभ कर्म होते हैं। उसकी कहीं भी लाग-लपट नहीं रहती। इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिये साधकको निरन्तर भगवद्भजनमें लगे रहना चाहिये। वे दयामय प्रभु अपने भक्तकी सारी जरूरतोंको खुद रफा कर देते हैं। यहाँतक कि वे भक्तको प्रेमानन्द प्रदान करनेके लिये ही निराकारसे साकार हो जाते हैं।'

यह सुनकर सुमति सोचने लगी, 'क्या सचमुच प्रेमी भक्तकी कामनापूर्तिके लिये ही भगवान् निराकारसे साकार हो जाते हैं?' तब उसके हृदयका भाव समझकर देवीजीने कहा, 'सुमति! इसमें शंका नहीं करनी चाहिये। जो अनन्यभावसे भगवान्‌की उपासना करते हैं उन्हें अवश्य भगवान्‌का दर्शन हो सकता है। एक महात्माका वचन है—

मन तुम्हारा एक है, चाहे जिधर लगा।
काम कर हरामका, या राममें लगा॥

इसलिये तुम सब प्रकारका सन्देह छोड़कर भगवत्-चिन्तनका आश्रय लो। कुछ गीताका अभ्यास किया करो, क्या तुम उसके श्लोकोंका भाव समझ लेती हो?'

सुमति—'गुरुदेवि! मुझे संस्कृतका तो बिल्कुल अभ्यास नहीं है। हाँ, कुछ भाषा जानती हूँ। इसलिये श्रीगीताजीके श्लोकोंके भावार्थका पाठ कर लिया करती हूँ।'

देवीजी—'अच्छा बेटा! तो मैं तुम्हें एक गीताजीकी पोथी देती हूँ। तुम मेरे पास आकर रोज कुछ श्लोक पढ़ जाया करो।'

१२१३—अगर सेवक दुःखी रहता है तो परमात्मा भी तीनों कालोंमें दुःखी रहता है । वह दासको कष्टमें देखते ही क्षणभरमें प्रकट होकर उसे निहाल कर देता है ।

१२१४—जिसकी गाँठमें राम है, उसके पास सब सिद्धियाँ हैं। उसके आगे अष्ट सिद्धि और नव निधि हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं ।

१२१५—भगवान् जिसकी ओर कृपासे देखते हैं उसके लिये जहर अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र हो जाते हैं, समुद्रमें गौके खुरके बराबर जल रह जाता है, आग शीतल हो जाती है और भारी सुमेरु पर्वत रेणुके समान हो जाता है ।

१२१६—माँझीकी अहसान मेरी बला उठाये, मैंने तो अपनी नाव ईश्वरके नामपर छोड़ दी है और उसका लङ्गर भी तोड़ दिया है ।

१२१७—जब मुझे बुद्धिमानोंकी सोहबतसे कुछ मालूम हुआ, तब मैंने समझा कि मैं तो कुछ भी नहीं जानता ।

१२१८—हे मलिन मन ! तू पराये दिलको प्रसन्न करनेमें किसलिये लगा रहता है ? यदि तू तृष्णाको छोड़कर सन्तोष कर ले, अपनेमें ही सन्तुष्ट रहे तो तू स्वयं चिन्तामणिस्वरूप हो जाय । फिर तेरी कौन-सी इच्छा पूरी न हो ?

१२१९—जब आँखोंमें प्यारे कृष्णकी मनमोहिनी छवि समा जाती है तब उनमें और किसीकी छबिके लिये स्थान ही नहीं रहता ।

१२२०—जिस तरह सरायको भरी हुई देखकर, उसमें

लाभ और सुख-दुःखको समान समझो। यदि तुम मेरी बातपर विश्वास रखोगे तो मुझे ही प्राप्त कर लोगे।'

बड़ी देरतक सुमति ध्यानके इस आनन्दमें डूबी रही। यह दृश्य देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। वह गद्गद होकर भगवान् आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंका स्पर्श करनेके लिये आगे बढ़ी। इतनेहीमें उसका ध्यान टूट गया। उसने आँख खोलकर देखा तो सामने शान्तिदेवी खड़ी हैं और गीता उसके वक्षःस्थलपर रक्खी हुई है। इसके पश्चात् वे दोनों सत्सङ्गके लिये चल दीं।

नष्ट हो जाता है उसी तरह आदमी पैदा होता है और क्षणभरमें नष्ट हो जाता है।

१२२७—यह मनुष्य उसी तरह अदृश्य हो जायगा, जिस तरह सवेरेका तारा देखते-देखते गायब हो जाता है।

१२२८—जिस तरह देखते-देखते हौजका पानी मोरीकी राहसे निकलकर चला जाता है, उसी तरह यह जीवात्मा देहसे निकल जायगा, दस-पाँच दिनकी देर समझिये।

१२२९—ऐसे चञ्चल जीवनके लिये अज्ञानी मनुष्य नीच-से-नीच कर्म करनेमें संकोच नहीं करता—यह बड़ी ही लज्जाकी बात है। अगर मनुष्योंकी हजारों-लाखों वरषकी उम्र मिलती अथवा सभी काकभुशुण्डि होते, तो न जाने मनुष्य क्या-क्या पाप कर्म न करता?

१२३०—मनुष्यो! आँखें खोलकर देखो और कान लगाकर सुनो! मिट्टी और पत्थर अथवा लकड़ी वगैरहकी बनी चीजोंकी कुछ उम्र भी है, पर तुम्हारी उम्र कुछ भी नहीं। अतः इस क्षणस्थायी जीवनमें पाप-कर्म न करो।

१२३१—हे भाई! कैसे कष्टकी बात है! पहले यहाँ कैसा राजा राज करता था, उसकी राजसभा कैसी थी, उसके यहाँ कैसे-कैसे शूर सामन्त और सेना एवं चन्द्रानना स्त्रियाँ थीं, पर आज सब सूना है। सबको काल खा गया।

१२३२—जिन मकानोंमें तरह-तरहके बाजे बजते और गाने गाये जाते थे, वे आज खाली पड़े हैं। अब उनपर कौए बैठते हैं।

देवीजी—'जिसे संसार-बन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा हो उसे निरन्तर संतसमागम करना चाहिये। सत्सङ्गसे ही सच्चे वैराग्य और शान्तिकी प्राप्ति होती है। सत्पुरुष साधकके चित्तके छिपे हुए दोषोंको देखकर उनके मार्जनका मार्ग दिखा देते हैं। अतः उनकी कृपासे निर्मलचित्त होकर वह परम शान्ति प्राप्त कर सकता है। इस विषयमें मैं तुम्हें एक इतिहास सुनाती हूँ। पूर्वकालमें एक चक्रवर्ती राजा था। उसे सब प्रकारके भोग और ऐश्वर्य प्राप्त थे। किन्तु उसका चित्त बड़ा अशान्त रहता था। उसे सर्वत्र दुःख-ही-दुःख दिखायी देता था; राज्य-भोगादिमें उसे कहीं सुखका लेश भी दिखायी नहीं देता था।

एक दिन उसने अपने गुरुजीके पास जाकर कहा, 'भगवन्! एक विशाल राज्यका अधिपति होनेपर भी मैं तरह-तरहकी चिन्ताओंका शिकार हो रहा हूँ। मुझे संसारमें दुःख-ही-दुःख दिखायी देता है। आप कृपाकर किसी प्रकार इस दुःखरूप संसारसे मेरा पीछा छुड़ाइये।'

गुरु—'राजन्! यह जगत् दुःखरूप नहीं है। दुःख तो मनुष्य स्वयं रच लेता है। और जानते हो कैसे? किसी वस्तुमें मोह करके, किसी वस्तुके लिये लोभ करके, कहीं रागसे, कहीं द्वेषसे। अच्छा, यह बताओ भोगोंसे तुम्हारा चित्त हटा है या नहीं?'

राजा—'भगवन्! मैं तो अब राज-पाट छोड़कर भगवद्भजन ही करना चाहता हूँ।'

१२४१—जो यहाँ बोओगे वही वहाँ काटोगे। यहाँ अच्छा करोगे, तो वहाँ अच्छा पाओगे।

१२४२—यह जीवन सपनेके समान है।

१२४३—जिस तरह रातके स्वप्नको मिथ्या समझते हो उसी तरह दिनके दृश्योंको भी मिथ्या समझो।

१२४४—इस दुनियामें काम बहुत हैं और उम्रका यह हाल है कि पलक मारनेभरका भरोसा नहीं। इस क्षणभरकी जिन्दगीमें आपको कौन-सा काम करना चाहिये जिससे आगेकी यात्रामें सुख-ही-सुख मिले? विचारिये तो सही।

१२४५—संसारमें आकर दो काम कर लो—(१) भूखेको भोजन दो और (२) भगवान्‌का नाम लो।

१२४६—जगत्‌में ३ ६ की तरह और भगवान्‌के चरणोंमें—छः तीन ६ ३ की तरह रहो।

१२४७—संसारी माया-जालमें सुख नहीं है। संसारमें जो सुखी दीखते हैं वे वास्तवमें दुखी हैं। उनका सुख दिखावटी सुख है, सच्चा सुख नहीं।

१२४८—प्रेममें जो तन्मय हो जाते हैं उन्हींका प्रेम प्रेम है। बिना तन्मयताके प्रेम थोथा है।

१२४९—जिसमें आठ पहर डूबा रहे वही प्रेम है। लौ लगी तभी समझो, जब कि लौ छूट न जाय। जिन्दगीभर लौ लगी रहे और मरनेपर प्यारेमें समा जाय। प्रीति इसीका नाम है।

दुःखी होता हूँ ?' फिर उसने गुरुदेवसे पूछा, 'भगवन् ! इन लोभ-मोहादि शत्रुओंसे किस प्रकार छुटकारा हो सकता है ?'

गुरुजी—'राजन् ! मोहके पंजेसे छूटनेके लिये आत्मज्ञान ही एकमात्र रास्ता है। वह आत्मतत्त्व सर्वदा एकरस और सर्वत्र परिपूर्ण है। उसे प्राप्त कर लेनेपर सारे दुःख भाग जाते हैं। उसका ज्ञान होनेपर जड-चेतनकी गाँठ खुल जाती है और सब प्रकारकी शङ्काएँ और कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं। वही शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा जानने योग्य वस्तु है। वह सर्वव्यापी आत्मतत्त्व है। उसका कभी नाश नहीं होता।

राजा—'महाराज ! यह तो मैं जानता हूँ कि आत्मा ज्ञानस्वरूप, सर्वव्यापक, शान्त, निर्मल और अविनाशी है। वह देहादिसे भिन्न तथा शुद्ध साक्षीमात्र है। किन्तु यह बात मेरे लिये ऐसी प्रत्यक्ष नहीं है जैसे दर्पणमें मुख देखना। मैं आत्माका भी इसी प्रकार अपरोक्ष अनुभव करना चाहता हूँ। कृपया इसका कोई साधन बताइये।'

गुरुजी—'देखो, हृदयाकाशमें ब्रह्मचिन्तन करनेसे चित्त ब्रह्मस्वरूप हो जाता है और फिर अपने सच्चे स्वरूपका अनुभव करके जीव जन्म-मरणके चक्करसे छूट जाता है।'

राजा—'ज्ञानके साधन क्या हैं ?'

गुरुजी—'संसारके व्यवहारसे अलग रहना—स्त्री-पुत्रादि किसीसे सम्बन्ध न रखना, हानि-लाभमें समान रहना, निरन्तर आत्मविचारमें लगे रहना, एकान्तसेवनमें प्रेम रखना, भीड़-भाड़ एवं मेले-ठेले आदिसे

१२५७—यदि आनन्द चाहो तो आशा, इच्छा, प्रीति, तर्क-वितर्क, मोह और चिन्ता आदिको एकदम छोड़कर शुद्धचित्त हो जाओ और भगवान्‌के भजन-ध्यानमें तन्मय रहा करो।

१२५८—अगर मन एक ही ठिकाने ठहर जावे तो सहजमें ही हीरा पैदा हो जावे।

१२५९—चञ्चल मनसे सिद्धि दूर भागती है।

१२६०—जगदीशसे मिलनेके लिये स्थिर चित्त दरकार है।

१२६१—जिन्हें संसारी जंजालोंसे छूटना हो, जन्म-मरणके कष्ट न भोगने हों, वे अपने मनको अपने वशमें करें। उसे इधर-उधर जानेसे रोकें और करतारके ध्यानमें लगावें।

१२६२—अपने दिलको मार, अभिमानको मार; इसमें तेरी बड़ाई है। बड़े-बड़े खूँख्वार जानवरोंको मारनेमें वह वीरता नहीं है।

१२६३—मनुष्यो! अभ्यास करो; अभ्याससे सब कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। जैसे भी हो, मनको वासनाहीन बनाओ। वासनाहीन, निर्मल चित्तवाले व्यक्तिपर उपदेश जल्दी असर करता है और ईश्वरानुराग शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।

१२६४—खाली पेट भरनेके लिये कौएकी तरह पराया मुँह ताकना अच्छा नहीं। मुँह ही ताकना है, तो उस परमात्माका ताको, जो अभावशून्य हैं और सबका दाता है।

१२६५—भगवान्‌के चरणकमलोंसे परिचय हुए बिना, उनके पदपङ्कजोंसे प्रेम हुए बिना, मनुष्यके मनकी दौड़ नहीं मिटती।

भिक्षा माँगी। उन्होंने अपने पूर्व स्वामीको पहचान लिया और उसका विशेष सत्कार करना चाहा। तत्कालीन राजाने भी उसके पास जाकर उसका राज्य लौटानेकी इच्छा प्रकट की। परन्तु अब वह सब प्रकारकी इच्छाओंसे परे जा चुका था। इसलिये अपने निश्चयमें स्थिर रहा तथा तीन दिन केवल भिक्षावृत्तिसे निर्वाहकर वहाँसे चलता बना।

इसी प्रकार घूमता-घूमता वह गुरुदेवके पास पहुँचा और फिर उन्हींके साथ विचरने लगा। अब राजा आत्मतत्त्वकी उपलब्धि करके कृतकृत्य हो चुका था। उसका चित्त बिल्कुल शान्त रहता था। उसे किसी प्रकारके संकल्प-विकल्प नहीं उठते थे तथा शरीरके रहने-न-रहनेकी भी कोई चिन्ता नहीं थी। अब सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि सभी हालतोंमें उसे किसी प्रकारका सुख-दुःख नहीं होता था। वह निरन्तर समतामें स्थित रहता था। इस प्रकार गुरुदेवके साथ विचरता-विचरता वह एक देशमें पहुँचा। वहाँके राजाका देहान्त हो चुका था। उसका कोई उत्तराधिकारी भी नहीं था। इसे पहचानकर वहाँके कर्मचारियोंने इसका राज्याभिषेक कर दिया। यह असंगभावसे वहाँका शासन करने लगा। कुछ दिनोंमें इसके पूर्व राज्यके अधिकारियोंने भी सूचना दी कि जिस राजाको आपने अपना राज्य सौंपा था वह परलोकवासी हो गया है और उसकी कोई सन्तति नहीं है। अतः आप उसे पुनः स्वीकार करके हमें अनुगृहीत कीजिये। राजाने उस राज्यका प्रबन्ध भी अपने हाथमें ले लिया और वह सर्वथा निर्लिप्त भावसे दोनों राज्योंका

१२७६—वे ही प्रशंसाभाजन हैं, वे ही धन्य हैं, उन्होंने ही कर्मकी जड़ काट दी है—जो अपने हाथोंके सिवा और किसी बासनकी जरूरत नहीं समझते, जो घूम-घूमकर भिक्षाका अन्न खाते हैं, जो दशों दिशाओंको ही अपना विस्तृत वस्त्र समझते हैं, जो सारी पृथ्वीको ही अपनी शय्या समझते हैं, जो अकेले रहना पसन्द करते हैं, जो दीनतासे घृणा करते हैं और जिन्होंने आत्मामें ही सन्तोष कर लिया है।

१२७७—जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि विकार नहीं हैं; जो सुख-दुःख और पाप-पुण्यको नहीं जानता; जिसे न खुशी होती है न रंज; जो अपने शरीरसे अलग है; जो न किसीकी तारीफ करता है और न किसीकी बुराई करता है; जिसे न किसीसे प्रेम है और न किसीसे वैर है; जिसका न किसीसे लेना है और न किसीको देना है; न और ही किसी तरहका व्यवहार है, ऐसा ही महापुरुष भगवान्‌को प्यारा है।

१२७८—बुढ़ापा हमारे शरीरको निर्बल और रूपको कुरूप करता एवं सामर्थ्य और बलका नाश करता है तथा मृत्यु सिरपर मँडराती है। ऐसी दशामें मित्रवर! कहीं सुख नहीं है। अगर सुख—सच्चा सुख चाहते हो तो भगवान्‌का भजन करो।

१२७९—मनुष्य चाहे कल्पवृक्षके नीचे क्यों न चला जाय, जबतक सीतापतिकी कृपा न होगी तबतक उसके दुःखोंका नाश नहीं हो सकता; इसलिये शत्रुता-मित्रता छोड़, संसारसे उदासीन हो, भगवान्‌से प्रीति करो।

घरमें रहते हुए ही सब प्रकारके सम्बन्धोंसे दूर रहकर अपनी बुद्धि-रूपी गुफामें सच्चिदानन्दघन श्रीभगवान्‌की खोज करूँगी।'

देवीजी—'सुमति ! इस संसारकी कोई भी वस्तु स्थायी नहीं है—यह जान लेनेपर भी मन बार-बार भोगोंकी ओर दौड़ा करता है। बहुत लोग गृहस्थाश्रमके झंझटोंसे बचनेके लिये घर-बार छोड़-कर वनमें चले जाते हैं। किन्तु मन बड़ा चञ्चल है। कुछ ही दिनों बाद वे वनमें बैठे-बैठे विषयोंका चिन्तन करने लगते हैं। फिर उन्हें अपने गृहत्यागके लिये पश्चात्ताप होने लगता है, क्योंकि विरक्त-जीवनमें भोगोंकी प्राप्ति तो कठिन ही है। किन्तु जो सच्चे त्यागी होते हैं वे तो सुख-दुःखमें समान रहते हैं। वे गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी भोगोंमें आसक्त नहीं होते तथा संसारको नाशवान् समझकर परम शान्ति प्राप्त करते हैं। वस्तुतः शान्ति या आनन्द विषयोंमें नहीं है। वह तो पवित्र मन, पवित्र विचार और पवित्र सङ्कल्पमें ही है। जहाँ सत्य और प्रेमका निवास है वहीं सुख और शान्ति भी रहते हैं।

'जो मनुष्य अभिमान और कुटिलताको छोड़कर सरलता, प्रेम एवं सत्यका आश्रय लेता है, स्वार्थको छोड़कर परोपकारमें लगा रहता है, दूसरोंकी भलाईमें तत्पर रहता है और कष्टके समय भी सन्मार्गसे नहीं हटता वही सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है। जो प्राणिमात्रको सुखी देखकर सुखी होता है तथा दूसरोंके दुःखको अपना ही दुःख समझकर यथासाध्य उसके दूर करनेका प्रयत्न करता है वह निश्चय परम शान्ति प्राप्त कर लेता है।

हवासे छिन्न-भिन्न हुए बादलोंके जलके समान क्षणस्थायी या नाशवान् है और जवानीकी उमंग भी स्थिर नहीं है। इसलिये बुद्धिमानो! धैर्यसे चित्तको एकाग्र करके उसे योगसाधनमें लगाओ।

१२८७—सच तो यह है कि, यह शरीर बिजलीकी चमक और बादलकी छायाकी तरह चञ्चल और अस्थिर है। जिस दिन जन्म लिया, उसी दिन मौत पीछे पड़ गयी, अब वह अपना समय देखती है और समय पूर्ण होते ही प्राणीको नष्ट कर देगी।

१२८८—जिस तरह अञ्जलिमें जल नहीं ठहरता उसी तरह लक्ष्मी भी किसीके पास नहीं ठहरती।

१२८९—जिस तरह सांसारिक पदार्थ लक्ष्मी और विषय-भोग तथा आयु चञ्चल और क्षणस्थायी हैं उसी तरह यौवन भी क्षणस्थायी है। जवानी आते तो दीखती है, पर जाते नहीं मालूम होती। हवाकी अपेक्षा भी तेज चालसे दिन-रात होते हैं और उसी तेजीसे जवानी झट खतम हो जाती और बुढ़ापा आ जाता है। फिर गाफ़िल क्यों होता है?

१२९०—संसारमें जो नानाप्रकारके अच्छे-अच्छे मनभावन पदार्थ दिखायी देते हैं, ये सभी नाशवान् हैं। ये सब वास्तवमें कुछ भी नहीं; केवल मनकी कल्पनासे इनकी सृष्टि की गयी है। मूर्ख ही इनमें आस्था रखते हैं, ज्ञानी नहीं।

१२९१—इस जगत्में ज्ञानीका जीवन सार्थक और अज्ञानीका निरर्थक है।

१२९२—विभूति चञ्चल है, यौवन क्षणभङ्गुर है; तो भी लोग

उसीके लेशमात्र सुखसे सांसारिक पदार्थोंमें सुखकी झलक दिखायी देती है। वह सर्वत्र है। उससे हमारा नित्य सम्बन्ध है। हम अज्ञानसे ही उसे दूर समझते हैं, वास्तवमें तो वह हमारा अत्यन्त समीपी और निजी बन्धु है। यही नहीं, वह तो हमारा अपना-आप ही है। बस, केवल सच्चे प्रेमकी देरी है, फिर तो हम सर्वदा उसका अनुभव करते हुए आनन्दमग्न रह सकते हैं।

'आनन्द पानेका मैं एक और उपाय बताती हूँ। ध्यानसे सुनो। स्थिर आसनसे बैठकर एकाग्रचित्तसे ऐसा ध्यान करो कि "मैं आनन्द हूँ। मेरे सब ओर आनन्दका समुद्र उमड़ा हुआ है। वह आनन्दसमुद्ररूप परमात्मा मुझसे अलग नहीं है। वस्तुतः मैं और वह एक ही हैं। जिस प्रकार अग्निमें तपाया हुआ लोहेका गोला अग्निरूप हो जाता है उसी प्रकार आनन्दरूप परमात्मासे व्याप्त और उसीका अंश होनेके कारण मैं भी आनन्दरूप ही हूँ। बस, सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द है, आनन्द-ही-आनन्द है।' इस प्रकार आनन्दका चिन्तन करनेसे तुम निरन्तर आनन्दमग्न रह सकती हो।

'अपने जीवनको ऐसा बनाओ कि कोई भी सांसारिक पदार्थ तुम्हें ललचा न सके। अपनी चित्तवृत्तिको बाहरसे हटाकर अपने भीतर ले आओ और ऐसा अनुभव करो कि मैं ही सच्चिदानन्द हूँ। यदि संस्कारवश कभी तुम्हारा चित्त विषय-भोगोंके लिये बेचैन होने लगे तो विचारपूर्वक उसे विषयोंसे हटाकर अपने पहले अनुभव किये हुए सद्भावोंकी स्मृतिमें लगाओ। यदि तुमने कभी कोई भक्ति या वैराग्यजनक

अनित्य नाशवान् एवं दुःखोंकी खान विष-समान विषयोंसे दूर रह, क्योंकि इनमें जरा भी सुख नहीं ।

१३००—विषयोंको भोगनेसे नरकाग्निमें जलोगे और जन्म-मरणके घोर सङ्कट सहोगे; पर परमात्माके भजन या योगसाधनसे नित्य सुख भोगते हुए परमानन्दमें लीन हो जाओगे । अतः इन्द्रियों-को वशमें करो और एकाग्र चित्तसे परमात्माका भजन करो ।

१३०१—जितनी समुद्रकी लहरें हैं उतनी ही मनकी दौड़ है । यदि मन ठिकाने आ जाय, उसमें समुद्रकी-सी तरंगें न उठें, तो सहजमें हीरा पैदा हो जाय; यानी परमात्मा मिल जायँ ।

१३०२—मूड़-मुड़ाते अनेक दिन हो गये, पर आजतक भगवान् न मिले । मिलें कैसे ? मन राममें लगे, तब तो राम मिलें । मन तो विषयभोगोंमें लगा रहता है, फिर राम मिलें कैसे ?

१३०३—विषय-भोग, आयु और यौवनको अनित्य और क्षणभङ्गुर समझकर इनमें आसक्ति न रक्खो और मनको एकाग्र करके हर क्षण परमात्माका भजन करो ! जिससे जन्म-मरणसे छुटकारा मिल जाय और परमात्माकी प्राप्ति हो जाय ।

१३०४—इस शरीरका क्या भरोसा ? यह क्षणभरमें नष्ट हो जाय । इस दशामें सर्वोत्तम उपाय यही है कि हरेक श्वासमें परमात्माका नाम लो । बिना उसके नामके एक साँस भी न जाने पावे । बस, इससे बढ़कर उद्धारका कोई उपाय नहीं है ।

१३०५—परमात्माका प्रेम और उसका आशीर्वाद नहीं प्राप्त

होगा । तुम्हारे द्वारा स्वभावतः ही सब प्राणियोंका उपकार होने लगेगा । इस प्रकार सारी वासनाओंका क्षय हो जानेसे तुम अपने चित्तको वशमें कर लोगी और वह शान्त एवं निःसङ्कल्प हो जायगा । शान्त और निःसङ्कल्प चित्तमें ही परमानन्द परमात्माका साक्षात्कार होता है । जिस प्रकार हिलते हुए जलमें सूर्यका स्पष्ट प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता उसी प्रकार चञ्चल चित्तवृत्तिमें आत्माका अनुभव नहीं हो सकता । उस परम तत्त्वकी उपलब्धि शान्त चित्तमें ही होती है और उसका अनुभव होनेपर जीव कृतकृत्य हो जाता है।

'एक समयकी बात है, कोई ऋषि तपस्या कर रहे थे । उन्हें भगवान् शङ्करने दर्शन दिया । भगवान्‌को देखकर ऋषिने उनकी परिक्रमा एवं पूजनादि कर उनसे आत्मतत्त्वके विषयमें प्रश्न किया । श्रीमहादेवजी बोले, 'यह देह देवालय है । इसमें आत्मा ही सनातन देव है । अज्ञानको त्यागकर इस शिवस्वरूप आत्मदेवका पूजन करो । सम्पूर्ण जीवोंमें एक ही आत्माको देखना ज्ञान है, मनको विषयोंसे रहित कर देना ध्यान है, मनके मलोंको निकाल डालना स्नान है और इन्द्रियनिग्रह शौच है ।' ऐसा उपदेश करके श्रीमहादेवजी अन्तर्धान हो गये तथा इसका अनुसरण करनेसे ऋषि-को भी कृतकृत्यता प्राप्त हुई ।

'सुमति ! यदि विषयोंमें सुख होता तो भला कौन आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा करता ? सांसारिक तापोंसे सन्तप्त होनेपर ही जीव आत्मानन्दकी खोज करता है । यही जीवका परम लक्ष्य है । इसे पाये बिना कोई भी सुखी नहीं हो सकता । इसे पानेके लिये तीव्र

क्योंकि जो वासनाओंके सङ्केतपर चलते हैं वे आत्म-चैतन्यपर कालिमा पोत लेते हैं और परमात्माकी कृपाको खो बैठते हैं।

१३१३—भगवान्‌ने कहा है—'जो मेरा अनुसरण करता है वह अन्धकारमें नहीं भटकता।'

१३१४—स्वभावसे ही प्रत्येक मनुष्य ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा करता है परन्तु प्रभुमें श्रद्धा और भक्ति नहीं हुई तो कोरे ज्ञानसे क्या हो सकता है?

१३१५—जो अपनेको भुलाकर ब्रह्माण्ड-सञ्चालनकी प्रक्रियाको समझनेमें व्यस्त है ऐसे अभिमानी तत्त्ववेत्ताकी अपेक्षा परमात्माकी सेवा करनेवाला गृहस्थ ही लाख दर्जे अच्छा।

१३१६—जिसने अपनेको अच्छी तरह पहचान लिया वह अपनेको बहुत नगण्य समझने लगता है और लोगोंद्वारा की गयी प्रशंसामें फूल नहीं उठता।

१३१७—यदि मैं दुनियाकी सारी चीजोंको समझ लूँ परन्तु दान तथा दयाके भाव जो मनुष्यको परमात्माकी दृष्टिमें ऊँचा बनाते हैं—न रखूँ तो मेरा सारा ज्ञान धूलके समान है।

१३१८—अपनी मुक्तिके साधनोंको छोड़कर जो अन्यान्य चीजोंपर, जिनकी जानकारीसे आत्माको कुछ भी लाभ नहीं होता, लट्टू हुआ फिरता है वह बड़ा अज्ञानी है।

१३१९—बड़े-से-बड़ा ज्ञान आत्माको सन्तुष्ट नहीं करता; परन्तु उत्तम जीवन मनको शान्ति, तुष्टि और प्रीति देता है। एक पवित्र हृदय परमात्माके सम्मुख बहुत बड़ा सहारा है।

याज्ञवल्क्यजीसे कहा—'भगवन् ! यदि मुझे धन-धान्यसे पूर्ण यह सारी भूमि मिल जाय तो क्या मैं उससे अमृतत्व प्राप्त कर सकती हूँ ?'

याज्ञवल्क्य–'नहीं, धनसहित पृथिवीको पाकर तो तेरा जीवन धनवानोंका-सा हो सकता है; धनसे अमृतत्व नहीं मिल सकता। इससे मोक्षरूप परमधनकी प्राप्ति नहीं हो सकती।'

मैत्रेयी–'जिससे मैं मृत्युसे नहीं बच सकती उस वस्तुको लेकर मैं क्या करूँगी ? आप मुझे वह मोक्षरूप परमधन प्रदान कीजिये जिसके लिये आप घर-बार छोड़कर जा रहे हैं। मैं जानती हूँ इस धनकी अपेक्षा वह अवश्य ही अधिक मूल्यवान् होगा।'

याज्ञवल्क्य–'मैत्रेयि ! मुझे तू पहलेसे ही अधिक प्रिय है। अब तेरे मुखसे आत्मज्ञानविषयक जिज्ञासा सुनकर तो मेरा प्रेम और भी बढ़ गया है। आ, मेरे पास बैठ, मैं तुझे आत्मज्ञानका उपदेश करूँगा। मैं जो कुछ कहूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनकर मनन करना। हे मैत्रेयि ! स्त्रीको पति पतिके लिये प्रिय नहीं होता, अपितु आत्माके लिये प्रिय होता है अर्थात् अपने सुखके लिये ही स्त्री पतिसे प्रेम करती है। इसी प्रकार पतिको स्त्री स्त्रीके लिये प्रिय नहीं होती आत्माके लिये ही प्रिय होती है; पिताको पुत्र पुत्रके लिये प्रिय नहीं होता आत्माके लिये ही प्रिय होता है; ब्राह्मण ब्राह्मणके लिये प्रिय नहीं होता आत्माके लिये ही प्रिय होता है; क्षत्रिय क्षत्रियके लिये प्रिय नहीं होता आत्माके लिये ही प्रिय होता है; वेद वेदोंके लिये प्रिय नहीं हैं आत्माके लिये ही प्रिय हैं; देवता देवताओंके लिये

१३२८—वह पुरुष धन्य है जो बनने और बिगड़नेवाले अङ्कों और अक्षरोंसे नहीं; स्वयं सत्यसे शिक्षा लेता है जो स्वतः आत्मस्वरूप है।

१३२९—हमारे अपने विचार और हमारी अपनी इन्द्रियाँ प्रायः हमें धोखा देती हैं और सत्यासत्यकी परख नहीं कर सकतीं।

१३३०—प्रच्छन्न और अन्धकारगत वस्तुओंके सम्बन्धमें वाद-विवाद करने और झगड़नेसे तुम्हें क्या लाभ ? आँख खोलकर भगवान्‌की इस रहस्यपूर्ण रचनाको तो देखो, फिर तुम्हें और कुछ देखना ही नहीं रहेगा।

१३३१—हमें आँखें हैं परन्तु हम देखते नहीं।

१३३२—कोरे तर्कसे आजतक क्या सधा है ?

१३३३—ओ परमात्मन् ! तुम चिर सत्य हो; मुझे अपनी अखिल दयामें लय कर लो। मेरे लिये प्रायः बहुत-सी चीजें पढ़ना या सुनना दुष्कर है। तुम्हींमें मेरा चिर अभिलषित सर्वस्व है।

१३३४—प्रभो ! सभी वैद्य चुप, शान्त हो जायँ, तुम्हारे सम्मुख सभी जीव चुप रहें; तुम, केवल तुम हमसे बोलो।

१३३५—जितना ही अधिक मनुष्य अपने अन्तरमें मिलने लगता है और अन्तःकरणसे सरल और पवित्र हो जाता है; उतनी ही अधिक ऊँची चीजें वह बिना परिश्रमके समझने लगता है; क्योंकि उसे स्वयं परमात्मा ही अन्तःप्रकाश प्रदान करते हैं।

१३३६—असंख्य उलझनोंमें फँसकर भी एक पवित्र, सच्चा और स्थायी अन्तःकरण क्षुब्ध नहीं होता; और अन्तःकरणसे शान्त

किया है, क्योंकि वह अनिर्वचनीय है, जिह्वा उसे बोलकर नहीं बता सकती। बस, मैत्रेयि! तेरे लिये यही उपदेश है। इसीको 'मोक्ष' कहते हैं।'

इसके पश्चात् देवीजीने कहा, 'सुमति! मनुष्यका प्रधान कर्तव्य आत्माको जानना ही है। स्त्री हो अथवा पुरुष सभीको उचित है कि शास्त्राज्ञाका पालन करते हुए अपने जीवनको आनन्द-मय बना लें। तुम वास्तवमें तो शुद्ध चेतन आत्मा ही हो; 'मेरा-मेरा' ऐसा अभिमान करके अपने स्वरूपको भूल गयी हो। अब मोह-निद्राको त्यागकर उस आनन्दस्वरूपमें डुबकी लगाओ। तुम जिन-जिन चीज़ोंको 'मेरा-मेरा' कहती हो वे सब तो तुमसे अलग हैं। तुम उन सबकी साक्षी हो।' इसके पश्चात् वे एक पद गाने लगीं—

क्यों भूला नादान रूपको, क्यों भूला नादान।
नाम-रूपका भेद मिटाकर, निज स्वरूपको जान॥ टेक॥
बेटा मेरा नाती मेरा, हूँ मैं चतुर सुजान।
मेरा-मेरा करता डोले, छाया अति अज्ञान॥ १॥
मेरा तन मेरा धन मेरा है जगमें अति मान।
मेरा-मेरामें भूला रे महामूढ़ अज्ञान॥ २॥
तू तो इन सबका ज्ञाता है—है प्रत्यक्ष प्रमाण।
जो 'मेरा-मेरा' कहता है उस अपनेको जान॥ ३॥
ये सब तो तेरे हैं भाई, तू आपेको जान।
सच्चा ज्ञान यही है प्यारे, अपनेको पहचान॥ ४॥
सत् सुख ज्ञानरूप है तेरा, अति अद्भुत सुमहान।
तुझहीमें सब जगत् समाया, कर इसकी पहचान॥ ५॥

विश्वमें इतना अपवाद ही फैलता और न धर्मस्थानोंमें इतना असंयम और व्यभिचार ही घुसता !

१३४५–अह ! संसारका यश कितनी द्रुतगतिसे नष्ट होता जा रहा है । यदि विद्वत्ताके अनुरूप जीवन भी होता तव हमारा पढ़ना-लिखना सार्थक होता ।

१३४६–इस संसारमें कितने ही मनुष्य असत्य अध्ययनके कारण सत्यानाशमें मिल जाते हैं । वे परमात्माकी तनिक भी परवा नहीं करते और इसलिये कि वे नम्र होनेकी अपेक्षा बड़े होनेकी कोशिश करते हैं वे कल्पनामें अविवेककी ओर ढल जाते हैं ।

१३४७–वास्तवमें बड़ा वह है जो उदारतामें बड़ा है ।

१३४८–वह वास्तवमें बड़ा है जो अपनेको छोटा समझता है और अपनी प्रतिष्ठाकी ऊँचाईका कोई मूल्य नहीं आँकता ।

१३४९–वास्तवमें वह बुद्धिमान् है जो सभी सांसारिक चीजोंको तृणके सदृश समझता है ।

१३५०–वास्तवमें विद्वान् वह है जो अपनी इच्छाको त्यागकर परमात्माकी इच्छासे कार्य करता है ।

१३५१–जिन्होंने पूर्णताको प्राप्त कर लिया है वे दूसरेके कहेको सहजहीमें मान नहीं लेते, क्योंकि वे जानते हैं कि मानव दुर्बलता दुर्गुण-प्रिय है और शब्दोंमें चूक जानेका विशेष भय है ।

१३५२–यह बड़ी बुद्धिमानी है कि अपनी क्रियाओंमें कभी उद्धत न होओ और न अपने ही विचारोंपर अड़ जाओ; न

मनन

घर जाकर भोजनादिसे निवृत्त हो शयन करनेसे पूर्व सुमति सोचने लगी—सचमुच यह संसार नाट्यशाला ही तो है। जिस प्रकार नाटकमें परदे बदलते रहते हैं उसी प्रकार यहाँ भी अदल-बदल होती रहती है। कभी सुख आता है और कभी दुःख। सुखके समय हम फूले अङ्ग नहीं समाते और सुख-भोगके नये-नये उपाय सोचते हैं। रात-दिन इच्छाओंका जाल बिछाते रहते हैं। अपनेको बड़ा बुद्धिमान् चतुर और वीर लगाते हैं। बस, जब सुख-का परदा हट जाता है तो दुःख आ खड़ा होता है। हम देखते ही रह जाते हैं। सोचा कुछ था हो गया कुछ और। सारी बुद्धिमानी, चतुराई और वीरता लुप्त हो जाती है। बस, मायाको

१३५८—धर्मग्रन्थोंके पढ़नेमें हमारी अपनी उत्सुकता बाधा खड़ी करती है, क्योंकि जिस बातको पढ़कर हमें बिना कोई विशेष परिश्रम किये आगे बढ़ना चाहिये था उसीपर हम वाद-विवाद करने लगते हैं और उसकी परीक्षा करनेमें फँस जाते हैं।

१३५९—यदि तुम अध्ययनसे लाभ उठाना चाहते हो तो नम्रता, सादगी और निष्ठाके साथ पढ़ो, अपनी विद्वत्ताके आदरकी इच्छा न रख, लगनके साथ पूछो और संतोंके वचनोंको सुनो। 'बड़ों' के सद्वचनोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखो क्योंकि बिना कारण ही उनकी कीमत नहीं होती अर्थात् समयपर उनका महत्त्व प्रकट होगा।

१३६०—जब कभी मनुष्य किसी भी वस्तुकी अत्यधिक लिप्सा करता है; इसके साथ-ही-साथ उसका अन्तःकरण विक्षुब्ध हो उठता है।

१३६१—अभिमानी और लोभीको कभी शान्ति नहीं मिल सकती। दीन और विनम्र हृदय पूर्ण शान्तिमें सदा साथ रहता है।

१३६२—जिसने अपनी वासनाओंको पूरी तरह जीत नहीं लिया है वह शीघ्र ही फिसल जाता है और छोटी तथा नगण्य चीजोंसे भी पराजित हो जाता है।

१३६३—जो दुर्बल हैं, जिनकी मानसिक स्थिति कमजोर है और एक प्रकारसे वासना-प्रिय और आधिभौतिक प्रकृतिके हैं—वे कठिनाईसे अपनेको सांसारिक वासनाओंसे पूर्णतः हटा सकते हैं।

ही ग्रहण करती हैं। मन सब इन्द्रियोंका अधिष्ठाता है। वही सुख-दुःखका भोक्ता भी है। किन्तु इन सबका साक्षी जो आत्मा है वह इन सब इन्द्रियोंका अध्यक्ष होनेके कारण इन सबसे अलग रहकर इनके सुख-दुःखको देखता है। इसके पश्चात् वह फिर सोचने लगी, प्रभो ! मुझे ऐसी सामर्थ्य दीजिये कि मैं अपने मन और इन्द्रियोंको आपके चिन्तनमें लगा दूँ। मेरे विचारसे तो जबतक इन्द्रियोंका दमन न होगा तबतक आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकेगा।

इन्द्रियाँ दश हैं, जिनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और पाँच कर्मेन्द्रियाँ। इनमें ज्ञानेन्द्रियाँ विशेष प्रबल हैं। उनके पाँच विषय हैं—नेत्रका विषय रूप है, जिह्वाका रस है, नासिकाका गन्ध है, त्वचाका स्पर्श है और श्रवणेन्द्रियका विषय शब्द है। कर्मेन्द्रियाँ विषयभोगमें ज्ञानेन्द्रियोंकी सहायक हैं। इनके सिवा कोई और इन्द्रिय या विषय नहीं है। ज्ञानेन्द्रियोंका निग्रह करनेसे कर्मेन्द्रियोंकी चपलता स्वयं ही रुक जाती है। और यदि ये स्वतन्त्र रहती हैं तो मन भी इन्हींके साथ मिल जाता है। इन इन्द्रियोंमेंसे प्रत्येक बहुत प्रबल है तथा एक-एककी ही प्रबलताके कारण ही पतङ्ग, मछली, भौंरा, हाथी और हरिण आदि जीवोंका सर्वनाश हो जाता है; फिर यदि हम इन पाँचोंके अधीन रहें तो हमारी दुर्गतिके विषयमें तो कहना ही क्या है ? अतः हमें अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

देखो, हरिणको पकड़नेवाला व्याध जङ्गलमें जाकर वीणा बजाता है। उसका स्वर सुनकर हरिण व्याधके पास आता और

परमात्माकी दृष्टिमें, जो मनुष्यकी सच्ची परख रखता है, तुम उनसे भी नीच समझे जाओगे ।

१३७१—अपने सत्कार्योंपर अभिमान न करो, क्योंकि मनुष्यका न्याय परमात्माके न्यायसे सर्वथा भिन्न है, और प्रायः जो उसे (मनुष्यको) सुखद प्रतीत होता है वही परमात्माको अरुचिकर हो जाता है ।

१३७२—यदि तुममें कोई अच्छाई हो तो यह समझो कि दूसरोंमें तुमसे कहीं अधिक है ।

१३७३—सभीके सामने अपनेको छोटा समझना स्वतः अन्यायसंगत नहीं है परन्तु किसी एक भी आदमीके सम्मुख अपनेको बड़ा मानना अन्याय-प्रियता है ।

१३७४—विनम्र पुरुष चिरन्तन शान्तिको प्राप्त करते हैं; अभिमानी पुरुषोंके हृदयमें ईर्ष्या और क्रोधकी भट्ठी जलती रहती है ।

१३७५—सभीके सामने अपना हृदय मत खोलो । जो बुद्धिमान् हैं और परमात्मासे डरनेवाले हैं उनसे अपने व्यवहारके सम्बन्धमें बातें करो ।

१३७६—नवयुवकों और अपरिचितोंसे अधिक बातें न करो ।

१३७७—धनिकोंकी खुशामद न करो, बड़े आदमियोंके सम्मुख स्वेच्छासे न जाओ ।

१३७८—नम्र और सरल व्यक्तियोंकी संगतिमें रहो, दृढ़ और धर्मात्माके साथ रहो, उनके साथ ऐसी बातोंके सम्बन्धमें

तो वासनाओंके नाशकी है । यदि हमने इन्द्रियोंकी शक्तिको नष्ट कर दिया और उनकी वासनाएँ बनी रहीं तब तो हमारा दुःख ही बढ़ेगा । परमात्माने तो हमारे हितके लिये ही हमें विषय-ग्रहणकी शक्तिरूप इन्द्रियाँ दी हैं । हमारा कर्तव्य तो इनका सदुपयोग करना ही है । इसलिये मैं इनका सदुपयोग करके अपने जीवनको कृतार्थ करूँगी ।

जिस प्रकार नीम, गिलोय और चित्रक आदि कड़वी ओषधियोंमें अनेकों गुण हैं और वे मनुष्यके स्वास्थ्यमें सहायक होती हैं उसी प्रकार निन्दासे भी हमारा बड़ा उपकार होता है । वह हमें निर्दोष और सहनशील बनाती है । अतः अब यदि मेरी कोई शिकायत करेगा तो उसमें आनन्द मानूँगी तथा कानोंसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सेवा, सदाचार और परोपकारसम्बन्धिनी अच्छी बातें सुनूँगी । पैरोंसे चलकर सत्सङ्ग और देवमन्दिरोंमें जाऊँगी । महापुरुषोंके अच्छे गुण, विद्वानोंके उपदेश और सद्गुरुके वाक्योंको सुनकर उनके अनुसार आचरण करूँगी तथा अपने आन्तरिक दोषोंको दूरकर सुखी जीवन व्यतीत करूँगी ।

त्वचासे पदार्थोंकी उष्णता आदिका ज्ञान होता है । यदि यह इन्द्रिय न होती तो अग्नि आदि दाहक पदार्थोंसे जीवकी किस प्रकार रक्षा होती ? और किस प्रकार वह शस्त्र एवं सर्पादि विषैले जीवोंसे बचता ? इसलिये इस इन्द्रियका भी सदुपयोग करती हुई मैं अधिक-से-अधिक परमार्थमें लगनेकी चेष्टा करूँगी ।

आँखोंके तो हमारे प्रति कई उपकार हैं । यदि यह इन्द्रिय न

उनके द्वारा हम शीघ्र ही पतित हो जाते हैं और पाखण्डमें घिर जाते हैं।

१३८६—यदि तुम्हारा बोलना न्यायसंगत तथा आवश्यक हो तो उन्हीं बातोंको बोलो जो तुम्हें गौरवान्वित कर सकें।

१३८७—हमें अधिक शान्ति मिलती यदि हम अपनेको दूसरोंके काम और वचनोंमें उलझाये न होते; उन वस्तुओंमें न फँसे होते जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

१३८८—वह अधिक दिनोंतक कैसे शान्ति पा सकता है, जो दूसरोंकी चिन्तामें अपनेको डाले रहता है, जो सदा अवसरकी प्रतीक्षामें है, जो अपने आपको अपने हृदयमें कभी स्मरण ही नहीं करता।

१३८९—एकान्त हृदयवाले धन्य हैं क्योंकि उन्हें बहुत शान्ति मिलेगी।

१३९०—क्यों? क्या कारण है कि कुछ संत इतने पूर्ण और चिन्तनशील थे?

१३९१—क्योंकि उन लोगोंने अपनी इच्छाओंके समूल नाश करनेका प्रयत्न किया, अतएव वे अपने हृदयको पूर्णतः परमात्मामें लगा सके और पवित्र विश्रामके लिये अवकाश पा सके।

१३९२—यदि हम पूर्णतः अपने आपमें मर जायँ और हृदयकी वासनाओंमें उलझे न रहें तो हमें प्रभुके प्रेमका सुख मिलेगा और स्वर्गीय चिन्तनका अनुभव प्राप्त होगा।

में इसके द्वारा भगवान्‌को चढ़ायी हुई तुलसी, पुष्प एवं अगरु आदि-की गन्ध ग्रहण करूँगी तथा सब प्रकारकी शौकीनी और तड़क-भड़क-से दूर रहूँगी।

इस प्रकार मैं सभी इन्द्रियोंको परमार्थके मार्गमें लगाऊँगी। यदि इनका इस प्रकार सदुपयोग किया जाय तो ये सारे दुःखोंसे निकालकर भगवान्‌की प्राप्ति करा सकती हैं। लोग दुनियाके सुखोंमें फँसकर व्यर्थ अपना जीवन नष्ट करते हैं। शरीरके सुख-दुःखसे हमें घबराना नहीं चाहिये, क्योंकि उनसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। इनकी पहुँच केवल अन्तःकरणतक ही है। आत्मा तो इन सबसे अलग शुद्ध साक्षीमात्र है। शरीर और अन्तःकरणादि तो बनते और बिगड़ते रहते हैं किन्तु आत्मा नित्य निर्विकार एवं एक-रस है। इसपर सुख-दुःखादिका कोई असर कैसे हो सकता है?

मेरा बड़ा सौभाग्य है जो मुझे देवीजीका दर्शन हुआ। उन्होंने मेरे हृदयसे अज्ञानका पर्दा हटा दिया है। पहले मैं सांसारिक भोगोंमें ही सुख मानती थी, फिर मैं उन्हें दुःखरूप समझने लगी। किन्तु आज मैंने जाना कि सुख और दुःखका बीज तो मेरे ही भीतर है। वास्तवमें आत्मा ही सुखरूप है और हमारी इच्छाएँ ही दुःखका कारण हैं। यदि हम इच्छाओंके जालको काट डालें तो बस आनन्द-ही-आनन्द है। जबतक मुझे इस बातका बोध नहीं था मैं आत्माको ही कर्ता-भोक्ता एवं सुखी-दुखी समझती थी। अब मोह नष्ट होनेपर मालूम हुआ कि अहङ्कारके कारण ही हमें इनका भार ढोना पड़ा। क्योंकि अज्ञानके कारण ही मनुष्य इस

१४००—यदि तुम छोटी और आसान चीजोंको नहीं जीत सके तो कठिन चीजोंको कैसे जीत सकोगे ?

१४०१—प्रारम्भमें ही अपनी इच्छाको रोक लो और बुरी आदतोंको छोड़ दो, अन्यथा वे धीरे-धीरे तुम्हें बहुत बड़ी कठिनाईमें डाल देंगी ।

१४०२—ओह ! यदि तुम केवल सोचते कि अपने सद्व्यवहारसे तुम्हें कितनी आन्तरिक शान्ति मिलती और दूसरोंको कितना आनन्द दे सकते तो मैं मानता हूँ कि तुम अपनी आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर विशेष सचेष्ट रहते ।

१४०३—यह अच्छा है कि कभी-कभी हम कठिनाई और कष्टोंमें पड़ जाते हैं; क्योंकि उनसे प्रायः हम अपने अन्तरमें प्रवेश करते हैं और यह सोचते हैं कि हमारा यहाँका जीवन निर्वासनका है और ऐसी दशामें हमें किसी भी सांसारिक वस्तुमें विश्वास नहीं रखना चाहिये ।

१४०४—यह अच्छा है कि कभी-कभी हमारा विरोध हो और हमारे विषयमें लोगोंका बुरा या नीचा ख़याल हो, यह भी जब कि हमारी नीयत और कार्य दोनों अच्छे हों ।

१४०५—ये वस्तुएँ प्रायः हमें नम्रताकी अभिप्राप्तिमें सहायता देती हैं और दम्भसे हमें बचाती हैं इसलिये कि जब बाहर दुनिया हमसे घृणा करती है और हमें किसी प्रकारका यश नहीं मिलता ऐसी अवस्थामें हम केवल परमात्माको अपना आन्तरिक पारखी समझते हैं ।

ही प्रशंसाके पात्र हैं। बुराई अभिमानवश हमसे बनती है। इसलिये उसे सुनकर अपने अभिमानको कुचलनेकी कोशिश करनी चाहिये। भगवान् ऐसी कृपा करें कि मैं अपने जीवनको इन विचारोंके अनुसार ढाल सकूँ तथा संसारकी सारी आसक्तियोंसे बचकर एकमात्र उन्हींको अपना आश्रय समझूँ। हे दयामय! दया करो, दया करो, दया करो।

इस प्रकार प्रार्थना करते-करते सुमतिकी आँखें लग गयीं।

१४१३—कोई भी सम्प्रदाय इतना पवित्र नहीं, कोई भी स्थान इतना एकान्त नहीं जहाँ प्रलोभन और आपदाएँ न हों।

१४१४—कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो आजीवन प्रलोभनोंसे मुक्त हो क्योंकि दुर्गुणकी ओर प्रवृत्ति होनेके कारण इसकी जड़ हमारे ही भीतर है।

१४१५—जब एक प्रलोभन या विपदा चली जाती है, उसके स्थानमें दूसरी चली आती है अतएव हमें किसी-न-किसी उलझनमें फँसे ही रहना पड़ता है। क्योंकि हम अपने आनन्दकी स्थितिसे गिर गये हैं।

१४१६—बहुतसे मनुष्य प्रलोभनोंसे भागना चाहते हैं परन्तु और भी अधिक बुरी तरह उनमें गिर जाते हैं।

१४१७—केवल भागनेसे ही हमारी विजय नहीं हो सकती परन्तु सच्ची नम्रता और धैर्यसे हमलोग अपने शत्रुको परास्त कर सकते हैं।

१४१८—जो मनुष्य केवल बाहर-ही-बाहर प्रलोभनोंसे बचनेकी कोशिश करता है और उन्हें समूल नष्ट नहीं करता उसे लाभ बहुत कम होगा; उसके पास शीघ्र ही प्रलोभन लौटेंगे और वह पहलेकी अपेक्षा बुरी दशामें पड़ जायगा।

१४१९—धीरे-धीरे धैर्य और दीर्घकष्टसे तुम सहज ही प्रलोभनोंको जीत लोगे।

१४२०—जो प्रलोभनमें उलझा हुआ है उससे रुखाईसे व्यवहार न करो परन्तु उसे धैर्य दो।

ध्यान तथा नामजप कर रहे हैं। कोई झाँझ, करताल और मृदंग आदि बजाकर नाम-संकीर्तन कर रहे हैं। इसी समय यमुनाजीकी ओरसे स्नान करके नाम-स्मरण करती हुई सुमति आ रही है। उसके मुखसे निरन्तर 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव' इस मन्त्रकी ध्वनि निकल रही है। सुमतिको देखकर एक फूल बेचनेवालेने आवाज लगायी—'माताजी! हार-फूल लेती जाओ।'

सुमतिने पैसे निकालकर उससे हार और फूल मोल लिये तथा वहाँसे सीधे देवीजीके आश्रमकी राह ली। आश्रममें पहुँचकर उसने देवीजीको हार पहनाया तथा उन्हें दण्डवत् कर एक ओर बैठ गयी। देवीजीने पूछा, 'सुमति! कहो, कुशल तो है?'

सुमति—'गुरुदेवि! धन्य है। आपकी कृपासे मेरे सारे दुःखों-का अन्त हो गया। मेरे लिये संसार अत्यन्त दुःखमय बना हुआ था। मुझे सर्वत्र अशान्ति-ही-अशान्ति दिखायी देती थी। किन्तु अब जबसे आपके श्रीचरणोंका आश्रय मिला है तबसे मेरे लिये इसका दूसरा ही रूप हो गया है। जब भजन करने बैठती हूँ उस समय तो चित्त आनन्दमग्न रहता ही है, अन्य समय भी किसी गुप्त आनन्दमें झूमा करता है। यह सब श्रीचरणोंकी ही कृपा है।'

देवीजी—'देखो सुमति! मेरा काम तो बस राह दिखा देना है। और उसमें आगे बढ़ना तुम्हारा काम है।'

सुमति—'यदि हमें सच्चे सुखका पता चल जाय तो उसके लिये कुछ भी उठा न रखूँगी। हम रात-दिन सुखके लिये ही प्रयत्न कर रहे हैं; किन्तु अन्तमें दुःख ही उठाते हैं। सच्चे सुखका

परमात्माके हाथोंमें अपनी अन्तरात्माको विनम्र कर दें क्योंकि वह विनीतहृदयकी रक्षा करता है।

१४२९—प्रलोभनों और विपत्तियोंमें ही मनुष्यकी सच्ची परीक्षा होती है। और इसके कारण परमात्माका आशीष भी अधिक मिलता है तथा उसके सद्गुण और अधिक विशेषतासे चमक उठते हैं।

१४३०—कुछ व्यक्ति बड़े-बड़े प्रलोभनोंसे तो दूर रहते हैं परन्तु छोटे-छोटे प्रलोभनोंसे परास्त हो जाते हैं।

१४३१—अपनी आँखें अपनेहीपर डालो और ध्यान रहे, तुम दूसरोंके कर्मोंके सम्बन्धमें अपना निर्णय न दो। दूसरोंके कामोंको समझनेमें प्रायः मनुष्य व्यर्थहीमें परिश्रम करता है।

१४३२—यदि हमारी इच्छाओंका पवित्र ध्येय सदा परमात्मा होता तो हम इतने दुःखी न होते, परन्तु प्रायः कोई-न-कोई आसक्ति भीतर बनी ही रहती है या बाहरसे कुछ ऐसी घटना हो जाती है जो हमें अपने पीछे खींच ले जाती है।

१४३३—मतभेद और निर्णयकी विभिन्नता ही प्रायः मित्रों और सहवासियोंमें, धार्मिक और भक्तपुरुषोंमें भाव-भेद उपस्थित कर देती है।

१४३४—पुरानी लकीरका फकीर बनना कोई छोड़ता नहीं; और कोई भी मनुष्य दृष्टिकी परिधिके बाहर ले जाया जाना पसन्द नहीं करता।

हूँ कि यह संसार एक नाट्यशाला ही है। यहाँ कोई भी वस्तु सर्वदा ठहरनेवाली नहीं है, इसलिये इसमें चित्तको फँसाना भूल है।'

देवीजी—'बेटा सुमति! अब भजनके समय तुम्हारा चित्त भगवान्‌में खूब लग जाता है न? तुम्हें अपने साधनमें तो खूब श्रद्धा है न? तुमने इस संसारमें किस वस्तुको सार निश्चय किया है? तुम्हारा चित्त डावाँडोल तो नहीं रहता? क्या तुम्हें अपनी आनन्द-स्वरूपताका अनुभव होता है?'

सुमति—'माताजी! आपके चरणोंकी सब प्रकार कृपा है। अब तो चित्त खूब शान्त हो गया है। अहा! आज रातको तो....।'

इतना कहकर सुमति चुप हो गयी। उसके मुखपर आनन्द-की रेखाएँ झलकने लगीं। तब देवीजीने पूछा, 'हाँ! बताओ न, आज रातको तुमने क्या देखा?'

सुमति—'कल सोनेसे पूर्व मैं कुछ विचार कर रही थी। उसी अवस्थामें मुझे नींद आ गयी। तब मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा। मैं एक बगीचेमें खड़ी थी। वहाँ वृक्षोंमें लगे हुए रङ्ग-बिरङ्गे सुगन्धित पुष्पोंको देखकर सोचने लगी—'अहा! भगवान्‌की कैसी अद्भुत कारीगरी है। उन्होंने मिट्टीमेंसे ही कैसे सुन्दर और सुगन्धित पुष्प प्रकट किये हैं। अच्छा, मैं प्रभुके पूजनके लिये इनमेंसे कुछ पुष्प ले चलूँ।'

'मैं जहाँ खड़ी थी वहाँसे कुछ सीढ़ियाँ ऊपर भगवान्‌के मन्दिर-को जाती थीं। मैंने ज्यों ही भगवान्‌को नमस्कार करते हुए पहली सीढ़ीपर पैर रक्खा कि मेरा पाँव फिसल गया। इतनेहीमें वह दृश्य

१४४२—यदि एक-दो बार चेतानेपर भी कोई न माने, उसके साथ मत झगड़ो परन्तु सभी कुछ परमात्माको सौंप दो, कि उसीकी इच्छापूर्ति हो ।

१४४३—जैसे भी हो सके दूसरोंके दुर्गुण और दुर्बलताको सहन करनेमें धीर होनेकी चेष्टा करो क्योंकि तुममें भी बहुत-सी दुर्बलताएँ ऐसी हैं जिन्हें दूसरोंको सहना पड़ता है ।

१४४४—यदि तुम अपनेको अपनी इच्छाके अनुकूल नहीं बना सकते तो तुम दूसरोंसे कैसे आशा कर सकते हो कि वे तुम्हारी इच्छाके अनुकूल हों ।

१४४५—हमलोग तो दूसरोंको पूर्ण देखना चाहते हैं, फिर भी हम अपनी त्रुटियोंका सुधार नहीं करते ।

१४४६—हम दूसरोंको बड़ी कठोरतासे सुधारना चाहते हैं परन्तु अपना सुधार नहीं करते ।

१४४७—दूसरोंकी स्वच्छन्दता हमें असन्तुष्ट कर देती है लेकिन हम अपनी इच्छाओंका अवरोध करना नहीं चाहते ।

१४४८—हम दूसरोंको कठिन नियमोंके भीतर रखना चाहते हैं परन्तु किसी प्रकार भी अपनेको संयत करना नहीं चाहते ।

१४४९—कोई भी मनुष्य पूर्णतः दोषरहित नहीं है, कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसे कोई भार न हो, जो स्वतः सम्पूर्ण हो अथवा जो स्वयं पर्याप्त बुद्धिमान् हो । अतः हममें पारस्परिक सहनशीलता होनी चाहिये । हमें एक-दूसरेको आश्वासन,

प्रकारसे गिराना चाहते हैं। जो पुरुष सावधान रहकर उनके चंगुलमें नहीं फँसता वह अवश्य परमपद प्राप्त कर लेता है। तुम इनसे सर्वदा बचती रहना। जो पुरुष इन्द्रियद्वारा विषयोंको ग्रहण करते समय उनकी मोहकतामें फँसकर अपने स्वरूपको नहीं भूलता उसका ये जड विषय कुछ भी अपकार नहीं कर सकते। तुम सावधान और निर्भय होकर अपने मार्गपर बढ़ती जाओ, अभी तुम्हें बहुत दूर जाना है। यहाँसे भिन्न-भिन्न स्थानोंको चार मार्ग जाते हैं। चलो मैं वे सब मार्ग तुम्हें दिखाये देती हूँ। तुम जिससे चाहो उससे चली जाना।'

इसके पश्चात् दोनों चलकर एक ऐसे स्थानपर पहुँचे जहाँसे पर्वतके चार ओर चार मार्ग जाते थे। पहला मार्ग घने जंगल और झाड़ियोंसे आच्छादित था। उसमें बहुत धुँधला प्रकाश था। दूसरा एक अँधेरे कुएँकी ओर जाता था। इसमें भी प्रकाशकी कमी थी; परन्तु कुएँमें उतरनेको सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। तीसरे मार्गमें तरह-तरहके फलयुक्त वृक्ष लगे हुए थे। इसमें पहले दो मार्गोंकी अपेक्षा अधिक प्रकाश था। चौथी ओर एक लाल रंगकी छोटी-सी सड़क बनी हुई थी। उसके दोनों ओर पानी-ही-पानी दिखायी देता था। इस मार्गमें प्रकाशकी अधिकता थी।

ये सब मार्ग दिखाकर देवीजीने पूछा, 'तुम किस मार्गसे जाओगी?'

मैंने कहा, 'मुझे तो पानीवाला मार्ग ही अच्छा जान पड़ता है और मेरी इच्छा इसीसे जानेकी है। किन्तु मैं इनके गुण-

१४५७—साधन-मार्गमें मनुष्यकी ऐसी परीक्षा होती है जैसे आगकी भट्ठीमें सोनेकी ।

१४५८—साधन-पथमें कोई भी मनुष्य टिक नहीं सकता जबतक वह परमात्माके प्रेमके लिये हृदयसे विनम्र न हो जाय ।

१४५९—एकमात्र श्रीवासुदेवके सिवा इस जगत्में स्थावर-जंगम कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है । वही वासुदेव सभी प्राणियोंके अन्तरात्मा हैं ।

१४६०—विद्याके समान संसारमें कोई नेत्र नहीं है, सत्यपालनके समान कोई तप नहीं है । रागके समान दुःखका कोई कारण नहीं है ।

१४६१—हिंसा, असत्य, छल, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुःखदायी पाप कर्मोंसे बचना, निरन्तर पुण्यप्रद कर्मोंमें निरत रहना, अपने-अपने वर्ण और आश्रमके धर्मानुकूल सदाचारका पालन करना ही अतिश्रेष्ठ कल्याणका मार्ग है ।

१४६२—जो पुरुष स्त्री, पुत्र, धनादिमें आसक्त है उसकी बुद्धि मोह-जालमें फँसकर धर्म-पथसे डिग जाती है । अतः सबसे पहले काम और क्रोधके वेगको वशमें करे । इन्हें जीत लेनेपर सारी कठिनाइयाँ स्वयं हल हो जाती हैं ।

१४६३—जीवमात्रको दुःख न देनेकी चेष्टा करना ही सर्वोत्तम धर्म है ।

१४६४—जैसे रेशमका कीड़ा अपने-आप परिग्रहसे मारा जाता है वैसे ही मनुष्य भी परिग्रहसे मारा जाता है ।

मैं—'यह तो तीन मार्गोंका विवरण हुआ। अब चौथे मार्गके विषयमें कहिये।'

देवीजी—'यह अन्तराभ्यासियोंका मार्ग है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें जानेके लिये किन्हीं बाह्य साधनोंकी आवश्यकता नहीं होती। जो पुरुष सद्गुरुकी शरण ग्रहणकर उनके मुखसे अध्यात्मतत्त्वका श्रवण करता है तथा उसका मनन और निदिध्यासनकर अपनी वृत्तिको सब ओरसे हटाकर आत्मस्वरूपमें स्थिर कर देता है वह सहज ही इस मार्गसे चलकर परमपद प्राप्त कर लेता है। यह मार्ग भी कम चक्करदार नहीं है, कई जन्म लग जाते हैं। देखो, तुम सब प्रकारकी घबराहट छोड़कर इसपर बढ़ती चली जाना। भगवान् तुम्हारा मंगल करें।'

मैं—'इस मार्गसे जानेमें मुझे किसी प्रकारका भय नहीं है। मुझे तो अन्य मार्गोंमें ही भय दिखायी देता है। मैं आपकी कृपासे इस मार्गको बिना किसी विघ्न-बाधाके पार करके परमपद प्राप्त कर लूँगी। अच्छा, कृपया यह तो बताइये आप कौन हैं? क्या आप इस मार्गमें मेरे साथ रहेंगी?'

देवीजी—'मेरा नाम श्रद्धा है। मैं तो सभी मार्गोंमें साथ रहती हूँ।'

मैंने श्रद्धादेवीको चरण छूकर प्रणाम किया और उस मार्गसे चलने लगी। मैं जैसे-जैसे उस मार्गपर बढ़ती जाती थी वैसे-वैसे पानी हटता जाता था और एक सुन्दर लाल सड़क निकलती आती थी। जितना आगे जाती थी उतना ही प्रकाश और आनन्द बढ़ता जाता था। उस आनन्दका वर्णन करना मेरी शक्तिके बाहर है।

तू उसमें पतङ्ग होकर जल मत। फिर तुझे लोक या परलोकमें कहीं भी ठौर-ठिकाना न मिलेगा।

१४७३—अमावस्याके घोर अन्धकारमें काले पत्थरपर बैठी चींटीकी भाँति ईश्वर मानवहृदयमें गूढ़रूपसे विद्यमान है।

१४७४—जिसे ईश्वरका साक्षात्कार हुआ है उससे बिना जाना कुछ भी नहीं रहा। जिसने परमात्माको जान लिया उसने जानने-योग्य सब कुछ जान लिया।

१४७५—अहं और ममको दबाकर सबके भीतर भगवान्‌का दर्शन करना संतोंका काम है।

१४७६—पहले भगवान्‌को जानो और पीछे और कुछ।

१४७७—ईश्वरके सिवा तुम जो कुछ जानते हो उसे भूल जाओ और इधर-उधरकी बातें जाननेके लिये माथा मत मारो। केवल ईश्वरमें लीन रहो,—उसीके रंगमें रँग जाओ।

१४७८—जबतक तुम्हारे मनमें संसार बसा हुआ है तभीतक भगवान् तुमसे दूर हैं। संसारकी तरफसे तुम्हारी विरक्ति होते ही तुम जाओगे ईश्वरकी ओर, जिससे तुम्हारे अन्तःकरणमें अवश्य प्रकाश होगा। उस प्रकाशमें तुम्हें ईश्वरके सिवा और कोई न दिखायी देगा और न स्मृति अथवा वाणीमें ही आयेगा। यही योगकी वास्तविक अवस्था है।

१४७९—जो मनुष्य अशुद्ध दर्शनसे नेत्रों और भोगोंसे इन्द्रियों-को बचाता है, नित्य ध्यान-योगसे अन्तःकरणको निर्मल रख अपने

सुमति—'मैं समझती हूँ, शायद विद्वानोंको जल्दी आत्मज्ञान हो जाता होगा।'

देवीजी—'ऐसी बात नहीं है। इसके सच्चे अधिकारी तो वे ही हैं जिनकी विषयोंमें आसक्ति नहीं है। इस संसारमें क्या विद्वान् और क्या अविद्वान् दोनोंहीकी रुचि संसारके विषय-भोगोंमें देखी जाती है। सब लोग विषयोंको ही सच्चा सुख समझकर उन्हींमें डूबे हुए हैं। किन्तु संसारका सारा सुख क्षणिक और नाशवान् है। यह केवल भोगकालमें ही प्रतीत होता है और अन्तमें दु:खका घर बन जाता है। जो विचारहीन प्राणी विषय-भोगोंमें फँसे रहते हैं वे दुखी ही देखे जाते हैं। और सबसे दु:खकी बात तो यह है कि विषय-भोगमें डूबे हुए जीवोंको कितनी ही विषय-भोगोंकी असारता दिखाओ वे कुछ समझ ही नहीं सकते।

'सुमति! ये विचारहीन पुरुष तो विषयजाल बिछाकर स्वयं अपने दु:खका बीज बोते ही हैं, इनसे भिन्न जो विचारवान् कहलानेवाले हैं वे भी विषयोंमें फँसे ही दिखायी देते हैं; यद्यपि वे अच्छी तरह जानते हैं कि मनुष्यजन्म केवल विषयभोगोंके लिये नहीं है, इसमें तो जीवको कोई उत्तम वस्तु लाभ करनी चाहिये। खान-पान, मैथुन एवं स्त्री-पुत्रादि तो पशु-पक्षी आदि योनियोंमें भी प्राप्त हो सकते हैं। यदि मनुष्यजन्म भी इन्हींके संग्रहमें बीत गया तो उसका लाभ ही क्या हुआ? ये सब बातें जानते हुए भी वे किसी-न-किसी सांसारिक पदार्थकी प्राप्तिके लिये ही व्यग्र देखे जाते हैं। किन्तु धन्य तो वे हैं जो इस मानवदेहसे परमतत्त्वका साक्षात्कार

१४८६—इन तीन बातोंको अपना परम शत्रु समझो—धनका लोभ, लोगोंसे मान पानेकी लालसा और लोकप्रिय होनेकी आकाङ्क्षा।

१४८७—ईश्वरकी ओर चित्तवृत्ति रखनेसे तुम्हारी उन्नति ही होगी। इस मार्गमें कभी अवनति होनी सम्भव ही नहीं।

१४८८—यदि तुम ईश्वरके प्रीति-पात्र होना चाहते हो तो ईश्वर जिस स्थितिमें रखना चाहता है उसमें सन्तुष्ट होना सीखो।

१४८९—मुरदा, रोगी, आलसी और स्वस्थ—चार प्रकारके मन होते हैं। धर्मद्रोहीका मन मुरदा, पापीका मन रोगी, लोभी और स्वार्थीका मन आलसी और भजन-साधनमें तत्पर व्यक्तिका मन स्वस्थ होता है।

१४९०—प्रत्येक कामको करते समय याद रखना कि मैं जो काम कर रहा हूँ उसे ईश्वर देख रहा है, मैं जो कुछ बोल रहा हूँ उसे ईश्वर सुन रहा है। मौन धारण करते समय भी उसका कारण ध्यानमें रखना, क्योंकि ईश्वर उसे भी जानता है।

१४९१—स्पृहा तीन प्रकारकी होती है—भोगने, बोलने और देखनेकी। भोग भोगते समय ध्यान रखना कि ईश्वर देख रहा है, बोलते समय ध्यान रखना कि सत्यका विनाश न हो और देखते समय ध्यान रखना कि साधुता दूषित न हो जाय।

१४९२—इन चार बातोंके बारेमें आत्मपरीक्षण करते रहना—(१) कोई भी शुभ कर्म करते समय तुम निष्कपट हो न? (२) जो कुछ बोल रहे हो निःस्वार्थभावसे ही न? (३) जो

शरीरका संसर्ग खतरेसे खाली नहीं है। गुरुको तो अपना तन, मन, धन सभी अर्पण कर दिया जाता है, क्योंकि वह शिष्यको इस संसार-सागरसे निकालकर परमपदका अधिकारी बना देता है। इसलिये मैं इतना घनिष्ठ सम्बन्ध किसी स्त्री-शरीरसे ही जोड़ना चाहती थी।'

सुमतिकी ऐसी निष्कपट और प्रेमपूर्ण बातें सुनकर देवीजीने कहा, 'सुमति! तुम्हारा कथन बहुत युक्तियुक्त है। तुम्हारा शुद्ध चित्त मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। पुत्रि! यद्यपि लोकदृष्टिसे तुम्हारा कथन बहुत ठीक है, तथापि परमार्थतः तुम्हें स्त्री और पुरुषशरीरमें कोई भेदभाव नहीं रखना चाहिये। सभी जीवोंमें भगवद्दृष्टि रखनी चाहिये।'

सुमति—'माताजी! अब आप ही ऐसी कृपा कीजिये जिससे मेरी भेददृष्टि नष्ट हो जाय और मैं सर्वत्र भगवद्दृष्टि रखकर निर्भय हो जाऊँ। मेरी चित्तवृत्ति लोकव्यवहारसे निकलकर आत्मानन्दमें लीन हो जाय और मैं निरन्तर परमानन्दमें मग्न रहूँ। आपके उपदेशसे यह बात तो मेरी समझमें खूब बैठ गयी है कि सुख केवल आत्मानुभवसे ही हो सकता है। आप कृपा करके मुझे आत्मतत्त्वका बोध कराइये, जिससे कि फिर और कुछ भी जानना शेष न रहे। आपके और बहिन शान्तिदेवीके वचनामृतसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है। अब भी मेरा चित्त उसी अमृतपानके लिये लालायित है। आप मुझे बताइये, मैं कौन हूँ? आप कौन हैं? और वह चेतनतत्त्व क्या है?'

बढ़िया गहने-कपड़े जुटानेमें ही बिताना पड़ता है और जो उसकी ओरसे विरक्त रहता है वह पैर पसारकर एकान्तमें सुखसे सोता है ।

१५००—इन तीन मनुष्योंको बुद्धिमान् जानना—जिसने संसारका त्याग कर दिया है, जो मौतसे पहले ही सब तैयारियाँ किये बैठा है और जिसने पहलेहीसे ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त कर ली है ।

१५०१—मनुष्यसे तो जितनी कम हो सके, बात करो; ज्यादा बात करो ईश्वरसे ।

१५०२—जो ईश्वरको अपना सर्वस्व मानता है वही असली धनवान् है । दुनियाकी चीजोंको अपनी सम्पत्ति माननेवाला तो सदा गरीब ही रहेगा ।

१५०३—ईश्वरका स्मरण मेरी जिन्दगीकी खुराक, उसकी प्रशंसा मेरी जिन्दगीका पेय और उसकी लज्जा मेरी जिन्दगीके कपड़े हैं ।

१५०४—जो मनुष्य ईश्वरसे डरता है उससे दुनिया भी डरती है और जो प्रभुसे नहीं डरता उससे दुनिया भी नहीं डरती ।

१५०५—मायावी संसारसे सदा सचेत रहना । यह बड़े-बड़े पण्डितोंके मनको भी वशमें कर लेता है ।

१५०६—आहारमें जिसकी लालसा बढ़ती है वह साधनाके मार्गसे जल्दी ही दूर हो जाता है ।

देह है तबतक सब कार्य धर्मपूर्वक करती रहना तथा चित्तको सब ओरसे उपराम रखना ।

सुमति ! यह परमतत्त्व सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त है ।

बीजमें जिमि वृक्ष है, पर प्रकट दिखलाता नहीं ।
है इसी विधि ब्रह्म व्यापक, किन्तु दरशाता नहीं ॥

'देखो, बीजमें वृक्षके फूल, फल, पत्ते और शाखा आदि सभी अवयव रहते हैं; किन्तु जबतक उसका उपजाऊ भूमिसे संसर्ग नहीं होता तबतक ये सब दिखायी नहीं देते । उसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी स्थूलबुद्धि पुरुषोंको परमतत्त्व परमात्माका अनुभव नहीं होता । किन्तु आत्मज्ञानी उसका अनुभव करके सदा आनन्द-मग्न रहा करते हैं । भगवान् तो सभी जगह व्याप्त हैं । जैसे तिलोंमें तैल, दुग्धमें घृत और मेहँदीमें लाली भरी रहती है उसी प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत्में भगवान्की सत्ता है। किन्तु जबतक तिलों-को पेरा नहीं जाता तबतक तैलकी प्राप्ति नहीं होती, बिना मन्थन किये दूधसे घृत नहीं निकलता तथा पीसकर हाथ-पाँव आदिमें लगाये बिना मेहँदीकी लाली नहीं खिलती, उसी प्रकार बिना साधनमें तत्पर हुए भगवान्की उपलब्धि नहीं होती। जो उन सच्चिदानन्दघन प्रभुका अनुभव करता है वह तो तद्रूप ही हो जाता है । ब्रह्मज्ञानीकी दृष्टि आकारोंसे हट जाती है, इसलिये वह सर्वत्र ब्रह्मका ही दर्शन करता है ।'

देवीजीका यह सदुपदेश सुनकर सुमतिको बड़ा आनन्द हुआ । और वह हाथ जोड़कर गद्गदकण्ठसे इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—'हे प्रभो ! हे दीनबन्धो ! हे करुणासागर ! दया करो, दया करो । मेरे हृदयसे द्वैतदृष्टि निकालकर अपने स्वरूपमें

१५१६–मनुष्य कब ईश्वरार्पण हो सकता है? जब कि वह अपने-आपको, अपने हरेक कामको बिल्कुल भूल जाय, सर्वभावसे उस हरिका आसरा ले ले और उसके सिवा किसी दूसरेकी न आशा रक्खे, न उससे सम्बन्ध ही करे।

१५१७–संसार कौन है? जो ईश्वरसे तुम्हें परे रखता है।

१५१८–अधम कौन है? जो ईश्वरके मार्गका अनुसरण नहीं करता।

१५१९–यदि तुमने ईश्वरको पहचान लिया है तो तुम्हारे लिये एक वही दोस्त काफी है। यदि तुमने उसको नहीं पहचाना है तो उसे पहचाननेवालोंसे दोस्ती करो।

१५२०–तुम सेवा करनेके लिये आये हो, हुकूमत करनेके लिये नहीं। जान लो कष्ट सहने और परिश्रम करनेके लिये तुम बुलाये गये हो; आलसी होकर वार्तालापमें समय नष्ट करनेके लिये नहीं।

१५२१–अबोध शिशुकी तरह यदि अपनेको भूलनेकी चेष्टा करो तो देखोगे जगत्-जननीकी गोदमें आश्रय पानेमें तनिक भी देर न लगेगी। यदि अपने बलका भरोसा तुम्हें है तो तुम्हारी बात तुम्हीं जानो।

१५२२–हमें अपने ध्येयको नित्य स्मरण कर लेना चाहिये और विशेष उत्साहसे अध्यात्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। मानो हमारे संस्कारका यह प्रथम दिवस हो।

१५२३–हमारी निष्ठाके अनुकूल ही हमारी आध्यात्मिक

बोध-वाटिका

सुमति देवीजीके साथ-साथ जा रही थी। उसे सम्बोधन करके देवीजीने कहा—सुमति! तुम मेरे साथ चली आओ। मैं तुम्हें जो कुछ बताऊँ उसे ध्यानसे सुनकर मनन करो। यदि तुम मेरे कथनपर ध्यान रखोगी तो सब प्रकारके कार्य करते हुए भी अपने स्वरूपमें स्थित रहोगी और संसारके प्रत्येक पदार्थसे उपदेश ग्रहण कर सकोगी। यदि हमारी विवेकवृत्ति जाग्रत् हो जाय तो संसार ही हमारा सच्चा गुरु हो जाता है। देखो, यह संसार चक्रव्यूहके समान है! जो इसमें घुसना चाहे उसे इसमेंसे निकलनेकी युक्ति पहले जान लेनी चाहिये। यदि उसे जाने विना

१५३०—सच्ची नम्रता उनका आधार है, सरल आज्ञाकारिता-में उनका जीवन बीतता है, प्रेम और धीरतामें वे चलते हैं; अतएव आत्मभावमें वे नित्य उन्नति करते हैं और परमात्माकी दृष्टिमें सद्वृत्तियोंको प्राप्त करते हैं। उपासनामें उनकी कितनी श्रद्धा है! कितनी अधिक कामना है उनमें सद्गुणोंको बढ़ानेकी; और कितना संयमित होता है उनका जीवन!

१५३१—उनके पदचिह्न इस बातको प्रमाणित करते हैं कि वे वस्तुतः पूर्ण और पवित्र मनुष्य हैं और वे वीरताके साथ लड़ते हुए संसारको अपने पैरों-तले कुचल देते हैं।

१५३२—यदि तुम अविच्छिन्नरूपसे आत्मचिन्तन नहीं कर सकते तो कम-से-कम दिनमें एक बार तो किया करो; प्रातःकाल अथवा रात्रिमें। प्रातःकाल अपना ध्येय निश्चित कर लो और सोते समय अपनी परीक्षा कर लो कि तुमने क्या किया है; मन, वचन और कर्मसे तुमने कैसा व्यवहार किया है।

१५३३—असुरोंके नीच वारोंके लिये अपनेको सुसज्जित रक्खो। वासनाओंपर लगाम चढ़ाओ, इस प्रकार तुम उत्कट आकांक्षाओंको सहज ही जीत सकोगे।

१५३४—आलसी मत बनो! पढ़ते-लिखते रहो या प्रार्थना करते रहो; ध्यान करते रहो अथवा जनसाधारणके कल्याणके लिये कुछ करते रहा करो।

१५३५—धार्मिक अभ्यास जन-साधारणके सम्मुख नहीं करना

यदि शान्ति चाहती हो तो चार घण्टे मौन रहकर परमात्माका चिन्तन किया करो ।

× × ×

लोग भले ही तुम्हें मूर्ख समझें तथापि तुम बिना पूछे हर्गिज किसीको कोई सलाह मत दो । हाँ, यदि तुमसे कोई पूछे तो अवश्य, जैसा तुम उचित समझो, अपना विचार प्रकट कर दो । सम्भव है, उससे किसीका कुछ हित हो जाय ।

× × ×

किसी प्रसंगमें कोई व्यर्थ बात कहनेसे पीछे पछताना पड़ता है । इसलिये सोच-विचारकर बोलो ।

× × ×

ऐसी बोली बोलनेका अभ्यास करो जिससे प्रेमकी वृद्धि हो और द्वेषरूप अग्नि शान्त हो जाय ।

× × ×

यदि तुम दूसरोंके दोष देखने छोड़ दोगी तो अवश्य तुम्हारा अन्तःकरण निर्मल हो जायगा ।

× × ×

तुम अपने दोष और दूसरोंके गुण देखनेवाली बन जाओ तो फिर भगवान्‌के मिलनेमें देरी नहीं लगेगी ।

× × ×

जब अपनी बुराइयोंकी ओर दृष्टि जाने लगती है तो मनकी मैल साफ होने लगती है । फिर जैसे-जैसे मनकी मैल साफ होने लगती है वैसे-वैसे ही अपना रूप दिखायी देने लगता है ।

× × ×

१५४२—जो धर्मके निगूढ़, आन्तरिक और आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि जनरव और विश्वके कोलाहलसे दूर संतोंकी संगतिमें रहें।

१५४३—जो मनुष्य अपनी शान्तिको अपनी इच्छासे अपने भीतर रख सकता है वही निर्भयतापूर्वक बोल भी सकता है। जो मनुष्य इच्छापूर्वक अनुशासित होता है, वही सच्चा अनुशासन भी कर सकता है।

१५४४—वास्तविक आनन्द उसीको मिलता है जिसका अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र है।

१५४५—अहा! कितनी सुन्दर उस पुरुषकी अन्तरात्मा होनी चाहिये, जिसने कभी भी क्षणिक सुखोंकी खोज नहीं की, और न इस संसारके किसी पदार्थमें अपनेको उलझाया और कितनी अधिक शान्ति और तृप्ति उस पुरुषको होगी जिसने व्यर्थकी चिन्ताओंका नाश कर दिया है, और सदा केवल भगवत्-चिन्तन करता है।

१५४६—किसी मनुष्यको दैवी सुख नहीं मिल सकता जबतक उसने परिश्रमपूर्वक पवित्र आत्मशुद्धिका अभ्यास न किया हो।

१५४७—शान्ति और मौनमें धर्मात्मा पुरुष धर्मग्रन्थोंके रहस्यको सीखता और लाभ उठाता है। धर्मात्मा पुरुषके लिये यह उत्तम है कि वह बहुत कम बाहर जाय।

१५४८—प्रसन्नतापूर्वक बाहर जानेवाला प्रायः उदासीसे

भगवान्‌के सभी नाम कल्याणकारी हैं; किन्तु आवश्यकता है उनका प्रेम और श्रद्धापूर्वक जप करनेकी ।

× × ×

यदि पुरुष मनसहित इन्द्रियोंको भोगोंसे हटाकर सब प्रकारकी इच्छाएँ छोड़कर स्वभावतः प्राप्तभोगोंको आसक्तिरहित होकर भोगे तो उसे संयमी ही कहा जायगा ।

× × ×

यदि गर्मी-सर्दी, हानि-लाभ, जीवन-मरण इन सब द्वन्द्वोंमें समानभाव रहने लगे तो संयमकी पूर्णता समझनी चाहिये ।

× × ×

तुम्हें कितने ही कष्टोंका सामना करना पड़े, किन्तु यदि तुम उन्हें शान्तचित्तसे सहन कर लेती हो तो तुम सन्तोषरूप धन प्राप्त कर सकती हो ।

× × ×

मौन रहनेसे बड़ा लाभ है । ऐसा करनेसे मनुष्य बहुत-सी बुराइयोंसे बच जाता है । मौनके साथ भगवन्नाम जपनेसे बड़ा हित हो सकता है ।

× × ×

सम, सन्तोष, विचार और सत्संग—ये चारों मोक्षके द्वारपाल हैं । यदि इनमेंसे किसी एकका भी सहारा ले लिया जाय तो धीरे-धीरे चारोंहीसे मेल हो जायगा । फिर मुक्ति होनेमें कुछ भी विलम्ब न लगेगा ।

१५५६–आनन्द उसे है जो क्षोभ उत्पन्न करनेवाली सभी वस्तुओंको हटाकर अपनेको एकमात्र पवित्र पश्चात्तापके उद्देश्यमें लगा देता है। जो उन सबको त्याग देता है जो उसकी आत्माको दूषित करते हैं।

१५५७–वीरताके साथ आत्मनिग्रह करो; एक प्रकारका अभ्यास दूसरे प्रकारके अभ्यासको जीत लेता है।

१५५८–जब मनुष्यको अपने पापोंके लिये गहरा पश्चात्ताप होता है तभी उसके लिये सारा संसार दुःखदायी और कष्टकर प्रतीत होने लगता है।

१५५९–मनुष्य जितनी ही संकीर्णतासे अपने सम्बन्धमें सोचता है उतना ही अधिक वह उदास होता है।

१५६०–भगवान्से बहुत ही विनयके साथ प्रार्थना करो कि वह तुम्हारे भीतर पश्चात्तापके भावको जागृत करे।

१५६१–जिन लोगोंको इन तीन वस्तुओंपर प्रेम है, उनमें और नरकमें ज्यादा दूरी नहीं है—(१) स्वादिष्ट भोजन, (२) सुन्दर वस्त्र, (३) धनवानोंका सहवास।

१५६२–बाहरी एकान्त वास्तविक एकान्त नहीं। मनमें चिन्ता और शोकका प्रवेश न हो वही सच्चा एकान्त है। ऐसा एकान्तवास करनेवाला ही सच्चा संगरहित है।

१५६३–मनको सदा वशमें रक्खो। यदि वह हाथमें होगा तो उसमें प्रवेश करनेको दूसरेको रास्ता ही नहीं मिलेगा।

१५६४–जो मनुष्य ईश्वरपर विश्वास रखकर उसीकी

पुरुषार्थसे तुम संसार- करके परमपद प्राप्त कर लोगी। यदि विचार करके दे न सुख है न दुःख। चित्तके शान्त होनेसे सुख हो ञ्चल होनेसे दुःख। इसीसे इष्ट पदार्थ सुखका तथा अनिष्ट पदार्थ ःखका कारण होता है। जिसने विचारद्वारा सुख-दुःखके इस स्वरूपका निर्णय कर लिया है उसके सारे दुःखोंका अन्त हो जाता है। उसे अपने अन्तःकरणमें जिस अलौकिक आनन्दका अनुभव होता है उसकी उपमा संसारके किसी भी सुखसे नहीं दी जा सकती। जिसने इस त्रिलोकीके विस्तारके प्रयोजनको समझ लिया है वह सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता। अच्छा, अब मैं तुम्हें ज्ञानकी सात भूमिकाओंका क्रम सुनाती हूँ।

'संसारमें दो प्रकारके मनुष्य हैं—प्रवृत्तिपरायण और निवृत्ति-परायण। जिन लोगोंको लौकिक और पारलौकिक भोगोंकी ही कामना रहती है वे प्रवृत्तिपरायण कहे जाते हैं। इनका चरम लक्ष्य स्वर्गसुखकी प्राप्ति है। अतः उसकी प्राप्तिके लिये ये नाना प्रकारके सकाम कर्म किया करते हैं। जिस प्रकार गंदे नालेमें रहनेवाला कीड़ा उस गंदगीमें ही मस्त रहता है उसी प्रकार ये लोग सांसारिक सुखोंमें ही मग्न रहते हैं। किन्तु यदि दैववश उस कीड़े-को मीठा जल मिल जाय तो उसका अमृतके समान स्वाद ग्रहण करके फिर वह नालेके जलकी ओर नहीं देखता वैसे ही अनेकों जन्मोंके पुण्यसे जब इस पुरुषको ऐसा विवेक होता है कि इस निःसार संसारसे मुझे क्या लेना है, मैं जन्म-जन्मान्तरमें व्यर्थ ही

लोक-निन्दासे अप्रसन्न हो। (३) तुम्हारे हृदयमें लौकिक विषय-की कामना निःशेष हो जाय। दूसरोंको विषयभोग और स्वादिष्ट खान-पानमें जैसा आनन्द मिलता है वैसा ही आनन्द तुम्हें उन भोगोंके त्यागमें मिले।

१५७२–सहनशीलताके तीन लक्षण हैं–(१) निन्दाका त्याग, (२) निर्मल सन्तोष और (३) आनन्दपूर्वक ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन।

१५७३–सदा विनय और प्रेमपूर्वक ईश्वरका भजन करो। सेवा और सम्मानपूर्वक साधुजनोंका संग करो।

१५७४–अपना दोष कोई देख नहीं पाता। अपना व्यवहार सभीको अच्छा मालूम होता है किन्तु जो मनुष्य सब हालतमें अपनेको छोटा समझता है वह अपने दोष भी देख सकता है।

१५७५–साधुजनोंके लिये सत्संग श्रेयस्कर है। जो सत्संगसे दूर रहता है वह रोगरहित नहीं। मान-अपमान, कृपा-अकृपा इन सबको एक समान समझे बिना मनुष्यमें सम्पूर्णता नहीं आती।

१५७६–ईश्वरने जिसे परमार्थज्ञानमें श्रेष्ठ बनाया है वह पापमें पड़कर अपना पतन न होने दे यह उसका पहला कर्त्तव्य है।

१५७७–इन चार बातोंसे ज़ीवका कल्याण होता है–ईश्वरके प्रति दीनता, ईश्वरेतर सब पदार्थोंमें निःस्पृहता, ईश्वरका ध्यान और विनय।

आत्मतत्त्वविषयक शङ्काओंका अभाव-सा हो जाता है तथा विषयोंकी ओरसे चित्तमें स्वभावतः ही वैराग्य हो जाता है उस समय '*तनुमानसा*' नामकी तीसरी भूमिका समझनी चाहिये। यह निदिध्यासनरूपा है। इस समय चित्त निवृत्तिमें ही विशेष सुख अनुभव करता है, व्यावहारिक जीवन असह्य हो जाता है तथा निरन्तर एकान्तसेवनमें ही सुख जान पड़ता है। इस प्रकार ऊपरसे शान्तिमय जीवन रहनेपर भी चित्तमें कुछ असन्तोष और अशान्ति-सी जान पड़ती है। आत्माकी पूर्णताका निश्चय रहनेपर भी उसका अपरोक्ष अनुभव नहीं होता। इसलिये चित्तमें व्याकुलता बनी रहती है।

चौथी भूमिका '*सत्त्वापत्ति*' है। इस स्थितिके प्राप्त होनेपर साधकको अपनी प्राप्तव्य वस्तु मिल जाती है और उसके चित्तमें किसी प्रकारकी शंका नहीं रहती। चित्तसे द्वैतभाव निकल जानेके कारण सर्वत्र समदृष्टि हो जाती है और संसार स्वप्नवत् जान पड़ता है। पहली तीन भूमिकाएँ जिज्ञासुकी हैं। इस भूमिकामें पहुँचनेपर आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है तथा इससे आगेकी तीन भूमिकाओंमें उत्तरोत्तर आत्मानुरागकी वृद्धि होती है। यह भूमिका सविकल्पसमाधिरूपा है, आगेकी तीन भूमिकाओंमें उत्तरोत्तर निर्विकल्पता बढ़ती जाती है।

पाँचवीं भूमिका '*असंसक्ति*' है। इस अवस्थामें स्वभावतः ही सर्वत्र अनासक्ति हो जाती है तथा विशेषतः अन्तर्मुखी वृत्ति रहती है। समय-समयपर सुषुप्तिकी तरह संसारकी प्रतीति भी नहीं होती।

१५८६—जीभसे प्रार्थना बोल देने और सिर झुका देनेसे ही तो कुछ नहीं होता । प्रार्थना एकाग्रतापूर्वक होनी चाहिये ।

१५८७—हे मानवो ! ईश्वरके मार्गमें न तो आँखोंकी जरूरत है और न जीभकी । जरूरत है पवित्र हृदयकी । ऐसा प्रयत्न करो जिससे वह पवित्रता पाकर तुम्हारा मन जाग जाय ।

१५८८—पूरे जागे हुए मनका यही अर्थ है कि ईश्वरके सिवा दूसरी किसी चीजपर चले ही नहीं ।

१५८९—नरकके बीज बोकर स्वर्गके फलकी आशा रखनेसे अधिक मूर्खता क्या होगी ?

१५९०—सांसारिक वस्तुएँ ऐसी अनिष्टकारक हैं कि उनकी इच्छामात्र ईश्वरसे दूर ले जाती है; यदि कोई उन्हें पा ले तब तो उसकी क्या हालत होगी ?

१५९१—धर्मके अनुष्ठानसे जो फल मिले उसे श्रीप्रभुप्रेमके लिये उत्सर्ग कर दो ।

१५९२—ईश्वरपर निर्भर रहकर ही दुनियाकी गुलामीसे छूटा जा सकता है ।

१५९३—ईश्वराज्ञाका पालन करनेपर ही सच्चा आनन्द मिलेगा ।

१५९४—जो अपने उपदेशको अनुभव और आचरणमें नहीं उतार सकता उसके उपदेशोंसे कुछ भी नहीं बन सकता और वह सदा अपना तथा दूसरोंका अमूल्य समय नष्ट करता है ।

'इस प्रकार जो महर्षियोंका ध्रुव सिद्धान्त है उसका वर्णन किया गया। मानवजन्मकी सफलता इस परमपदको प्राप्त करनेमें ही है। सारे साधनोंका एकमात्र साध्य भी यही है। इसीके लिये तुम्हें भी कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिये। अब कुछ अन्तिम शब्द कहकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करूँगी।

'सुमति! यह शरीर एक जंगल है। इसमें इच्छारूप हथिनी रहती है। यह बड़ी पेटू है। हर समय किसी-न-किसी चीजके लिये लालायित रहती है। इन्द्रियाँ इस हथिनीके बच्चे हैं। शुभ और अशुभ कर्म इसके दाँत हैं और वासनाएँ मद हैं। इस मदमाती हथिनीने जीवरूप हाथीको नाच नचा रखा है। जो शुद्ध संकल्पवान् होता है वही इस संसार-समराङ्गणमें विजय प्राप्त कर सकता है। अशुद्ध संकल्पवान् तो अकालमें ही कालग्रस्त हो जाता है। जिसे शान्तिकी इच्छा हो उसे दृढतारूपी तलवार लेकर इस हथिनीका वध कर डालना चाहिये। जबतक यह जीवित है तबतक किसीको भी शान्ति नहीं मिल सकती। वस्तुतः इससे मुक्त होना ही संसारसे मुक्त होना है। बस, इच्छा ही परमार्थपथका सबसे बड़ा प्रतिबन्धक है। इसके रहते हुए न तो चित्त शुद्ध हो सकता है और न गुरु एवं शास्त्रके उपदेशमें ही श्रद्धा हो सकती है। अतः इच्छाको निर्मूल कर देना प्रत्येक कल्याणकामीका प्रथम कर्तव्य है।

'सुमति! तुम्हें जो कुछ सुनाना था वह मैंने सुना दिया। अब तुम इसका मनन करके इसीके अनुसार आचरण करो। यदि तुम सब प्रकारकी वासनाएँ छोड़कर निरन्तर भगवद्भजन करोगी तो यावज्जीवन परमानन्दमें मग्न रहकर अन्तमें परमपद प्राप्त करोगी।'

१६०२–तुम हृदयको बिलकुल खाली कर दो, उसमें कुछ भी न रहने दो, तब उसमें भगवान् वास करेंगे और जो कुछ भी तुम्हारे मुँहसे निकलेगा वही भगवान्की ओरसे निकलेगा। बाँसुरीकी तरह अपनेको पोला बना दो, फिर सदा भगवान्के अधरोंका रसपान करोगे और उसीका सुर तुम्हारे भीतरसे बजेगा।

१६०३–भगवान्की शरणमें जानेके सिवा हृदयके मैल धोनेका कोई साधन है नहीं।

१६०४–जो श्रद्धा और भक्तिसे भगवान्का पल्ला पकड़ता है, भगवान् उसका सारा भार अपने कन्धेपर उठा लेते हैं और उसे तनिक भी कष्ट नहीं होने देते।

१६०५–जबतक हृदयमें विकार है, विषाद है, भय है और अविश्वास है तबतक श्रद्धा और भक्ति दृढ़ नहीं हो सकती।

१६०६–हम क्या चाहते हैं? ईश्वरका साक्षात्कार। क्यों? आत्मिक शान्तिके लिये। आत्मिक शान्ति क्यों चाहते हैं? दुःखोंसे छूटनेके लिये।

१६०७–जबतक इच्छा है तबतक दुःख जरूर है। इच्छा गयी तो दुःख भी गया।

१६०८–गुरुका काम शिष्यको अपने सदृश बना लेना है।

१६०९–भगवत्साक्षात्कार करनेवालेका नाम ही विद्वान् है।

१६१०–हम भगवत्साक्षात्कार भी चाहें और सांसारिक चिन्ताओंको भी न छोड़ें–यह कैसे हो सकता है?

भाँति कृष्ण-कृष्ण चिल्लाता हुआ अपने जीवनका सम्पूर्ण समय निमिषकी नाईं बिता दूँगा ।

१६१५—नाथ ! मुझे रोनेका वरदान दो, रोता रहूँ, पागलकी भाँति सदा रोऊँ, उठते-बैठते, सोते-जागते सदा इन आँखोंमें आँसू ही भरे रहें, रोना ही मेरे जीवनका व्यापार हो । खूब रोऊँ, हर समय रोऊँ, हर जगह रोऊँ और जोर-जोरसे रोते-रोते तुम्हें—केवल तुम्हें पुकारता रहूँ ।

१६१६—वह कुल परम पावन है, वह जननी धन्य है और वह वसुन्धरा भाग्यशालिनी है, जहाँपर भगवद्भक्त महापुरुष उत्पन्न हुआ हो ।

१६१७—श्रीगंगाजी पापोंको क्षय कर देती हैं । चन्द्रमा तापको शमन करनेमें समर्थ है और कल्पवृक्ष दैन्यको नष्ट कर देता है किन्तु संत महापुरुष तो पाप, ताप और दैन्य-इन सभीको नष्ट करनेमें समर्थ होते हैं ।

१६१८—शास्त्र पढ़नेपर भी यदि उसके अनुसार आचरण न करे तो वह मनुष्य मूर्ख ही है ।

१६१९—कृपालु संत भोजके वृक्षके समान दूसरोंके हितके लिये भारी विपत्ति सहते हैं किन्तु दुष्टलोग सनकी भाँति दूसरोंको बाँधते हैं, और उन्हें बाँधनेके लिये अपनी खालतक खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं । दुष्ट बिना किसी स्वार्थके भी साँप और चूहेके समान अकारण ही दूसरोंका अपकार करते हैं ।

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखित कुछ पुस्तकें—

तत्त्व-चिन्तामणि भाग १ (सचित्र)

आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ३६०, दो सुन्दर तिरंगे चित्र, मूल्य ॥=) सजिल्द ॥।-)

प्रस्तुत पुस्तकमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और निष्काम कर्मयोग आदि विषयोंके लेखकके समय-समयपर 'कल्याण' में प्रकाशित २१ निबन्धोंका संग्रह है।

तत्त्व-चिन्तामणि भाग १ (सचित्र)

(छोटे आकारका गुटका संस्करण)

साइज २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ ४४८, मूल्य ।-) सजिल्द ।=)

तत्त्व-चिन्तामणि भाग २ (सचित्र)

पृष्ठ ६३२, मूल्य प्रचारार्थ केवल ॥।=), सजिल्द १=) मात्र ।

इसमें ४८ निबन्धोंका संग्रह है, जो समय-समयपर 'कल्याण' में प्रकाशित हुए हैं । जिनको परमार्थ-तत्त्वकी चाह है, जिनको संसारमें सुख-शान्तिकी आवश्यकता है, उनके लिये यह पुस्तक मार्गदर्शक है ।

तत्त्व-चिन्तामणि भाग २ (सचित्र)

(छोटे आकारका गुटका संस्करण)

साइज २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ-संख्या ७५०, मदनमोहनका सुन्दर तिरंगा चित्र, प्रचारार्थ मूल्य ।=) सजिल्द ॥)

तत्त्व-चिन्तामणि भाग ३ (सचित्र)

पृष्ठ ४६०, मूल्य प्रचारार्थ केवल ॥=) सजिल्द ॥।=)

प्रस्तुत पुस्तकमें समय-समयपर 'कल्याण' में लिखे हुए तैंतीस निबन्धोंका संग्रह है । इस पुस्तकके महत्त्वके विषयमें बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं है, जिन्होंने इसके प्रथम और द्वितीय भागोंको देखा है वे स्वयं ही इसकी उपयोगिता समझ जायँगे ।

तत्त्व-चिन्तामणि भाग ३ (सचित्र)

(छोटे आकारका गुटका संस्करण)

साइज २२×२९ बत्तीसपेजी, पृष्ठ-संख्या ५६०, ध्यानयोगी ध्रुवका सुन्दर रंगीन चित्र, मूल्य केवल ।-) सजिल्द ।=)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

१६२५-जिस कर्मके द्वारा भगवान् हरि सन्तुष्ट हो सकें वास्तवमें वही कर्म कहा जा सकता है और जिससे मुकुन्दचरणोंमें रति उत्पन्न हो सके वही सच्ची विद्या है। जिस वर्णमें, जिस कुलमें और जिस आश्रममें रहकर श्रीकृष्णकीर्तन करनेका सुन्दर सुयोग प्राप्त हो सके वही वर्ण, कुल, आश्रम शुभ और परम श्रेष्ठ है।

१६२६-श्रीकृष्णके मनोहर नामोंका ही स्मरण करते रहना चाहिये। श्रीकृष्ण-कथाओंके अतिरिक्त अन्य कोई भी संसारी बातें न सुननी चाहिये। खाते कृष्ण, पीते कृष्ण, चलते कृष्ण, उठते कृष्ण, बैठते कृष्ण, हँसते कृष्ण, रोते कृष्ण, इस प्रकार सदा कृष्ण-कृष्ण ही कहते रहना चाहिये।

१६२७-श्रीकृष्णनामामृतके अतिरिक्त इन्द्रियोंको किसी प्रकारके दूसरे आहारकी आवश्यकता ही नहीं है। इसीका पान करते-करते वे सदा सुतृप्त बनी रहेंगी।

१६२८-भगवान् ऐसे दयालु हैं कि भक्तिसे दिये हुए एक चुल्लू जल तथा एक तुलसीपत्रके द्वारा ही अपनी आत्माको भक्तोंके लिये दे देते हैं।

१६२९-प्रेम अन्धा है-यह कौन कहता है ? असलमें प्रेमके अतिरिक्त अन्य सभी अन्धे हैं। प्रेम ही एक ऐसा अमोघ बाण है जिसका लक्ष्य कभी व्यर्थ नहीं जाता। उसका निशाना सदा ही ठीक लक्ष्यपर बैठता है। 'अपना' कहीं भी छिपा हो, प्रेम उसे वहींसे खोज निकालेगा।

श्रीहरिः

कुछ स्त्रियोपयोगी पुस्तकें

श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति-सहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५८०, ४ चित्र मूल्य १।)

श्रीमद्भगवद्गीता—केवल भाषा, अक्षर बड़े हैं, संस्कृत-श्लोक न पढ़ सकनेवालोंके लिये बड़ी उपयोगी है। स्त्रियोंके लिये विशेष सुविधाजनक है। सचित्र, पृष्ठ २०४, मूल्य ।) सजिल्द ।=)

श्रीरामचरितमानस—(मूल-गुटका), रामदरबारका तिरंगा और गोस्वामी तुलसीदासजीका सादा चित्र, पृष्ठ-संख्या ६८०, पारायण करनेके लिये बड़े ही कामकी चीज है। सजिल्द, मूल्य ॥)

भक्त-नारी—इसमें शबरी, मीराबाई, जनाबाई, करमैतीबाई और रबियाकी कथाएँ हैं। स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेके लिये बड़ी ही उपयोगी पुस्तक है। ६ चित्र, पृष्ठ ८०, मूल्य ।−)

स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी—पति-सेवाके दिव्य-व्रतका पालन करती हुई गृह-देवियाँ किस प्रकार मनुष्य-जन्मके चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके मार्गमें तत्पर, अग्रसर और सफल हो सकती हैं, इसका उल्लेख प्रश्नोत्तरीके रूपमें किया गया है। तथा विधवाधर्मका निरूपण भी उत्तमतापूर्वक किया गया है। सचित्र पृष्ठ ५६, −)॥

नारीधर्म—इसमें वर्तमान स्त्री-शिक्षाकी कठिनाई, प्राचीन कालकी स्त्री-शिक्षा, स्त्रीमात्रके कर्तव्य, कन्याओं, विवाहिता स्त्रियों और विधवाओंके कर्तव्य आदि कई विषयोंपर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। सचित्र, पृष्ठ ५२, मूल्य ... −)॥

श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा—इसमें श्रीसीताजीका नैहरमें प्रेम-व्यवहार, माता-पिताका आज्ञा-पालन, पतिसेवाके लिये प्रेमाग्रह, सास-सेवा, दाम्पत्य-प्रेम, पर-पुरुषसे परहेज आदि विषयोंका वर्णन है। ध्यानमग्न सीताका तिरंगा चित्र, पृष्ठ ४४, −)।

पता—**गीताप्रेस, गोरखपुर।**

अन्य पुस्तकोंके लिये सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

जल टपकता रहता है। इस प्रकार वे अपनी सम्पूर्ण आयुको श्रीहरिके ही निमित्त समर्पण कर देते हैं।

१६३५—प्रेममें उन्मत्त हुआ भक्त कभी तो हँसता है, कभी रोता है, कभी गाता है और कभी संसारकी लोक-लाज छोड़कर दिगम्बरवेशमें ताण्डवनृत्य करने लगता है। उसका चलना विचित्र है, वह विलक्षण भावसे हँसता है, उसकी हर चेष्टामें उन्माद है। उसकी भाषा संसारी भाषासे भिन्न है। वह संसारके विधि-निषेधोंका गुलाम नहीं।

१६३६—कलियुगमें हरिनाम, हाँ, केवल हरिनाम, एकमात्र हरिनाम ही संसार-सागरसे पार होनेका सर्वोत्तम साधन है। इसके सिवा इस कालमें दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, दूसरी कोई गति है ही नहीं।

१६३७—जिस क्षण 'तेरा हूँ' कहकर भक्त भगवान्‌को पुकारता है उसी क्षण प्रभु उसे अपना लेते हैं। वे तो भक्तोंके लिये भूखे-से बैठे रहते हैं, लोगोंके मुखकी ओर ताकते रहते हैं कि अब कोई कहे कि 'मैं तुम्हारा हूँ'।

१६३८—जलको मथनेपर घी भले ही निकले, बालूको पेरनेपर उससे तेल भले ही निकले, परन्तु भगवान्‌के भजनके बिना इस संसार-सागरको तरना सर्वथा असम्भव है—यह अकाट्य सिद्धान्त है।

१६३९—चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण पढ़कर,

सारा ज्ञान प्राप्त कर और सभी संतोंका सत्संग प्राप्त कर अन्तमें तुम 'रामनाम' में ही लौटोगे । फिर अभीसे उसीमें क्यों नहीं लगते ?

१६४०—जिसमें द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणोंके सहित मन ओतप्रोत है उस एक आत्माको ही जानो, और सब बातोंको छोड़ दो; यही अमृतका सेतु है ।

१६४१—प्रकृति और पुरुषका नियन्ता, सकल प्राणियोंका अन्तर्यामी और षड्गुण ऐश्वर्ययुक्त परमात्माके चरणोंको छोड़कर अन्यत्र कहीं भी संसारभय दूर नहीं होता ।

१६४२—जिसने इच्छाका त्याग किया उसको घर छोड़नेकी क्या आवश्यकता और जो इच्छाका बँधुआ है उसको वनमें रहनेसे क्या लाभ हो सकता है ? सच्चा त्यागी जहाँ रहे वही वन और वही कन्दरा है ।

१६४३—न जीनेकी इच्छा रक्खो न मरनेकी, वरं हर बातके लिये ऐसे तैयार रहो जैसे नौकर मालिकके हुक्मके लिये ।

१६४४—भगवान् विष्णुका आश्रय ही संसारासक्त मनवाले लोगोंके लिये संसारचक्रका नाश करनेवाला है । इसीको बुद्धिमान् लोग ब्रह्मनिर्वाणसुख कहते हैं, अतएव तुमलोग अपने-अपने हृदयमें स्थित भगवान्‌का भजन करो ।

१६४५—रागके समान आग नहीं, द्वेषके समान भूत-पिशाच नहीं, मोहके समान भयंकर जल नहीं और तृष्णाके समान भीषण नदी नहीं ।

१६४६—कौन तेरी स्त्री है ? कौन तेरा पुत्र है ? यह संसार

अतीव विचित्र है। तू कौन है? कहाँसे आया है? हे भाई! इस तत्त्वपर विचार कर।

१६४७—कोमल और दीन हृदय जो विरहसे विकल है—वहीं भगवान्‌का निवास है।

१६४८—वन्दगी जो सम्पूर्ण हृदयके साथ न हो, निष्फल है।

१६४९—अचेत आदमीके लिये संसार भोग-विलासका स्थल है, परन्तु विचारवान्‌के लिये युद्धक्षेत्र है जहाँ जीवनपर्यन्त मन और इन्द्रियोंसे संग्राम करना पड़ता है।

१६५०—सच्चा खोज करनेवाला वही है जो जबतक आप न खो जाय मालिकको खोजता रहे।

१६५१—जो गये हुएका स्मरण नहीं करता, मिले हुएकी इच्छा नहीं रखता, अन्तःकरणमें मेरुके समान अचल रहता है और जिसका अन्तःकरण 'मैं-मेरा' भूला रहता है वही निरन्तर संन्यासी है।

१६५२—जिसने एक वार श्रीकृष्णरूपको देखा उसकी आँखें फिर उससे नहीं फिरतीं, अधिकाधिक उसी रूपका आलिङ्गन करती हैं और उसीमें लीन हो जाती हैं।

१६५३—जिस ओर हम दौड़े वह सब दिशाएँ तेरी ही देखीं—सब ओर तू ही था। जिस स्थानपर हम पहुँचे वह सब तेरी ही गलीका सिरा देखा—सर्वत्र तुझे ही पाया।

१६५४—अगर गिरो तो अपने कुकर्मोंको दोष दो, अगर ऊँचे चढ़ो तो मालिकका गुण गाओ!

१६५५—मनुष्यका खड़ा रहना, चलना, दूसरोंको ठगना, छिपकर कार्य करना, दो आदमियोंका गुप्त बातचीत करना—सब कुछ परमेश्वर जानता है ।

१६५६—सर्वव्यापी ब्रह्ममें ही सुख है, अल्प परिच्छिन्नमें सुख नहीं है । ब्रह्म सुखरूप ही है, अतएव उसीकी जिज्ञासा करनी चाहिये ।

१६५७—जो भगवान्‌के नामोंका सङ्कीर्तन करता है, जो हरिभक्तोंको प्रिय है, जो महान् पुरुषोंकी सेवा करता है ऐसा भक्त वन्दनीय है ।

१६५८—जो मनुष्य सुनकर, स्पर्शकर, देखकर, खाकर और सूँघकर न तो प्रसन्न होता है और न उदास होता है उसे जितेन्द्रिय जानना चाहिये ।

१६५९—सत्य बातका विश्वास करो और पापोंका तिरस्कार करो; जो शब्द सच्चे हृदयसे नहीं निकलते हैं उनका न निकलना ही अच्छा है ।

१६६०—जिसका मन ईश्वर-परायण है वही सत्पुरुष है । जिसने कामिनी-काञ्चनका त्याग कर दिया है वही सत्पुरुष है ।

१६६१—जिस क्षण भगवन्नामका स्मरण न हो, वही सबसे बड़ा दुःख है और भगवन्नामका स्मरण होता रहे तो शरीरको चाहे जितना क्लेश हो उसे परम सुख ही समझना चाहिये ।

१६६२—जो वस्तु तुम्हारे मनको अच्छी लगती हो, उसे

छोड़ दो और जो चीज अच्छी नहीं लगती, उसपर प्रेम करो। यह तप हमेशा चालू रक्खो।

१६६३—जो त्रिलोकीके सम्पूर्ण वैभवके लिये भी आधे क्षणके लिये देवदुर्लभ भगवान्‌के चरणकमलोंके ध्यानको नहीं छोड़ता, वही सच्चा भक्त है।

१६६४—जो सब भूतप्राणियोंमें परमात्माको और परमात्मामें सब प्राणियोंको देखता है वह समदर्शी और आत्मयज्ञ करनेवाला पुरुष स्वाराज्य (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

१६६५—जो सर्वप्राणियोंके हितकारी हैं, किसीमें दोषारोपण नहीं करते, किसीसे डाह नहीं करते, इन्द्रियों और मनको वशमें रखते हैं, निःस्पृह हैं और शान्त हैं वे ही उत्तम भक्त हैं।

१६६६—जिसको भगवान्‌की याद आते ही रोमाञ्च हो जाय, आनन्दके आँसू बहने लगें, शरीरका रंग बदल जाय और 'हे श्रीकृष्ण! हे गोविन्द!! हे हरे!!!' मधुर स्वरसे इस प्रकार नाम-गान करता जो रात-दिन भगवान्‌में चित्त लगाये रक्खे, वही श्रेष्ठ भक्त है।

१६६७—वास्तवमें यह सब तमाशा स्वप्नके सदृश है, इसमें कुछ भी सार नहीं है। तुम इस बातको विना किसी शील-संकोच-के ग्रहण कर लो कि संसारकी स्थिति निरन्तर परिवर्तनशील ही रहती है।

१६६८—'मैं' की भाषा ही भक्त नहीं जानता, 'मेरा' कुछ

भी नहीं कहता और सुख-दुःख क्या होता है, यह भी वह नहीं जानता ।

१६६९—सच्चा विरक्त उसीको कहना चाहिये जो मानके स्थानसे दूर रहता है । अपना नया सम्प्रदाय नहीं चलाता । जीविकाके लिये दीन होकर किसीकी खुशामद नहीं करता । स्त्रियोंके संगसे सदा दूर रहता है ।

१६७०—लोग भला कहें या बुरा, उनकी बातोंकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये । संसारके यश और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वरके मार्गपर चलना चाहिये ।

१६७१—बाहरी मददपर कभी भरोसा मत करो । केवल अपनेपर, अपने अन्तरात्मापर, प्रभुपर भरोसा करो, इसीकी आवश्यकता है ।

१६७२—जो सब भूतोंमें आत्माको देखता है और आत्मामें सब भूतोंको, वह किसीसे घृणा नहीं करता । जब मनुष्य यह जानता है कि समस्त भूत आत्मा ही हैं और सबमें एकत्व देखता है फिर मोह और शोक कहाँ है ?

१६७३—बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि विषय-कामनामें फँसा हुआ मन जब-जब परमात्माको छोड़कर अन्यत्र जाय तब-तब वहाँसे लौटाकर उसे हृदयस्थित भगवान्में लगावे । इस प्रकार निरन्तर अभ्यास करनेसे साधकका चित्त थोड़े ही कालमें ईंधन-रहित अग्निकी भाँति शान्त हो जाता है ।

१६७४—कामना भोगसे कभी शान्त नहीं होती, घी डालने-पर अग्निके समान वह अधिकाधिक बढ़ती ही रहती है।

१६७५—संसारमें न तो कोई किसीका मित्र है, न शत्रु है। जो मनुष्य किसीको अपना शत्रु मानकर उसपर क्रोध करते हैं वे वास्तवमें अपनी ही हानि करते हैं। संसार विष्णुमय है। शरीरका एक अंग दूसरे अंगका शत्रु कैसे हो सकता है?

१६७६—भगवान्‌की कथामें श्रद्धा करे, भगवान्‌की प्रतिमाकी पूजा करे, भगवान्‌का स्मरण करे, भगवान्‌के ही चरणकमलोंमें सिर झुकावे, भगवान्‌को ही संसारमें सबसे बड़ा साथी माने, भगवान्‌का ही सेवक बने और भगवान्‌के ही चरणकमलोंमें सम्पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण कर दे। जो पुरुष इस प्रकार भगवान्‌की भक्ति करते हैं वे इस असार संसारके बन्धनसे मुक्त होकर परमपद पाते हैं।

१६७७—तुम परमेश्वर और भोग दोनोंकी सेवा नहीं कर सकते। विषय न बटोरो। कलके लिये चिन्ता न करो। कल अपनी चिन्ता आप करेगा।

१६७८—सदा स्मरण करनेयोग्य तो एक ही वस्तु है। सदा-सर्वदा सर्वत्र श्रीकृष्णके सुन्दर नामके स्मरणमात्रसे ही प्राणिमात्रका कल्याण हो सकता है।

१६७९—रे मनुष्य! तू दीन होकर घर-घर क्यों भटकता है? तेरा पेट तो सेरभर आटेसे ही भर जाता है। भगवान् तो उस समुद्रको भी भोजन पहुँचाते हैं जिसका शरीर चार सौ कोस

लम्बा-चौड़ा है। संसारमें कोई भूखा नहीं रहता। चींटी और हाथी सभीका पेट भगवान् भरते हैं। अरे मूर्ख! तू विश्वास क्यों नहीं करता!

१६८०—शोक, मोह, दुःख, सुख और देहकी उत्पत्ति सब मायाके ही कार्य हैं और यह संसार भी स्वप्नके समान बुद्धिका ही विकार है। इसमें वास्तविकता कुछ भी नहीं है। एक भगवान् ही सत्य हैं।

१६८१—शरीर और मन-बुद्धिको जीता हुआ अपरिग्रही, निराशी मनुष्य शरीरसम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पापको प्राप्त नहीं होता।

१६८२—सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वोंमें फँसे हुए जीवोंमें जो मनुष्य हर्ष-शोकरहित होकर विचरण करता है वही तृप्त है।

१६८३—मैं न राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग चाहता हूँ और न मोक्ष ही चाहता हूँ। मैं दुःखपीडित प्राणियोंके दुःखका नाश चाहता हूँ।

१६८४—मैं परमेश्वरसे आठ सिद्धियोंवाली उत्तम गति या मुक्ति नहीं चाहता, मैं केवल यही चाहता हूँ कि समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणमें स्थित होकर उनके कष्टोंको भोगूँ, जिससे उन्हें कष्ट न हो।

१६८५—लोभ, दीनता, भय और धन आदि किसी भी

कारणसे मैं अपना धर्म नहीं छोड़ सकता—यह मेरा दृढ़ निश्चय है ।

१६८६—धर्मपालनमें बहानेबाजी कभी नहीं करनी चाहिये, मैंने सत्यहीसे सब शस्त्र प्राप्त किये हैं । मैं सत्यसे कभी नहीं डिग सकता ।

१६८७—श्रीहरिके चरणोंकी सेवा मनुष्योंको स्वर्ग, मोक्ष, इस लोककी महान् सम्पत्ति और सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाली है ।

१६८८—भगवान्‌की पूजा छोड़कर जो लोग दूसरेकी पूजा करते हैं, वे महामूर्ख हैं ।

१६८९—'मैं' और 'मेरा' इन दो शब्दोंमें ही सारे जगत्‌के दुःख भरे हैं । जहाँ 'मैं' 'मेरा' नहीं है वहाँ दुःखोंका अत्यन्त अभाव है ।

१६९०—जिस वस्तुके नाशसे बड़ा दुःख होता है उसके प्राप्त होनेसे पूर्व सुख या दुःख कुछ भी नहीं होता । अतएव उसकी प्राप्तिके पूर्वकी अवस्थाको ध्यानमें रखकर मनको दुःखी नहीं करना चाहिये ।

१६९१—मिट्टी कुम्हारसे कहने लगी कि तू मुझे क्या रौंदता है, एक दिन ऐसा होगा जब मैं तुझे रौंदूँगी यानी मरनेपर शरीर मिट्टीमें मिला दूँगी ।

१६९२—विलम्ब न करो, श्रीरामको तुरन्त भज लो, तनरूपी तरकससे श्वासरूपी तीर निकला जा रहा है । फिर पछताना पड़ेगा ।

१६९३—कार्यके सब सांसारिक सम्बन्धोंको हटा दो। इच्छारूपी प्रेतोंको उतार दो। अपने सब कामोंको पवित्र बना दो। आसक्तिके रोगसे अपनेको छुड़ा लो!

१६९४—नियम, धर्म, आचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान तथा और भी करोड़ों ओषधियाँ हैं, किन्तु बिना रामकृपाके भव-रोग नष्ट नहीं होता।

१६९५—परमात्मदेवको जाननेसे सारे बन्धनोंका नाश हो जाता है। क्लेशोंके क्षीण हो जानेसे जन्म-मृत्युका अभाव हो जाता है। उसका ध्यान करनेसे तीनों देहोंका भेदन हो जाता है और आप्तकाम होकर विश्वके ऐश्वर्यको प्राप्त होता है।

१६९६—घोर संसारमें पड़े हुए जीवोंके लिये भगवान् वासुदेव-की भक्तिको छोड़कर मुक्ति पानेका और कोई भी मार्ग नहीं है।

१६९७—भगवान् गोविन्दके नामकीर्त्तनरूप अग्निसे तीनों जन्मोंके पाप जल जाते हैं।

१६९८—जो आनन्द सन्तोषी, निरीह और आत्माराम पुरुषको प्राप्त होता है वह उन लोगोंको कभी नहीं मिलता जो कामनाओंके वशमें होकर इधर-उधर भटका करते हैं। सन्तोषी मनुष्यके लिये संसारमें सर्वत्र सुख-ही-सुख है।

१६९९—जो वस्तु अतिथिको न खिलावे उसे आप भी न खाय। अतिथिकी सेवा करनेसे धन, यश, आयु और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। भोजनके समय आये हुए अभ्यागतकी जाति न पूछे। उसे भोजन करावे।

१७००—जैसे ठोस पहाड़ वायुसे विचलित नहीं होता, वैसे ही विद्वान् निन्दा या स्तुतिसे विचलित नहीं होते।

१७०१—भोग्य वस्तुओंमें वासनाका उदय न होना ही वैराग्यकी अवधि है, चित्तमें अहङ्कारका सर्वथा उदय न होना ही बोधकी अवधि है और लीन हुई वृत्तियोंका पुनः उत्पन्न न होना ही उपरामताकी अवधि है।

१७०२—भगवान्‌का नाम ही दर्पहारी है, वे अभिमानका ही आहार करते हैं। अभिमान करनेसे बड़े-बड़े लोग पतित हो जाते हैं।

१७०३—संसारके विषय-भोग बादलोंमें चमकनेवाली बिजली-के समान चञ्चल हैं। मनुष्योंकी आयु हवासे फटे हुए बादलोंके समान क्षणभङ्गुर है। इसी प्रकार जवानीकी उमङ्ग भी अस्थिर है। अतएव हे बुद्धिमान् पुरुषो! धीरजके साथ चित्तको एकाग्र करके उसे भगवान्‌के ध्यानमें लगा दो।

१७०४—लोटेमें नीचे छेद होनेसे सभी जल गिर पड़ता है, इसी प्रकार साधकके मनमें कामना होनेपर साधनका फल चला जाता है।

१७०५—सत्यता, सद्वचन, सत्कर्म, उदारता, क्षमा आदि लोकहितके कोई-न-कोई कार्य करते रहना चाहिये। ये सब बहुत बड़े सहायक हैं।

१७०६—जिन भगवान् विष्णुके स्मरणसे ही संसारके जन्म-

जरा आदिसे उत्पन्न हुए भय भाग जाते हैं, उन भयहारी भगवान्‌के मेरे मनमें रहते मेरे लिये भय कहाँ है ?

१७०७–उपशान्त और यथार्थ ज्ञानद्वारा मुक्त हुए पुरुषोंका मन शान्त होता है। उसकी वाणी और कर्म शान्त होते हैं।

१७०८–यह शरीर रहे या जाय, जिसकी वृत्ति आनन्दस्वरूप ब्रह्ममें लीन हो गयी है, वह तत्त्ववेत्ता पुरुष फिर इसकी ओर ध्यान नहीं देता।

१७०९–भक्तको अपने लिये तृणसे भी नीचा समझना चाहिये और वृक्षोंसे भी अधिक सहनशील। स्वयं तो कभी मानकी इच्छा करे नहीं, किन्तु दूसरोंको सदा सम्मान प्रदान करते रहना चाहिये। इस प्रकार होकर निरन्तर भगवन्नामोंका ही स्मरण-चिन्तन करते रहना चाहिये।

१७१०—जिसमें सहनशीलता नहीं, वह चाहे कितना भी बड़ा विद्वान्, तपस्वी और पण्डित क्यों न हो, कभी भी भगवत्-कृपाका अधिकारी नहीं बन सकता।

१७११–भगवन्नाममहिमाको अर्थवाद माननेवालेको तो पाप लगता ही है सुननेवालेको भी पाप होता है।

१७१२–भक्तिसे हीन होकर जप, तप, पूजा, पाठ, यज्ञ, दान, अनुष्ठान आदि कैसे भी सत्कर्म क्यों न किये जायँ, सभी व्यर्थ हैं।

१७१३–सबके आगे-पीछे वे ही श्रीहरि हैं। उनके सिवा

प्राणियोंका दूसरा आश्रय हो ही नहीं सकता। प्राणिमात्रके आश्रय वे ही हैं। उनके स्मरणसे सबका कल्याण होगा।

१७१४—करुणामय श्रीहरि सबका भला करते हैं। जो उनकी शरणमें पहुँच जाता है, उसके पाप रहते ही नहीं। रूईके ढेरमें जैसे अग्नि पड़नेसे भस्म हो जाती है उसी प्रकार सारे पाप भस्म हो जाते हैं।

१७१५—बहुत ग्रन्थोंके मायाजालमें मत पड़ना। भगवान् केवल विश्वाससे ही प्राप्त हो सकते हैं। सम्पूर्ण जगत्के वैभवको तृणसमान समझना और निरन्तर भगवन्नाम-सङ्कीर्तनमें लगे रहना। यही वेदशास्त्रोंका सार है।

१७१६—श्रीकृष्ण दयामय हैं। वे दीनोंपर अत्यन्त ही शीघ्र कृपा करते हैं। तुम उनका ही भजन करो, उन्हींकी शरणमें जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा।

१७१७—प्रेम छिपानेसे नहीं छिपता। प्रेमको विज्ञापनकी आवश्यकता नहीं।

१७१८—जिसके मुखसे एक बार भी श्रीकृष्णका नाम निकल जाय वही वैष्णव है। वैष्णवकी यह एक मोटी पहचान है।

१७१९—गृहस्थोंके लिये तीन ही बातें मुख्य हैं—श्रद्धापूर्वक भगवान्की सेवा-पूजा करता रहे, मुखसे सदा श्रीहरिके मधुर नामों-का सङ्कीर्तन करता रहे और अपने द्वारपर जो आ जाय उसकी यथाशक्ति सेवा करे तथा साधु-महात्माओंके चरणोंमें श्रद्धा रक्खे।

१७२०—सत्यसे बढ़कर संसारमें कोई अन्य धर्म नहीं है, और मिथ्याभाषणसे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है, अतः ऐसी दशामें सत्यकी सदा अर्चना करो; उसे कभी मत छोड़ो।

१७२१—सत्यवादी मनुष्य यद्यपि आर्थिक दृष्टिसे दरिद्र है किन्तु वह मनुष्योंका वास्तविक राजा है।

१७२२—प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह जैसा दूसरेको उपदेश करता है वैसा पहले अपनेको बना ले। जिसने अपने मन, इन्द्रियोंको वशमें किया, वह दूसरोंको भी वशमें कर सकता है।

१७२३—कर्म-पथमें प्रभुपर विश्वासकर बढ़ते जाओ। सर्वदा अपनी दृष्टिको उसके शब्दोंपर बद्ध रक्खो तब तुम्हें आशातीत सफलता प्राप्त होगी।

१७२४—अपने शत्रुको प्यार करो। जो तुम्हें शाप दें उन्हें आशीर्वाद दो। जो तुमसे घृणा करें उनके प्रति भलाई करो और उनके लिये भी प्रभुसे शुभ प्रार्थना करो जो तुम्हारे साथ तिरस्कार-पूर्ण व्यवहार करते हों।

१७२५—अच्छे कर्मोंका सम्पादन करो। स्वप्नमय वातावरणमें लीन मत रहो। इस प्रकार करनेसे तुम जीवन, मरण एवं अनन्त विस्तृत कालको एक महान् मधुर सङ्गीतके रूपमें परिवर्तित कर दोगे।

१७२६—शिक्षा प्राप्त करते समय ऐसा ध्यान रक्खो कि मानो तुम्हें सर्वदाके लिये संसारमें जीवित रहना है, किन्तु संसारमें

अपनी आयुका ध्यान करते हुए यह सोचो कि मानो तुम्हें कल ही मृत्युका ग्रास बनना है ।

१७२७—यह कभी मत सोचो कि परमात्मासे रहित तुम केवल अकेले हो । वह तुम्हारे साथ सर्वदा विचरण करता है तथा तुम्हारी भली-बुरी सभी क्रियाओंका द्रष्टा है ।

१७२८—जो मनुष्य विपत्तिमें भी ईश्वर-कृपाका अनुभव करता है वह कभी मृत्युके अधीन नहीं होता ।

१७२९—सज्जनोंको दूसरोंके दोषोंके भीतर भी धर्मका आभास दृष्टिगोचर होता है ।

१७३०—जो मनुष्य सज्जनताके व्यवहारमें कुशल है उसके लिये कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है ।

१७३१—प्रिय क्या है ? करना और न कहना । अप्रिय क्या है ? कहना और न करना ।

१७३२—पूर्ण महात्मा और सज्जनोंके संगका नाम ही सत्सङ्ग है, इसे आदमी निष्ठाके साथ करे तो वह लोहेसे सोना बन जाय ।

१७३३—जो प्रज्वलित क्रोधरूपी मार्गच्युत रथको रोक सकता है, वही कुशल सारथी है । केवल हाथसे लगाम पकड़े रहनेमें कोई चतुराई नहीं ।

१७३४—प्रेम सदा सहिष्णु और मधुर है, प्रेममें ईर्ष्या, आत्मश्लाघा, गर्व, अशिष्ट आचरण, स्वार्थ, क्रोध, अपकार और अधर्म नहीं होते ।

१७३५—मनकी तरङ्गोंको रोकनेमें बड़ा सुख है, इनके विना रोके मनुष्य ऐसे बह जाता है, जैसे हवाके झोंकेमें विना पतवारकी नाव।

१७३६—संसारके सुख क्षणभङ्गुर हैं, किसी भी ऐसे सुखीका उदाहरण नहीं मिल सकता जो मृत्युको न प्राप्त हुआ हो।

१७३७—जिस मनुष्यकी अच्छे कर्मके लिये निन्दा होती है वह बड़ा भाग्यवान् है किन्तु जो अपने भले कर्मोंके बदलेमें धन्यवाद या किसी फलकी आशा करता है वह महा अभागा है, क्योंकि वह सुकर्मोंका मूल्य चाहता है। जिस मनुष्यकी उसने भलाई की हो, उसे सुखी देखनेकी प्रसन्नता ही उसके लिये पूर्ण पुरस्कार है।

१७३८—बालकको जैसे रमणसुख नहीं समझाया जा सकता, वैसे ही मायामुग्ध, विषयासक्त, संसारी जीवको ब्रह्मानन्द नहीं समझाया जा सकता।

१७३९—जिस हृदयमें प्रभुप्रेमको स्थान नहीं वह मसानके तुल्य है, अथवा श्वास लेनेवाली लोहारकी प्राणरहित धौंकनीके समान है।

१७४०—हर्षके साथ शोक और भय इस प्रकार लगे हैं जिस प्रकार प्रकाशके सङ्ग छाया। सच्चा सुखी वही है जिसकी दृष्टिमें दोनों समान हैं।

१७४१—जो समय भगवान्के स्मरण-चिन्तनमें लगता है वही सार्थक है।

१७४२—विषयोंमें काकविष्टाके सदृश असह्य बुद्धि होनी चाहिये ।

१७४३—संसार जितना चञ्चल लक्ष्मीके पीछे पागल है, उसके शतांश परिश्रममें ही वह परमार्थका अचल धन प्राप्त कर सकता है ।

१७४४—शत्रुसे भी प्रेम रक्खो । दान अथवा शुभ कर्ममें फलकी कामना न करो, तभी प्रभु प्रसन्न होंगे ।

१७४५—प्रत्येक मनुष्यके साथ भलाई करो । किसीके साथ बुराई मत करो । यदि तुम्हारे साथ कोई बुराई करता है तो उसकी जिम्मेवारी उसपर है । तुम अपना मन कलुषित कर कर्तव्यसे न हटो ।

१७४६—हठका सामना हितसे करो तो सफलता प्राप्त होगी । तलवारकी तीक्ष्ण धार मुलायम रेशमको नहीं काट सकती ।

१७४७—सांसारिक क्रियाओंका सम्पादन करते समय दो बातें सदा स्मरण रक्खो; प्रथम ईश्वर और द्वितीय मृत्यु !

१७४८—जीवनमें निम्नलिखित तीन बातोंका सदा स्मरण रक्खो—(१) क्रोधमें क्षमा, (२) अभावमें उदारता तथा (३) अधिकारमें सहिष्णुता ।

१७४९—जो काम, मद और क्रोधसे छूटकर ईश्वरके चरणोंमें लगे हुए हैं वे सारे संसारको ईश्वरमय देखते हैं, इसलिये वे किससे क्रोध करें ?

१७५०—जिसने मनरूपी मतवाले हाथीको वशमें कर लिया, वही सर्वश्रेष्ठ पुरुष है ।

१७५१–जैसे अग्नि जाने या बिना जाने लकड़ीको जला देती है वैसे ही जाने या बिना जाने लिया हुआ भगवान् हरिका नाम मनुष्यके पापको भस्म कर देता है।

१७५२–जो पहलेके पापोंका विचार न करके बराबर पाप ही करता रहता है वह खोटी बुद्धिवाला मनुष्य यमदूतोंद्वारा नरकमें घसीटा जाता है।

१७५३–नम्रताके तीन लक्षण हैं—(१) कड़वी बातका मीठा जवाब देना, (२) क्रोधके भड़कनेपर चुप रहना और (३) दण्डके भागीको दण्ड देते समय चित्तको कोमल रखना।

१७५४–जिनका जीवन-आधार ईश्वर नहीं वे मर हैं और जिनका जीवनाधार ईश्वर है वे अमर हैं।

१७५५–उस दुष्ट और नीचके साथ भी, जो तुम्हें दुःख देता है, तुम भलाई करो क्योंकि सच्चा आनन्द दूसरोंको सुख देनेमें ही है।

१७५६–जिसने अहंकार, क्रोध, कपट और लालचको जीत लिया वही सच्चा शूरवीर है।

१७५७–सच्चे धर्मात्माकी बोली धीमी होती है क्योंकि अच्छा पुरुष कठिनताको जानता है। वह अवश्य ही सम्हलकर बोलेगा।

१७५८–संसार क्षणभंगुर है, एक पलका भी भरोसा नहीं, इसलिये जो भलाई करनी हो, तुरन्त कर डालो।

१७५९–मायामरीचिकाके समान भासनेवाले इस जगत्में केवल भगवान्का भजन ही सार है।

१७६०—घमण्ड या अहंकार मूर्खताकी निशानी है। जिस जगह शरीरमें खूनकी कमी होती है वहाँ वायु भर जानेसे शरीर फूल जाता है, ऐसे ही जहाँ बुद्धिका घाटा है, वहाँ अहंकार भर जानेसे मन फूल उठता है।

१७६१—मर्यादासे चलो। कभी सीमाके बाहर मत जाओ। अपनी हानि करनेवालेको जहाँतक बन पड़े, क्षमा करो।

१७६२—चार प्रकारके मनुष्य मालिकको विशेष प्रिय हैं—(१) आसक्तिरहित विद्वान्, (२) तत्त्वज्ञानी महात्मा, (३) नम्र धनी और (४) मालिककी महिमा जाननेवाला त्यागी।

१७६३—मन पाँच प्रकारके होते हैं—(१) मुर्दा मन जैसे नास्तिकोंका, (२) रोगी मन जैसे पापियोंका, (३) अचेत मन जैसे पेटभरोंका, (४) उलटा मन जैसे ब्याजकी कमाई खानेवालोंका और (५) स्वस्थ मन जैसे संतोंका।

१७६४—शुभ कर्म करनेका स्वभाव ऐसा धन है जिसे न शत्रु छीन सकता है और न चोर चुरा सकता है।

१७६५—क्रोध, दुष्कर्म, कृपणता तथा असत्यको जीतनेके शस्त्र क्रमसे क्षमा, सुकर्म, उदारता और सत्य हैं।

१७६६—जो ज्ञानकी बड़ी-बड़ी बातें बघारते हैं पर जिनके हृदयमें दया नहीं है वे जरूर नरकमें जायँगे।

१७६७—वे मनुष्य धन्य हैं जो दयाशील हैं, क्योंकि परमपिताकी दयाके वे ही भागी हैं।

१७६८—शूरवीर वही है जिसका हृदय हरिसे भरपूर है ।

१७६९—जो दूसरेके अवगुणकी चर्चा करता है वह अपना अवगुण प्रकट करता है ।

१७७०—मनुष्यको चाहिये कि अपना मित्र आप ही बने, बाहरी मित्रकी खोजमें न भटके ।

१७७१—जो सच्चे हृदयके साधु होते हैं वे मनको पीसकर चाले हुए मैदेकी भाँति कर देते हैं, जिसमें मान या गर्वकी किर-किरी नहीं रह जाती ।

१७७२—भक्त वह है जो अपने मनको पृथ्वीके समान सहिष्णु और परोपकारी बना ले, जिसमें लोग खाद डालते हैं परन्तु वह अन्न ही देती है ।

१७७३—जिस बातसे समाजको सुख पहुँचे, उससे यदि तुम्हें कुछ दुःख भी पहुँचे तो नाराज मत हो ।

१७७४—जो मूर्ख अपनी मूर्खताको जानता है वह धीरे-धीरे सीख सकता है परन्तु जो मूर्ख अपनेको बुद्धिमान् समझता है उसका रोग असाध्य है ।

१७७५—जो बाहरसे बहुत सुन्दर है पर जिसका मन मैला है उससे तो कौआ अच्छा है जो बाहर-भीतर एक रंग है ।

१७७६—संसारमें तीन बातें बड़ी उपकार करनेवाली हैं परन्तु धारण करनेमें कठिन हैं—(१) निर्धनतामें उदारता, (२) एकान्तमें इन्द्रियनिग्रह और (३) भयमें सत्य ।

१७७७—अच्छे गुणोंको सीखनेमें तुम्हारी यह धारणा होनी चाहिये कि तुम्हारा अभिप्राय अपने सुधारका है न कि लोकमें बड़ाई पानेका ।

१७७८—जिसने इन्द्रियोंके वशमें रहकर केवल कुटुम्बके भरण-पोषणमें ही अपना जीवन बिता दिया है, वह अन्तमें प्राप्त होनेवाली महान् पीड़ासे नष्टबुद्धि होकर मृत्युको प्राप्त होता है ।

१७७९—प्रभु-विरहकी अग्निमें जलनेवालेके आँसू इस प्रकार निकलते हैं, जैसे जलती हुई गीली लकड़ीके दूसरी ओर फेन निकलता है ।

१७८०—दान, पश्चात्ताप, सन्तोष, संयम, दीनता, सत्य और दया—ये सात वैकुण्ठके द्वार हैं ।

१७८१—जो पासमें धन रहनेपर भी अपने भाइयोंकी दीन अवस्थापर तरस नहीं खाता और सहायता नहीं करता, उसके हृदयमें प्रभुका प्रेम कैसे हो सकता है ।

१७८२—जिसकी हार हुई है वह सदा असन्तुष्ट रहता है, सुखी वही है जो हार-जीतकी परवा नहीं करता ।

१७८३—साधक यदि ईश्वरमें ही शान्ति प्राप्त न कर सका तो समझना चाहिये कि उसमें सच्चा वैराग्य नहीं है ।

१७८४—मनुष्योंसे मैत्री और पशुओंके प्रति दया रक्खो, यदि उनमें विष भी हो तो भी उनकी उत्पत्ति तो एक ही दयालुताके अमृतभण्डारसे किसी प्रयोजनको लेकर ही हुई है । अतएव उन्हें सुख पहुँचानेका यत्न करो ।

१७८५—प्रत्येक मनुष्य अपने मतको सच्चा और अपने बच्चेको सुन्दर समझता है इससे सिद्ध है कि सबके मतों और सबके बच्चोंका समान आदर करना और समान प्रेम रखना अपना कर्तव्य है।

१७८६—जो कोई तुम्हें कोसे, तुम उसे कभी मत कोसो, स्मरण रक्खो कि क्रोधीके शापसे आशिष्का फल मिलता है।

१७८७—जिसने कभी दुःख नहीं उठाया, वह सबसे बड़ा दुखिया है और जिसने कभी पीर नहीं सही, उसपर दैव बेपीर ही है।

१७८८—संन्यासीको सदा ज्ञाननिष्ठ रहकर आत्माके बन्धन और मोक्षका विचार करना चाहिये। इन्द्रियोंके चञ्चल होनेमें ही आत्माका बन्धन है और इन्द्रियोंके वशमें होनेसे आत्माका मोक्ष है।

१७८९—उभड़ती हुई जवानीमें प्रमोद करते हुए जवानको, खेलते हुए बालकको, रोग-शोकसे पीड़ित वृद्धको और माताके उदरमें रहनेवाले गर्भको काल एक-सा ही ग्रस लेता है, यह जगत् ऐसा ही है।

१७९०—महापुरुषके लक्षण ये हैं—(१) दूसरेकी निन्दाको झूठ समझना और उसकी कहीं चर्चा भी न करना, (२) अपनी प्रशंसाका न सुहाना और दूसरेकी प्रशंसाको सुनकर प्रसन्न होना, (३) दूसरोंको सुख पहुँचानेको अपने सुखसे भी बढ़कर समझना, (४) छोटोंसे कोमलता और दया तथा बड़ोंसे आदरके साथ वर्ताव करना और (५) खेलमें भी किसीके साथ धोखाधड़ी न करना।

१७९१—शत्रुको प्यार करो, अपराधीको क्षमा करो, मालिकके लिये दान दो, अपने लिये कुछ भी न चाहो ।

१७९२—पानी ऊपर नहीं ठहरता, वह नीचे ही रहता है, जो नीचा (नम्र) होता है वही भरपेट पानी पी सकता है, ऊँचा तो प्यासा ही मरता है ।

१७९३—दूसरोंका भला करनेवाला ही भला होता है ।

१७९४—मित्रका मिलनेपर आदर करो, पीठ पीछे प्रशंसा करो और आवश्यकताके समय सहायता करो ।

१७९५—बदला लेनेका ख्याल छोड़कर क्षमा करना, अन्धकारसे प्रकाशमें आना और नरककी जगह सदेह ही स्वर्गका सुख भोगना है ।

१७९६—अपने तो हारना भला है, जगत्को जीतने दे । जो हारता है वह हरिसे मिलता है और जो जीतता है वह यमके द्वारपर जाता है ।

१७९७—संसारके सुख क्षणभङ्गुर हैं । तबतक किसीको सुखी नहीं समझना चाहिये जबतक कि वह सुखी अवस्थामें मर न जाय ।

१७९८—रामकी शरण हो जाओ, यही भवसागरसे पार उतरनेके लिये जहाज है, इसको छोड़कर संसारसे उद्धार पानेका और कोई उपाय नहीं है ।

१७९९—जिसका अन्तःकरण कामनाओंसे भरा रहता है उसमें ये पाँच बातें नहीं रह सकतीं—(१) ईश्वरका भय, (२)

ईश्वरकी आशा, (३) ईश्वरमें प्रेम, (४) ईश्वरसे लज्जा और (५) ईश्वरसे मित्रता ।

१८००—किसीको दुःख न देना तथा कोई तुम्हारे विरुद्ध बर्ताव करे, तब भी उसका बदला लेनेकी इच्छा न करके उस बातको गुप्त रखना, यही सहनशीलता है ।

१८०१—जो बन्धनमें हेतु नहीं होता वही कर्म है और जो मुक्तिमें हेतु है वही विद्या है । इसके सिवा दूसरे कर्म परिश्रममात्र तथा दूसरी विद्याएँ शिल्पनिपुणतामात्र हैं ।

१८०२—दरिद्री वह है जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है और धनी वह है जिसके पास सन्तोषरूपी धन है ।

१८०३—जगत्‌में जितने प्रकारके भाव या धारणाएँ हैं, उन सबका जो सूक्ष्म सार निष्कर्ष है, उसीका नाम ईश्वर है ।

१८०४—जो निराधार और नीच-से-नीच मनुष्यकी सेवा करता है वह प्रभुकी सेवा करता है ।

१८०५—बुद्धिमान् मनुष्य और किसी बातमें जल्दी नहीं करता, वरं कभी-कभी चुप रह जाता है, परन्तु जब धर्मका काम आ पड़ता है, तब वह उसे तुरन्त कर डालता है ।

१८०६—बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि सदा बड़ोंका संग करे, इससे अनेक सुख मिलते हैं, जैसे जो पक्षी बड़े वृक्षके आश्रित रहते हैं, उन्हें खानेको फल भी खूब मिलते हैं और वे छायासे भी सदा सुखी रहते हैं ।

१८०७—संशयात्मा, चञ्चलचित्त, अविश्वासी, डरपोक, चिन्तातुर और इन्द्रियोंके गुलामको कभी स्वप्नमें भी सुख नहीं मिल सकता ।

१८०८—भक्त वह है जो अपना मन उस पृथ्वीके समान बना ले, जिसमें लोग विष्ठा (खाद) डालते हैं पर वह अन्न देती है।

१८०९—मनुष्यको चाहिये कि वह अपना काम देखे, दूसरेके काममें नुक्ताचीनी न करे ।

१८१०—क्रोध दिलानेपर भी चुप रहना बुद्धिमानी और महत्त्व है । सारी शक्ति जीभके वेगको रोकनेमें है तथा इससे भी बढ़कर महत्त्व मनके वेगको रोकनेमें है ।

१८११—जो मनुष्य आत्मनिरीक्षण न करके अपनेको सदा निर्दोष मानता है, अपने दोषोंकी ओर देखता ही नहीं, वह अहंकारी ही बना रह जाता है ।

१८१२—सांसारिक कामनाओंको छोड़ देनेपर ही तुम शोक और दुःखसे छूट सकोगे तथा तभी तुम्हें सच्चा सुख और शान्ति मिलेगी ।

१८१३—जो बाहरसे खूब साफ है और अन्दरसे मैला है, वह नरकके दरवाजेकी चाभी हाथमें लिये हुए है ।

१८१४—जो तुम्हारे लिये काँटे बोवे, तुम उसके लिये फूल बोओ, तुम्हारे भीतर ही तुम्हारा मन भयानक वैरी है, उसके घातोंसे बचनेके लिये सदा सावधान रहो ।

१८१५—जो किसीको दुःखमें देखकर उसपर दया नहीं करता, वह मालिकके कोपका पात्र होता है।

१८१६—जैसे हम द्वेषसे जगत्को नरक-सदृश बना देते हैं, ऐसे ही प्रेमसे उसे स्वर्गके समान भी बना सकते हैं।

१८१७—दुष्टको संसार सुन्दर मालूम होता है, पर वही साधुको भयानक लगता है।

१८१८—जैसे वृक्षकी जड़को सींचनेसे उसकी सभी शाखाएँ और पत्ते आप-से-आप तृप्त हो जाते हैं, वैसे ही एक परमात्माकी भक्तिसे सारे देवी-देवता आप ही प्रसन्न हो जाते हैं।

१८१९—मालिकपर भरोसा रक्खो परन्तु ऊँटके पैर बाँधकर मत रक्खो। यानी उद्योग मत छोड़ो।

१८२०—दीर्घसूत्रताका स्वभाव समयकी चोरी है, यदि मनुष्य आजका काम कलपर न टाले तो वह बहुत-सी बुराइयोंसे बच सकता है।

१८२१—सदा याद रक्खो कि कोई भी मनुष्य तुम्हारा भला या बुरा नहीं कर सकता, त्रिभुवनपति ईश्वर ही सब कुछ करते हैं, उन्हींपर विश्वास रक्खो।

१८२२—नम्रताको कोई नहीं मार सकता, कपासकी रूई तलवारसे नहीं कटती।

१८२३—जो प्रत्येक काममें मालिककी प्रेरणा समझता है वह निष्कामी और सच्चा भक्त है।

१८२४—बुरे आचरणवाले लम्बे जीवनसे शुभ आचारका थोड़ा जीवन हजार दरजे अच्छा है ।

१८२५—जैसे मरे हुए मनुष्यसे कोई ईर्ष्या नहीं करता, ऐसे ही जीते हुएसे भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उस मनुष्यको और ईर्ष्या करनेवालेको एक-सा ही मरना है ।

१८२६—शत्रु-मित्र और पुत्र-बन्धुओंमें विरोध या मेलके लिये चेष्टा मत कर । यदि शीघ्र ही भगवत्की प्राप्ति चाहता है तो सबमें सर्वत्र समचित्तवाला हो जा ।

१८२७—दान और सत्कर्म करो पर फलकी कामनासे नहीं, इससे प्रभु तुमपर प्रसन्न होगा ।

१८२८—दीन बनते रहो, दुःख भगवान् ही भेजते हैं ऐसा मानकर दुःखका स्वागत करो, तिरस्कारमें आनन्द मानो, सुख-आराम और रक्षाका आधार एक भगवान्को ही बना लो ।

१८२९—सत्य-प्रेमसे जिसका अन्तःकरण भरा हुआ हो, ऐसा मनुष्य किसी कलामें निपुण न होनेपर भी बहुत बड़ी देश-सेवा कर सकता है ।

१८३०—हे चित्त ! अब शान्त हो, इन्द्रियोंके सुखके लिये विषयोंकी खोजमें कठिन परिश्रम मत कर । आभ्यन्तरिक शान्तिकी चेष्टा कर, जिससे दुःखोंका नाश होकर कल्याण हो, तरंगके समान चञ्चल चालको छोड़ दे; संसारी पदार्थोंमें सुख मत मान, ये सभी नाशवान् और असार हैं । बस, तू अपने आत्मामें ही सुख मान ।

१८३१–शान्तस्वभाव रहो और कोई तुमपर दोष लगावे तब भी मनको मत बिगाड़ो।

१८३२–जिसने अपना सारा हृदय प्रभुको अर्पण कर दिया है और अपने शरीरको लोकसेवामें लगा रक्खा है वही सच्चा त्यागी, दाता और ज्ञानी है।

१८३३–चार प्रकारके मनुष्य होते हैं—(१) मक्खीचूस–न आप खाय न दूसरेको दे, (२) कंजूस—आप तो खाय पर दूसरेको न दे, (३) उदार—आप भी खाय और दूसरेको भी दे और (४) दाता—आप न खाय और दूसरेको दे। यदि सब लोग दाता नहीं बन सकते तो उदार तो बनना ही चाहिये।

१८३४–जो विपत्तिसे डरते हैं, वह उन्हींपर ज्यादा आती है; जो मनको दृढ़ रखते हैं और आनेवाले हर एक सुख-दुःखको भगवान्‌का दान समझकर प्रसन्नतासे रहते हैं, उनके लिये विपत्ति कोई चीज़ नहीं।

१८३५–अभी सोकर क्या करते हो, उठो, जागो और परमात्माको याद करो। एक दिन तो लम्बे पैर पसारकर सभीको सोना है।

१८३६–वही पूत सपूत है जो मन लगाकर भगवान्‌की भक्ति करता है, जिससे जरा-मरणसे छूटकर अजर-अमर हो जाता है।

१८३७–जिनके काम, क्रोध, मद, लोभ आदि छः विकार

नहीं होते, जो कुमार्गको जानते ही नहीं और जो सदा ब्रह्ममें लीन हैं वे ही साधु हैं।

१८३८—जो पुरुष मनरूपी तीर्थके ज्ञानरूपी सरोवरमें ईश्वरके ध्यानरूपी जलसे स्नान करके रागद्वेषरूपी मलको धो डालता है, वह संसारसागरको विना प्रयास तर जाता है।

१८३९—इन्द्रियोंको रोकने, रागद्वेषका नाश करने और अहिंसाव्रतके पालन करनेसे मनुष्य मोक्षपदकी प्राप्तिके योग्य होता है।

१८४०—जो विषयोंका प्रेमी है वही बँधा हुआ है। विषयोंका त्याग ही मुक्ति है। यह शरीर ही घोर नरक है और तृष्णाका नाश ही सच्चा स्वर्ग है।

१८४१—सच्चा दार्शनिक सदा संयमसे रहता है और शारीरिक सुखोंसे दूर भागता है, वह कदापि अपनेको विषय-सुखोंमें मग्न नहीं होने देता।

१८४२—सदा प्रसन्न रहो। सब दुःखी जीवोंको सुखी करते रहोगे तो तुम्हारी प्रसन्नता सदा बनी रहेगी।

१८४३—हर्षके साथ शोक और भय वैसे ही लगे रहते हैं, जैसे प्रकाशके साथ छाया रहती है। जिसके मनमें दोनों समान हैं वही सच्चा सुखी है।

१८४४—सभी वैरियोंके साथ भलाई और नम्रताका बर्ताव करनेसे सुख होता है परन्तु मन-वैरीके साथ नम्रता करनेसे दुःख उत्पन्न होता है। अतएव भयानक वैरी मनको मारो।

१८४५–अनन्त, अजर, अमर, अविनाशी, शान्तिघन परमात्माका ध्यान करो। जो उस ब्रह्मानन्दकी जरा-सी भी झाँकी देख पाते हैं उनकी दृष्टिमें संसारके राजाओंका आनन्द तुच्छ हो जाता है।

१८४६–महापुरुष, उनका मत और उनका जीवन साधकोंके लिये दर्पण है, पथप्रदर्शक है, मार्ग है और द्वार है जिससे वे नित्य जीवनक्षेत्रमें प्रवेश कर सकते हैं।

१८४७–जाग्रत् मन उसीको कहते हैं जिसमें ईश्वरको छोड़कर दूसरे किसी विषयकी इच्छा या दूसरा कोई उद्देश्य न हो। जिसका मन परम प्रभु परमात्माकी सेवामें डूबा रह सकता है उसके लिये दूसरे मित्रकी जरूरत ही क्या है।

१८४८–विपत्तियोंके समूह बाढ़की लहरोंके समान आया करते हैं, धीर पुरुष उनको चट्टानकी तरह सँभालता रहे तो वह धीरे-धीरे आप ही चले जाते हैं।

१८४९–सत्य और दयायुक्त धर्म तथा तपोयुक्त विद्या भी भगवान्‌की भक्तिसे रहित मनुष्यके मनको सम्पूर्णरूपसे पवित्र नहीं कर सकते।

१८५०–जो मनुष्य दूसरेके ऐश्वर्यको नहीं सह सकता, जिसकी बुद्धि कलुषित है, जो परधन हरण करता है, जो प्राणियोंकी हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो कठोर वचन कहता है और जिसका मन निर्मल नहीं है, उसके हृदयमें भगवान् निवास नहीं करते।

१८५१-चौदह बातोंका त्याग करना चाहिये। हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्य, स्वच्छन्दता, द्वेष, भय, मोह, मद्यपान, रात्रिभ्रमण, व्यसन, जूआ, कुसंगति और आलस्य।

१८५२-सब धर्मोका मूल दया है, परन्तु दयाके पूर्ण विकासके लिये क्षमा, नम्रता, शीलता, पवित्रता, संयम, सन्तोष, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन दस धर्मोका सेवन करना चाहिये।

१८५३-यदि मैं अपना सारा धन कंगालोंको खिला दूँ तथा अपनी देह भी उन्हें जलानेके लिये दे दूँ पर प्रेम न रक्खूँ तो कोई लाभ नहीं, प्रेममें ही धैर्य और कृपा है। प्रेम डाह नहीं करता, प्रेम अपनी न तो बड़ाई करता है और न फूलता ही है।

१८५४-भगवान्‌को प्राप्त करनेके दो ही उपाय सुने गये हैं। श्रीभगवान्‌का नाम लेना और भूखेको कुछ देना।

१८५५-विचारशील और ब्रह्मज्ञानीको संसार नहीं लुभा सकता, मछलीके उछलनेसे समुद्र नहीं उमड़ा करता।

१८५६-ईश्वर-प्रेमका परिचय वाणीसे नहीं मिलता, कार्य चाहिये। केवल स्तुति-प्रार्थनासे नहीं, परन्तु अनेक दुःख सहकर, सब प्रकारके स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर ही इस प्रेमका परिचय देना पड़ता है।

१८५७-अन्दरके रोगकी पाँच दवाइयाँ हैं—(१) सत्संग, (२) धर्म-शास्त्रका अध्ययन, (३) अल्प आहार-विहार,

(४) सुबह-शामकी उपासना और (५) जो कुछ करना हो सो एकाग्रताके साथ सारी शक्ति लगाकर करनेकी पद्धति।

१८५८—अपने गुप्त-से-गुप्त विचारोंको भी पवित्र रक्खो क्योंकि उनमें भी अद्भुत शक्ति भरी है। तुम्हारे मुखसे निकलते हुए शब्दोंमें उन विचारोंके भावका पता लग जाता है और तुम्हारे भविष्यके निर्माणकर्ता भी वे गुप्त विचार ही होते हैं।

१८५९—माता-पिताकी आज्ञा पूर्णरूपसे मानो। २—सब सम्बन्धियोंसे प्रेम रक्खो। ३—अपने मुखको ज्ञान-दर्पणमें देखो, यदि सुन्दर है तो ऐसा काम मत करो जिससे उसपर धब्बा लगे और यदि कुरूप है तो सत्य, सेवा और परोपकार करके सुन्दर बनाओ। ४—जो तुम्हारे साथ बुराई करे उसको तो बालूपर लिखो, और जो भलाई करे उसको पत्थरपर।

१८६०—जो पुरुष ईश्वरके तत्त्वसे अनभिज्ञ लोगोंको अमृतरूप ज्ञानका प्रकाश दिखलाकर सन्मार्गपर ले आता है उस दयालु दीनबन्धु पुरुषपर सभी देवगण कृपा करते हैं।

१८६१—विषयसुख घने बादलोंमें चमकनेवाली बिजलीकी भाँति चञ्चल है, हमारी आयु हवासे बिखरे हुए बादलोंके सदृश क्षणस्थायी है और यह जवानीकी लालसा भी शीघ्र ही नष्ट हो जायगी, इसलिये बुद्धिमान्‌को चाहिये कि वह मनको धैर्यके साथ एकाग्र करके परमात्माकी प्राप्तिके लिये लगावे।

१८६२—प्राणघात, चोरी और व्यभिचार, ये तीन शारीरिक पाप हैं; असत्य, निन्दा, कटुभाषण, और व्यर्थभाषण ये चार वाणीके

पाप हैं और परधनकी इच्छा, दूसरेके अनिष्टकी इच्छा तथा सत्य, अहिंसा, दया, दान आदिमें अश्रद्धा, ये तीन मानसिक पाप हैं।

१८६३—विवेक हो तो बस्तीमें रहनेमें भी धर्म है और जंगलमें रहनेमें भी; विवेक बिना दोनोंमें ही अधर्म है।

१८६४—जो दयालु हैं, उन्हींपर भगवान्‌की दया होगी; जिसका मन शुद्ध है, उन्हींको भगवान्‌के दर्शन होंगे; जो धर्मके लिये सताये जाते हैं, स्वर्गका राज्य उन्हींका होगा और जो धर्मके पिपासु हैं, उन्हींकी तृप्ति होगी।

१८६५—जब तुम सांसारिक कामनाओंको छोड़ दोगे, तभी शोक और दुःखसे छूटकर सच्चे सुख और शान्तिको पा सकोगे।

१८६६—हे जीव ! यदि तू भगवान्‌के इच्छानुसार चलना चाहता है तो उसकी शरणके सिवा और कोई उपाय नहीं है। जो मनुष्य अपने इच्छानुसार अपनेको चलाना चाहता है वह स्वयं अपनेको धोखा देता है।

१८६७—जिसमें जितना प्रेम है, वह उतना ही ईश्वरके समीप पहुँचा हुआ है—उतने अंशमें वह प्रभुमय बन गया है, क्योंकि प्रभु स्वयं अपार प्रेममय हैं।

१८६८—जिसके हृदयमें प्रेम पूर्ण होता है, प्रेमके देवता स्वयं ईश्वर ही उसका योगक्षेम चलाया करते हैं।

१८६९—जगत्‌में छोटे ही सुखी हैं, ग्रहण चन्द्रमा और

सूर्यको ही लगता है, तारे तो आकाशमें सुखसे रहते हैं, इसीलिये साधु दीनता चाहते हैं और दुष्ट मान चाहते हैं।

१८७०—जिनके हृदयमें दया और धर्म वसते हैं, जो अमृतवाणी बोलते हैं और जिनके नेत्र नम्रतावश नीचे रहते हैं असलमें वे ही ऊँचे हैं।

१८७१—हे मेरी आत्माके प्रियतम स्वामी! मैं तुमको ही चाहता हूँ, मुझे और कोई भी वस्तु प्यारी न लगने दो, जो वस्तुएँ मुझे तुमसे दूर हटाती हों, वे मुझे जहर-सी लगने लगें। एकमात्र तुम्हारी इच्छा ही मेरे लिये मधुर हो,—तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा बन जाय!

१८७२—जो सत्पुरुष हैं, जो किसी भी प्राणीकी किसी प्रकार हिंसा नहीं करते, किसीका जी नहीं दुखाते, जिन्होंने भगवान्के भावसे पूर्ण होकर सारी कामनाएँ छोड़ दी हैं वे ही भगवान्के भक्त हैं।

१८७३—परलोकमें माता, पिता, पुत्र, स्त्री और कोई भी सम्बन्धी सहायताके लिये खड़ा नहीं होता, वहाँ तो धर्म ही सहायक होगा।

१८७४—जो मनुष्य क्रोधरहित होता है, प्राणियोंकी मन, वाणी, शरीरसे हिंसा नहीं करता, किसीसे ईर्ष्या नहीं करता और निष्कपट व्यवहार करता है वह अमर है।

१८७५—परमेश्वरकी इच्छा यह है कि तुम पवित्र बनो, व्यभिचारसे बचे रहो, तुममेंसे हर एक पवित्रता और आदरके साथ

भगवान्‌की प्रार्थना करना जाने, तुम सब आपसमें प्रेम करो क्योंकि परमेश्वर प्रेमकी ही शिक्षा देता है ।

१८७६—गृहस्थको पाँच अशुभ प्रवृत्तियोंसे बचना चाहिये—(१) हिंसा, (२) चोरी, (३) व्यभिचार, (४) असत्य और (५) व्यसन ।

१८७७—शम, दम, व्रत और नियमपरायण विश्वहितैषी मुमुक्षु मनुष्य निष्कपटभावसे जो कुछ भी क्रिया करता है, उसीसे उसके गुण बढ़ते हैं ।

१८७८—दिनभरकी बुरी भावनाओं और बुरे कर्मोंसे बचकर रहना रातभरके भजनसे बढ़कर है ।

१८७९—विरले ही मनुष्य अपनी इच्छा और मनके विरुद्ध वर्ताव कर सकते हैं । ऐसा उपदेश तो बहुत लोग दिया करते हैं, परन्तु इसका पालन बहुत थोड़े कर सकते हैं ।

१८८०—संसार क्षण-क्षणमें नाश हो रहा है, इस मिथ्या नाम-रूपके ढेरको देखकर भूलना नहीं चाहिये ।

१८८१—वह वीर नहीं है जिसने शरीरको चकनाचूर कर डाला, बलिहारी है उस वीरको जो मनको जीतकर खड़ा है ।

१८८२—जिन्होंने वासनाओंको पददलित किया है, वे ही मुक्त हुए हैं, जिन्होंने ईर्ष्याका त्याग किया है उन्हींको प्रेमकी प्राप्ति हुई है और जिन्होंने धैर्य धारण किया है वे ही शुभ-परिणामको प्राप्त कर सके हैं ।

१८८३—प्रेमभक्तिमें गद्गद होकर एकान्तहृदयसे जिस तरह परमात्माकी प्रार्थना करते हो, प्रार्थनाके बाद उसी तरह कठिन-से-कठिन कर्त्तव्यके पालनमें लग जाओ और उसे पूरा करो, नहीं तो तुम्हारी पूजा व्यर्थ है।

१८८४—जो मनुष्य दूसरेके किसी कर्मको देखकर उसकी निन्दा करता है उसको स्वयं वह कर्म कदापि नहीं करना चाहिये। जो दूसरोंके दोष देखकर स्वयं वैसे ही दोष करता है, वह जगत्में हँसीका पात्र होता है।

१८८५—गुरुजनोंकी सेवा, भक्ति, सब वस्तुओंका भगवान्के प्रति समर्पण, साधु-भक्तोंका सङ्ग, ईश्वरकी आराधना, भगवान्की कथामें श्रद्धा, भगवान्के गुण-कर्मोंका कीर्तन, भगवान्के चरण-कमलका ध्यान, भगवान्की मूर्तियोंके दर्शन और उनका पूजन एवं 'भगवान् हरि सब प्राणियोंमें स्थित हैं' ऐसा जानकर सब प्राणियोंमें समदृष्टि रखनेसे भगवान्में प्रीति होती है।

१८८६—सावधान! लोगोंको दिखानेके लिये धर्मका आचरण न करो, यदि ऐसा करोगे तो भगवान्से तुम कुछ भी फल नहीं पाओगे।

१८८७—पापी मनुष्य तभीतक सुख भोगता है, जबतक कि उसका पाप पक नहीं जाता। पापके परिपक्व होते ही उसको दुःखोंका शिकार बनना पड़ता है।

१८८८—विषय-सुखोंके त्यागद्वारा जो भय और राग-द्वेषसे छूट गया है वही त्यागी पुरुष संयमी कहलाता है।

१८८९—जो हरि-जैसे हीरेको छोड़कर दूसरेकी आशा करते हैं, वे मनुष्य यमलोकमें ही जायँगे ।

१८९०—सम्पत्तिकी ओर न ताककर सारी सम्पत्तिके स्वामी परमात्माकी ओर दृष्टि रखनेका नाम ही कृतज्ञता है ।

१८९१—दीन बना रह, दुःखोंके प्रेरक भगवान् ही हैं, ऐसा समझकर दुःखोंसे भेंटकर, तिरस्कारमें आनन्द मान, सुख-आराम और रक्षाके लिये भगवान्‌पर ही निर्भर कर ।

१८९२—जो मेरे परमपिता परमात्माकी इच्छाके अनुसार जीवन बिता रहा है, वही मेरा भाई है, वही मेरी बहिन और वही मेरी माता है ।

१८९३—जो राग-द्वेषसे रहित है, वैराग्यवान् है, जो इच्छा-शून्य है वही साधु है ।

१८९४—जगत्‌में दो ही परमानन्दमें रहते हैं—(१) अबोध शिशु और (२) भगवत्-प्राप्त गुणातीत मुक्त पुरुष ।

१८९५—जिस परमात्मासे सब प्राणी उत्पन्न हुए हैं और जिसमें सब लीन हो जाते हैं तथा जो सब प्राणियोंका पालन करता है उस वेदप्रतिपादित ज्ञेय ब्रह्मको जो नहीं जानते वे बार-बार जन्म-मरणको प्राप्त होते हैं ।

१८९६—जबतक धन पैदा करनेकी ताकत रहती है, तभीतक घरके लोग प्रसन्न रहते हैं, जब बुढ़ापेमें शरीर जर्जर हो जाता है, तब कोई बात भी नहीं पूछता ।

१८९७—उन्नतिके सात साधन हैं—श्रद्धालु होना, पापकर्मसे लजाना, लोकापवादसे डरना, विद्वान् होना, सत्कर्म करनेमें उत्साह रखना, स्मृति जाग्रत् रखना और प्रज्ञावान् बनना ।

१८९८—मन, वाणी और शरीरसे सम्पूर्ण संयमसे रहनेका नाम ही ब्रह्मचर्य है ।

१८९९—संसारसे अलग रहना ही उत्तम है, यहाँके सम्बन्धोंकी जड़में दुःख और कष्ट भरा है । जिसने अपना जीवन चुपचाप बिता दिया, सच तो यह है कि उसीका जीवन उत्तम बीता ।

१९००—जबतक मनुष्य अपने आत्माको नहीं पहचानता—यह नहीं जानता कि मैं वास्तवमें क्या हूँ, कौन हूँ और संसारमें किसलिये आया हूँ, तबतक उसका सारी दुनियापर विजय प्राप्त कर लेना भी व्यर्थ ही है ।

१९०१—आनन्द और अन्दरकी शान्ति प्रभुमय जीवनके फल हैं, परन्तु जो जीव हृदयसे भगवान्‌के शरण नहीं होता, उसको इनकी प्राप्ति नहीं होती ।

१९०२—जिसके मनमें कभी क्रोध नहीं होता और जिसके हृदयमें रात-दिन राम बसते हैं, वह भक्त भगवान्‌के समान ही है ।

१९०३—प्राणिमात्रको न सताना ही उत्तम दान है, कामनाका त्याग ही उत्तम तप है, वासनाओंको जीतनेमें ही वीरता है और सत्य ही समदर्शन है ।

१९०४—देवता, अतिथि, आश्रित, पितृगण और अपने-आप, इन पाँचोंको जो कुछ भी नहीं देता वह जीता ही मर चुका है ।

१९०५—जीवन, कमलपर जलकी बूँदके समान अत्यन्त चञ्चल है, जल्दी चेतो और भवसागरसे पार होनेके लिये क्षणभरके लिये साधु-सङ्ग करो, यही भवसमुद्रकी नाव है।

१९०६—आत्मज्ञानका सम्पादन करना और आत्मकेन्द्रमें स्थिर रहना मनुष्यमात्रका प्रधान कर्तव्य है।

१९०७—जो हृदय कोमल, दीन और भगवान्‌के विरहसे व्याकुल है, उसीमें प्रभुका निवास है।

१९०८—शत्रुसे शत्रुता करना वैरको दूना बढ़ाना है, वैर दूर करनेका उपाय तो प्रेम है।

१९०९—मांसाहारी मनुष्य प्रत्यक्ष ही राक्षस है, उसका संग नहीं करना चाहिये, उससे भजनमें भंग पड़ता है।

१९१०—जिनको जगना है, अभी जग जाओ, यही जागनेकी वेला है। जब पाँव पसारके सो जाओगे, तो फिर क्या जागोगे ?

१९११—भगवत्प्राप्तिके लाभके सामने समग्र संसार एक मच्छरकी पाँख जितना भी नहीं है, अतः ऐसी तुच्छ वस्तुसे वैराग्य होना कौन बड़ी बात है ?

१९१२—जिसका मन भगवान्‌में लगा रहता है, भगवान् उनकी सम्हाल रखते हैं।

१९१३—किसी भी दुखियाका दिल मत दुखाओ, दुखाओगे तो उसे बड़ा दुःख होगा, वह यदि दुःखमें रोकर पुकार उठेगा तो तुम्हारा सारा गुड़ मिट्टी हो जायगा।

१९१४—धन, जन, यौवनका गर्व न करो; काल एक निमेषमें ही इन सबका हरण कर लेता है । इस मायामय प्रपञ्चको छोड़कर शीघ्र ही ब्रह्मपदका आश्रय ग्रहण करो ।

१९१५—अपने गरीब कुटुम्बी भाई और दूसरे दुखी लोगोंकी यथासाध्य सहायता करना, भूले हुएको मार्ग बतलाना और भूखेको अपनी रोटीमेंसे आधा हिस्सा बाँटकर फिर खाना । सब लोग एक ही परमात्माकी सन्तान होनेके कारण ऐसा करना मनुष्यका धर्म है ।

१९१६—वैराग्य तीन तरहका होता है—(१) अपवित्र वस्तुओंका त्याग करना साधारण वैराग्य है, (२) आवश्यकतासे अधिक प्राप्त हुई पवित्र वस्तुओंका भी त्याग करना विशेष वैराग्य है और (३) ईश्वरसे दूर हटानेवाली वस्तुमात्रका त्याग करना ऋषियोंका वैराग्य है ।

१९१७—ऊँची जाति होनेका घमण्ड कोई न करो, साहेबके दरबारमें तो एक भक्ति ही प्यारी है ।

१९१८—विपत्तिमें धैर्य, वैभवमें दया और सङ्कटमें सहनशीलता—ये महात्माओंके लक्षण हैं ।

१९१९—जहाँ दया है वहीं धर्म है, जहाँ लोभ है वहीं पाप है; जहाँ क्रोध है वहीं काल है और जहाँ क्षमा है वहीं 'आप' (श्रीभगवान्) हैं ।

१९२०—यदि भगवान् मेरे हृदयसे चले जायँ तो मैं रोगसे छूटना नहीं चाहता, भगवान् रहें तो मैं सदा-सर्वदा ही रोगी रहना पसन्द करता हूँ । मुझे शरीर नहीं, पर भगवान् प्यारे हैं ।

१९२१—काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा और दम्भसे रहित, दयालु, सत्यवादी और सबका हित करनेवाले ही वैष्णव हैं ।

१९२२—जगत्में केवल सत्संग ही भवसागरसे पार करनेकी नौका है, उसीका आश्रय ग्रहण करो ।

१९२३—जीवोंपर दया भगवान्‌के नाममें रुचि और सच्चे भक्तोंकी सेवा, यही तीन परम धन हैं ।

१९२४—जैसे आगमें घी पड़ता रहनेसे आग नहीं बूझती, बल्कि अधिक भड़कती है, इसी प्रकार भोगोंकी प्राप्तिसे भोगोंकी इच्छा नहीं मिटती ।

१९२५—जिसका मन वशमें है, वही जगद्गुरु है । जैसे कच्ची छतमें जल भरता है, वैसे ही अज्ञानीके मनमें कामनाएँ जमा होती हैं ।

१९२६—पहली डुबकीमें रत्न नहीं मिला, इससे रत्नाकरको रत्नहीन मत समझो । धीरजके साथ साधन करते रहो, समयपर भगवत्कृपा होगी ही ।

१९२७—ईश्वरको पाना चाहते हो तो मनको पवित्र करो, भक्तिसे भगवान्‌के नामका गान करो, नम्र बनो, साधुओंका चरणरज सिर चढ़ाओ, कुतर्क न करो, परनिन्दामें शामिल मत हो और यथाशक्ति परोपकार करो !

१९२८—जबतक कामना है, तबतक सुखके दर्शन स्वप्नमें

भी नहीं होंगे। कामना श्रीराम-भजन बिना मिट नहीं सकती। अतएव सुखी होना हो तो श्रीरामका भजन करो।

१९२९—दसों दिशाओंमें अशान्तिकी भयानक आग भड़क उठी है, इससे बचना हो तो भागकर संतोंकी शीतल संगतिमें चले जाओ।

१९३०—जो कपटरहित है, निर्भय है और बाहर-भीतरसे एक-सा है, वही सच्चा साधु है, चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी।

१९३१—संसारका मोह छोड़कर ईश्वरकी वस्तु ईश्वरके ही अर्पण कर देनी चाहिये। संसारके भोगसुखोंसे तो केवल दुःख और मृत्युकी ही प्राप्ति होती है।

१९३२—धन जिनका गुलाम है वे बड़भागी हैं और जो धनके गुलाम हैं वे बड़े अभागे हैं।

१९३३—जो दूसरेके दुःखसे दुखी है वह भक्त रामको प्यारा है, ऐसे भक्तको भगवान् एक पलके लिये भी अपनेसे अलग नहीं करते।

१९३४—जिस मनुष्यको परमात्माका यथार्थ ज्ञान होता है, वह कर्मसे नहीं बँधता, परन्तु जिसको परमात्माका यथार्थ ज्ञान नहीं होता वह संसारमें बार-बार जन्मता-मरता है।

१९३५—श्रद्धा ही पुरुषके लिये श्रेष्ठ धन है, धर्म ही स्थायी सुख देनेवाला है, सत्य ही परम स्वादु पदार्थ है और प्रज्ञासे जीवन बितानेवाला ही संसारमें श्रेष्ठ व्यक्ति है।

१९३६—जो धनपर भरोसा करते हैं उनके लिये परमेश्वरके राज्यमें प्रवेश करना ऊँटका सूईके छेदसे निकल जानेसे भी अधिक कठिन है ।

१९३७—जैसा कुटुम्बसे प्रेम है, वैसा ही यदि हरिसे हो जाय, उस दासका मोक्षमार्गमें जाते कोई पल्ला नहीं पकड़ सकता ।

१९३८—संसार दुःखका सागर है और श्रीराम सुखका सागर । अतः संसारके निकम्मे कामोंको छोड़कर सुखसागरकी ओर जाना चाहिये ।

१९३९—श्रद्धाका आश्रय लिये बिना धर्मके मार्गपर नहीं चला जा सकता । चाहे और कुछ भी न हो, परन्तु परमात्मापर श्रद्धा जरूर होनी चाहिये । श्रद्धासे सारे पाप भस्म हो जाते हैं ।

१९४०—वैराग्य और ज्ञान पर्यायवाची शब्द हैं । किसी भी परिस्थितिमें, सर्वदा और सर्वत्र ही वैराग्यका आचरण किया जा सकता है । विवाहित स्त्री-पुरुष भी वैराग्यका सम्पादन कर सकते हैं ।

१९४१—(१) मुक्ति कब होती है ? जब तमाम जंजाल छूट जाते हैं । (२) निर्भरता किसे कहते हैं ? जब सब कुछ ईश्वरपर छोड़ दिया जाय । (३) अधीनता किसे कहते हैं ? जब प्रत्येक कार्य ईश्वरके अर्पण हो ।

१९४२—'जो ईश्वरीय आज्ञाको सुनते और उसीके अनुसार चलते हैं उन्हींका जीवन धन्य है ।' इस परम सत्य वाक्यके अनुसार हमारा जीवन जितना प्रकाशित होगा, उतनी ही हमारे ज्ञान और सुखकी वृद्धि होगी ।

१९४३—दूसरोंकी निन्दामें अपना पाण्डित्य दिखलाना, अपने कार्योंमें उद्योग न करना और गुणज्ञोंके साथ द्वेष रखना, ये तीन विपत्तिके मार्ग हैं।

१९४४—जिसके उच्चकुलमें जन्म होनेका, कठोर तपका, ऊँचे वर्णका, सत्-कर्मोंका, आश्रम और जातिका कोई भी अहंकार नहीं है, ऐसा पुरुष भगवान्‌को प्रिय होता है।

१९४५—जिस अर्थके लिये तुम दिन-रात चिन्तित रहते हो, वह अनर्थमय है, उससे रत्तीभर भी सुखकी आशा नहीं है। धनी मनुष्यको सगे पुत्रसे भी डर लगा करता है।

१९४६—घरमें रोशनी करते ही जैसे युगान्तरका अँधेरा एक ही साथ नाश हो जाता है, वैसे ही भगवान्‌की तनिक-सी कृपा-दृष्टिसे हजारों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।

१९४७—इन्द्रियाँ ही मनुष्यकी शत्रु हैं। आशा मिट जानेपर यह पृथ्वी ही स्वर्ग है। विषयोंमें प्रेम ही बन्धन है। सदा सन्तुष्ट ही बड़ा धनी है। मनको जय करनेवाला ही संसारमें विजयी है।

१९४८—सारे सद्गुण विनयके अधीन हैं, विनय नम्रतासे आती है। अतएव जो पुरुष नम्र है वही सद्गुण-सम्पन्न होता है।

१९४९—दूसरेकी उन्नति करनेमें स्वाभाविक ही तुम्हारी भी उन्नति हुआ करती है। दूसरोंकी भलाई करनेमें तुम अपने अहंकार और लौकिक हितको जितना ही भूलोगे, उतना ही उसका परिणाम अधिक शुभ होगा।

१९५०—पतंग विना ही समझे आगमें कूदकर जल मरता है । मछली भी अज्ञानसे वंसीका मांस खाकर बँध जाती है परन्तु हमलोग तो समझ-बूझकर भी विपत्तियोंसे भरे हुए विषयोंको नहीं छोड़ते । मोहकी यही महिमा है ।

१९५१—अपनी इच्छा छोड़कर प्रभुके शरण हो जाओ, और उसकी कृपाकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त दीन वनो ।

१९५२—जो ईश्वर-प्रेमी हो गया वह संसार-प्रेमी नहीं हो सकता । संसार-प्रेमी जबतक संसारकी असारता और दुःख-रूपताका अनुभव नहीं करता, तबतक वह ईश्वर-प्रेमी नहीं हो सकता ।

१९५३—निद्रा, स्वाद और वाद-विवादको छोड़कर दिन-रात श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये ।

१९५४—तीनों लोकोंमें इन चार वातोंसे वढ़कर मनुष्यको प्रसन्न करनेवाली और कोई वात नहीं है—दान, मैत्री, सव जीवों-पर दया और मीठे वचन ।

१९५५—सरलता विना कोई भी मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता, अशुद्ध जीव धर्म नहीं कर सकता, धर्म विना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष विना सुखकी प्राप्ति असम्भव है ।

१९५६—जिस प्रकार वृक्ष जल सींचनेवाले और फल-फूल तोड़नेवाले दोनोंके साथ समान वर्ताव करता है, उसी प्रकार सज्जन भी अपनी भलाई करनेवाले और बुराई करनेवाले दोनोंके साथ एक-सा व्यवहार करते हैं ।

१९५७—भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेसे सभी पाप जल जाते हैं, इसमें मनुष्यकी अचल श्रद्धा होनी चाहिये ।

१९५८—जिस नन्द-नन्दनने यमुनाके तटपर सब गोपोंको बचानेके लिये कालीयका मथन किया, वह क्या शरण चाहनेवालों-को शरण नहीं देगा ?

१९५९—जो लोग काम, क्रोध, मद और लोभमें रत हैं तथा दुःखरूप गृहमें आसक्त हैं, वे भवकूपमें पड़े हुए मूढ़ मनुष्य भगवान्‌को कैसे जान सकते हैं ? इन मायाके विकारोंसे छूटना हो तो सब कामनाओंको छोड़ यह विचारकर ही भगवान्‌का भजन करो कि श्रीहरिकी मायाके दोष-गुण हरिका भजन किये बिना नष्ट नहीं हो सकते ।

१९६०—जिसको भगवत्‌की प्राप्ति हो गयी है, वह पुरुष ईश्वर-भजनको छोड़कर दूसरोंका मार्गदर्शक या उपदेशक नहीं बनता, क्योंकि उसकी दृष्टिमें एक प्रभुके सिवा कोई भी दूसरा रक्षक, शिक्षक या मार्गदर्शक है ही नहीं ।

१९६१—शरीरको छोड़नेके समय आत्माकी जिस वस्तुमें आसक्ति होती है वह उसीमें प्रवेश करता है । उस समय यदि उसके हृदयमें भगवान्‌का प्रकाश न होकर जगत्‌का प्रकाश होता है, तो उसको अँधेरे जेलखानेमें जाना ही पड़ता है ।

१९६२—जब 'मैं' था तब 'हरि' नहीं थे, अब 'हरि' हैं 'मैं' नहीं रहा । प्रेमकी गली बहुत ही सँकड़ी है, इसमें दो नहीं समा सकते ।

१९६३—मनुष्य सोता हो या बैठा हो, मृत्यु उसे खोजती ही रहती है और मौका पाते ही उसका नाश कर डालती है। फिर तू निश्चिन्त कैसे बैठा है ?

१९६४—जिस मनुष्यने जन्म लेकर अपना और दूसरेका कल्याण किया और तत्त्वज्ञानको प्राप्त कर लिया उसीका जीवन सार्थक है।

१९६५—जिसको 'मैं कौन हूँ' का पूरा ज्ञान हो गया तथा जो प्रभुके प्रेमरसमें पग गया है वही सच्चा साधु है।

१९६६—जो सत्यपर कायम है वह परमेश्वरकी ज्योतिके समीप जाता है और जो बुराई करता है वह उस ज्योतिका शत्रु है। अतएव बुराई छोड़ो और सचपर डटे रहो।

१९६७—जो मनुष्य अपने क्रोधको अपने ही ऊपर झेल लेता है वह दूसरोंके क्रोधसे बच जाता है।

१९६८—दुनिया और दुनियाकी सब चीजें नाश होनेवाली हैं, पता नहीं रातको ही सब नष्ट हो जायँ। इसलिये इनमें दिलको फँसाना कभी उचित नहीं।

१९६९—जैसे जलके बिना नाव करोड़ यत्न करनेपर नहीं चल सकती, इसी प्रकार सहज सन्तोष बिना कभी शान्ति नहीं मिलती।

१९७०—जो झूठ नहीं बोलता, परनिन्दा नहीं करता,

सद्गुणोंको धारण करता है, सबसे निर्वैर है, सबमें समभावसे आत्माको देखता है और हरिके चरणोंका प्रेमी है वही साधु है।

१९७१—देवतालोग जबतक उन्हें अमृत नहीं मिला, तबतक न तो अमूल्य रत्नोंको पाकर ही तृप्त हुए और न भयानक जहरसे ही डरे, समुद्र मथनेमें लगे ही रहे। इसी प्रकार धीर पुरुष अपने उद्देश्यको सिद्ध किये बिना विश्राम नहीं लेते।

१९७२—सच्चा भक्त जगत्में रहता हुआ भी राग-द्वेष छोड़कर कर्तव्य-कर्म करता है और कर्मके फलस्वरूप जो नफा-नुकसान या सुख-दुःख मिलता है उसे ईश्वरकी गोदमें अर्पण कर देता है। वह तो रात-दिन केवल भक्तिके लिये ही ईश्वरसे प्रार्थना करता है। निष्कामकर्म इसीको कहते हैं।

१९७३—जो मनुष्य संसारकी तरफ वासनाकी नजरसे देखा करता है, उसके अन्तःकरणमेंसे ईश्वर-प्रेम, दीनता और वैराग्यकी ज्योति निकल जाती है।

१९७४—सपना सच्चा न होनेपर भी स्वप्नकी अवस्थामें जैसे स्वप्नसम्बन्धी दुःख नहीं मिटता, वैसे ही संसार सत्य न होनेपर भी विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषका अज्ञान-अवस्थामें जन्म-मरण नहीं छूटता। अतएव अज्ञानके नाशका प्रयत्न करना चाहिये।

१९७५—सद्गुणोंको पानेके लिये प्रयत्न करो, बाहरी आडम्बरोंसे क्या लाभ है ? बिना दूधकी गाय केवल गलेमें घण्टा बाँधनेसे ही नहीं बिकती।

१९७६—यदि भगवान् विष्णुका परमपद शीघ्र पाना चाहते हो तो शत्रु-मित्र, पुत्र-बन्धु आदिके बखेड़ोंसे चित्त हटाकर सर्वत्र समबुद्धि करो।

१९७७—पुत्र और परिवार आदि विषयोंमें आसक्त मनुष्योंपर मृत्यु उसी प्रकार आक्रमण करती है जैसे रातके समय बाढ़ आकर गाँवोंमें सोये हुए लोगोंको बहा ले जाती है। जब मृत्यु आ जाती है, तब उसे पुत्र, पिता या बन्धु कोई नहीं बचा सकते। शीलवान् पण्डित इस बातको समझकर अपने लिये निर्वाणका रास्ता साफ़ करते हैं।

१९७८—जिसके संगसे तुम्हारे अन्दर अहंकार पैदा होता हो, उसका संग छोड़ दो और जो मनुष्य तुम्हारे दोषोंको दिखलावे उसकी खुशामद करो।

१९७९—जो पुरुष वनमें या घरमें कहीं भी रहकर विश्वके स्वामी, विश्वके हितैषी, विश्वके धारण-पोषण करनेवाले परमात्मामें मन लगाता है वही पुण्यात्मा है और वही कृतार्थ है।

१९८०—दया बिना जीवन यथार्थ जीवन नहीं है, वह जीते ही मरण है। इसलिये अपने हृदयमें सब ओरसे दया-प्रेमका प्रवाह बहने दो, इससे तुम्हें दिव्य आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी। क्योंकि ईश्वर ही प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है।

१९८१—जबतक मनमें काम, क्रोध, मद और लोभकी खान बनी हुई है तबतक पण्डित और मूर्ख एक-से ही हैं।

१९८२—श्रीरामके शरणागत हो जाओ, यही भवसागरकी नौका है, संसारसे तरनेका और कोई उपाय नहीं है।

१९८३—जो मनुष्य ईश्वरीय वाणीकी मधुरता चाखे बिना ही इस लोकसे चले जाते हैं वे बेचारे शान्ति और कल्याणसे वञ्चित ही रह जाते हैं। लोगोंके साथ सद्भावसे बर्तना, प्रभु-प्रेरित पुरुषोत्तमकी सेवा करना और आज्ञामें रहना तथा प्रभुके ध्यान-स्मरणमें पवित्रतासे जीवन बिताना, यही हमारा यथार्थ कर्तव्य है।

१९८४—झूठ बोलनेसे यज्ञका फल नष्ट हो जाता है। गर्व करनेसे तपका नाश होता है। ब्राह्मणकी निन्दा करनेसे आयु घटती है और किसीको दिया हुआ दान बतला देनेसे वह निष्फल हो जाता है।

१९८५—जब शान्त और सत्त्वगुणी होकर चित्त आत्मामें लग जाता है तब धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति आप ही हो जाती है और जब वही शरीर तथा घर आदि मिथ्या पदार्थोंमें लगकर प्रबल रजोगुणी और विषयोंका अनुरागी बन जाता है तब अधर्म, अज्ञान, विषय-लोलुपता और अनैश्वरता छा जाती है।

१९८६—जो परस्त्रीको बुरी दृष्टिसे देखता है, वह अपने सिर मानसिक व्यभिचारका पाप चढ़ाता है।

१९८७—सत्संगके बिना भगवान्‌का रहस्य सुननेको नहीं मिलता, उसके सुने बिना मोह दूर नहीं होता और मोहका नाश हुए बिना भगवान्‌के चरणोंमें दृढ़ अनुराग नहीं होता।

१९८८—जो परमात्मा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करते हैं, जो विश्वके ईश्वर हैं, सातों समुद्र जिनकी आज्ञामें रहते हुए पृथ्वीको डुबो नहीं देते, उन वेद और उपनिषदोंद्वारा प्रतिपादित सब जगत्के साक्षी और सर्वज्ञ प्रभुको धन और जवानीमें मतवाले मूर्खलोग नहीं मानते।

१९८९—स्वामीपनमें नम्रता, गुणोंमें प्रेम, हर्षमें सावधानता, मन्त्रमें गुप्तता, शास्त्रोंमें सुबुद्धि, धन होनेपर उदारता, साधुओंका सम्मान, दुष्टोंसे विमुखता, पापोंसे भय, दुःखमें कष्टसहिष्णुता, ये सब कल्याण चाहनेवाले महात्माओंके गुण हैं।

१९९०—उपवास, अल्प भोजन, आजीविकाका नियम, रसत्याग, सर्दी-गर्मीका समभावसे सहन करना और स्थिर आसनसे रहना—यह छः प्रकारका बाह्य तप है, और प्रायश्चित्त, ध्यान, सेवा, विनय, शरीरोत्सर्ग और स्वाध्याय—यह छः प्रकारका आभ्यन्तर तप है।

१९९१—अगर कोई बोलना जाने तो बोली बड़ी ही अनमोल चीज़ है। पहले हृदयके तराजूपर तौलकर ही बोलनेके लिये मुँह खोलना चाहिये।

१९९२—मनुष्य जितना ही मनकी वासनाओंका आदेश पालन करता है, उतना ही अधिक रोगी, दुःखी और असन्तोषी बनता है।

१९९३—जब तुम्हारी ईश्वरकी ओर अनन्य दृष्टि हो जायगी तब तुरन्त ही प्रभुके साथ तुम्हारा मिलन होगा और जब

तुम अपने तुच्छ स्वार्थों तथा सांसारिक पदार्थोंकी ओर देखोगे तब तुरन्त ही भगवान्‌से तुम्हारा वियोग हो जायगा।

१९९४—सच्चा मित्र वह है जो दर्पणके समान तुम्हारे दोषोंको यथार्थरूपसे तुम्हें दिखा देता है। जो तुम्हारे अवगुणोंको गुण बतलाता है वह तो खुशामदी है, मित्र नहीं!

१९९५—उठो, आलस्य मत करो, सच्चे धर्मका आचरण करो, धर्मका आचरण करनेवाला ही लोक-परलोकमें सुखी रहता है। बुरे मार्गमें भूलकर भी मत जाओ।

१९९६—प्रेम सदा ही सहनशील और मधुर है, प्रेम ईर्ष्या नहीं करता, आत्मश्लाघा नहीं करता, गर्व नहीं करता, दुष्ट आचरण नहीं करता, स्वार्थकी चेष्टा नहीं करता, शीघ्र क्रोध नहीं करता, बुरा नहीं मानता, अधर्ममें सुखी नहीं होता और सदा सत्यके साथ आनन्द करता है।

१९९७—सारे छल-कपट छोड़कर श्रीरामसे प्रेम करो, अरे, जो स्वामी सारा शरीर देख चुका है, उससे छिपाना क्या है?

१९९८—इस असार संसारके उलट-फेरके फेरमें न पड़कर सर्वत्र समताका पवित्र भाव हृदयमें रक्खो; सर्व भूत-प्राणियोंमें समता रखना ही भगवान्‌की सबसे बड़ी भक्ति है।

१९९९—भगवान्‌की शरण होना और उनके दर्शनके लिये हृदयसे प्रार्थना करना साधकका परम कर्तव्य है। जिसको ईश्वरका साक्षात् हो चुका है, उसके लिये तो आशा या याचनाकी कोई वस्तु ही नहीं रह जाती।

२०००—सांसारिक विषयोंमें उपरामता, ईश्वरकी आज्ञाका पालन और ईश्वरकी इच्छासे जो कुछ हो रहा है, उसीमें प्रसन्न रहना, यही सच्ची भक्तिके लक्षण हैं।

२००१—हाथ और मनको काममें लगे रहने दे, परन्तु अपने हृदयको तो केवल भगवान्‌में ही रख, भगवान् आत्मा हैं। आत्मामें निवास कर, आत्मामें कर्म कर, आत्मामें प्रार्थना कर, सब कुछ आत्मामें ही कर, तू भी आत्मा ही है, भगवान्‌की मूर्ति ही है।

२००२—तुम अपनी प्रत्येक वासनाको जीत सकते हो, क्योंकि तुम उसी अनन्त परमात्माके ही अंश हो, जिसकी शक्तिका सामना कोई नहीं कर सकता।

२००३—दूसरे किसीमें भी ममता न रहकर एक भगवान्‌में जो अनन्य ममता होती है, उसीको प्रेम कहते हैं। इसी प्रेमको भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव और नारद आदिने भक्ति बतलाया है।

२००४—सद्विचारोंके परायण होना ईश्वरकी कृपाका चिह्न है। भगवत्कृपा विना किसीका परम कल्याण नहीं हो सकता।

२००५—सत्कर्म करनेवालोंकी देवता भी सहायता करते हैं और असत्-मार्गपर चलनेवालेका साथ सगा भाई भी छोड़ देता है।

२००६—इस संसारमें दो ही अमूल्य रत्न हैं, एक भगवान् और दूसरा संत। इन दोनोंका कोई मोल-तोल नहीं हो सकता।

२००७—विरागकी प्राप्तिसे ही मनुष्य विरक्त होता है, विरक्त होनेपर ज्ञान होता है तभी उसका जन्मक्षय होता है, तभी उसे

ब्रह्मचर्यका फल मिलता है, तब उसका कर्तव्य समाप्त हो जाता है फिर उसे यहाँ आकर जन्म नहीं लेना पड़ता ।

२००८—विषय-सुखोंके त्यागद्वारा जिन्होंने भय और राग-द्वेषको छोड़ दिया है, ऐसे त्यागी पुरुष ही निर्ग्रन्थ कहलाते हैं ।

२००९—सूर्यकी किरणें सब जगह समान पड़नेपर भी जल और दर्पणमें प्रकाश अधिक दिखायी देता है वैसे ही भगवान्‌का विकास सबके हृदयोंमें समानरूपसे होनेपर भी साधुके हृदयमें उसका विशेष प्रकाश होता है ।

२०१०—बैठे-बैठे अँधेरेमें क्या टटोल रहे हो ? प्रकाशकी खोज करो । वह प्रकाश है भगवत्-प्रेम, भगवत्-निष्ठा ।

२०११—एक बार अपने अन्दर प्रेमकी आग जाने दो, फिर तुम्हारे जिस दोषके साथ उसका स्पर्श होगा, वही दोष जल जायगा । तुम्हारा 'तूपन' जल जायगा, अहंकार नाश हो जायगा, 'मैं' 'मेरा' आदि भाव भस्म हो जायँगे और जब नया भाव सुलग उठेगा तब उसके तापमें प्रेमसे इतना महान् सुख मिलेगा कि उसके सामने विश्वका सारा सुख तुच्छ हो जायगा ।

२०१२- किसीके दोष न देखा करो । इससे आँख और मन दोनों मलिन होते हैं और जगत्‌में पापका बोझा बढ़ता है । इसलिये जो कुछ देखो अच्छाईकी ओर लक्ष्य रक्खो । अच्छाई ही सत्य और जीवन है । भगवान्‌को छोड़कर कोई भी पूर्ण नहीं है यह न भूलो ।

२०१३—अपनी पूज्यता अपनी आँखोंसे न देखे, अपनी

कीर्ति अपने कानोंसे न सुने। ऐसा न करे जिससे लोग यह पहचान सकें कि यह अमुक है। बृहस्पतिके समान सर्वज्ञता मिली हुई हो तो भी महिमाके डरसे अज्ञानियोंके साथ ही रहे। अपने बुद्धिगौरवको छिपावे, अपना महत्त्व विसार दे। इस प्रकार अमानी होकर रहे।

२०१४—जिसके मनमें भगवान्‌के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया, उसे संसारका और कोई-सा भी सुख अच्छा नहीं लगता। जो एक बार बढ़िया मिश्रीका स्वाद पा चुका, वह क्या कभी राब खाना चाहेगा?

२०१५—अहा! वह कैसा सुखी होगा जो प्रभुको सदा समीप और अनुकूल देख पाता है।

२०१६—सच्चा एकान्त कब हो? जब भगवान्‌से शून्य जीवनसे परे हो जाओ।

२०१७—संसार क्या है? जो ईश्वरसे तुम्हें परे रक्खे।

२०१८—अधम कौन है? जो ईश्वरके मार्गका अनुसरण नहीं करता।

२०१९—किसका संग किया जाय? जिसमें 'तू-मैं' का भाव नहीं?

२०२०—निन्द्य जीवनसे वैर बाँधकर ईश्वरके मित्र बनो। ईश्वरसे वैर बाँधकर निन्द्य जीवनसे प्रीति न करना।

२०२१—एक छोटे-से जीवको भी अपनेसे नीचा मत समझो।

बाहरी दुनियाको देखो भी तो ऊपर-ही-ऊपरसे । भीतरी आँखोंको तो उस प्रभुकी ओर ही लगाये रहो ।

२०२२—आगे-पीछेका विचार छोड़ो । जो हो गया है और जो होगा उसकी चिन्ता न करो । वर्तमानमें प्रभुके भजनमें लगे रहो ।

२०२३—यदि तुमने ईश्वरको पहचान लिया है तो तुम्हारे लिये एक वही मित्र काफी है । यदि तुमने उसको नहीं पहचाना है तो उसे पहचाननेवालोंसे मित्रता करो ।

२०२४—हृदय कब सुखी होता है ? जब हृदयमें प्रभु आ विराजते हैं ।

२०२५—जिसपर ईश्वरकी कृपा होती है, सांसारिक सुखोंका उसीको अभाव रहता है ।

२०२६—संतोंका एक ही लक्ष्य होता है—भगवान् । किसी भी हालतमें उनका मन भगवान्से नहीं हटता ।

२०२७—अपने निर्वाहके लिये जो चिन्ता अथवा प्रपञ्च नहीं करता वही सच्चा विश्वासी है ।

२०२८—अहंभावको छोड़कर विपत्तिको भी सम्पत्ति मानना ही सच्चा सन्तोष है ।

२०२९—उच्च और पवित्र भावना एक ऐसी अद्भुत वस्तु है जो मनुष्यके मनमें आकर भी स्थिर नहीं रहती । उसका तो मनुष्यपर बहुत प्रेम है, किन्तु मनुष्यकी उसपर प्रीति हो तब न ?

२०३०—इस नाशवान् संसारमें जो आसक्त नहीं है वही सच्चा ऋषि है। तल्लीन होकर ईश्वरके गुण गाना, मत्त होकर प्रभुके संगीत सुनना और प्रभुकी अधीनता मानकर काम करना ही ऋषि-का धर्म है।

२०३१—जो ईश्वरमें लीन रहता है वही सच्चा संत है।

२०३२—अपना भार दूसरेपर न लादना और बिना संकोच दान करना बड़ी दिलेरीका काम है।

२०३३—ईश्वरमें निमग्न होना भावावेशमें अपनेपनका नाश करना है।

२०३४—वास्तविक साक्षात्कारमें एक ईश्वरमें ही स्थिति होने-के कारण अहंता और ममताका नाश हो जाता है। ऐसी हालतमें तुम अपने शरीर और जीवको नहीं देख पाओगे।

२०३५—सारी रात बिना नींदके प्रभुका स्मरण करनेवाला और दूसरे यात्रियोंके उठनेके पहले ही मंजिल तय कर लेनेवाला मनुष्य ही सच्चा प्रभु-भक्त और सत्पुरुष है।

२०३६—जहाँ ईश्वरकी चर्चा होती है, वही स्वर्ग है।

२०३७—जहाँ विषयोंकी चर्चा होती है, वही नरक है।

२०३८—हे प्रभो! तेरे सिवा मेरा कोई नहीं, तू मेरा है तो फिर सब कुछ मेरा है।

२०३९—हे प्रभो! मैं तो तुम्हींको चाहता हूँ और कुछ भी नहीं। तुम महान्-से-महान् हो, परम कृपालु हो; मुझे तुम्हींसे

शान्ति मिलेगी। मुझे अपनेसे ज़रा भी अलग न करना, मेरे सामने अपने सिवा और किसीको न आने देना।

२०४०—ईश्वरकी कृपाके बिना मनुष्यके प्रयत्नसे कुछ भी नहीं मिल सकता।

२०४१—ईश्वरके गुणोंका अपनेमें आरोप करनेवाला योगी अधम है।

२०४२—अन्तःकरणमें एक भण्डार है, उस भण्डारमें एक रत्न है, वह रत्न है प्रभु-प्रेम। इस रत्नको पानेवाला ही ऋषि है।

२०४३—मनुष्य ज्यों-ज्यों संसारी परदोंसे ढकता जाता है त्यों-ही-त्यों वह प्रभुकी पूजा और साधना छोड़ता जाता है।

२०४४—जो ईश्वरको जानता है वह ईश्वरको छोड़कर और किसी बातकी चर्चा ही नहीं करता।

२०४५—संत वही है जिसे कोई भी विषय मलिन नहीं कर पाता, बल्कि मलिनता भी जिसे छूकर पवित्र हो जाती है।

२०४६—ये सब वाद-विवाद, शब्दाडम्बर और अहंता-ममता तो परदेके बाहरकी बातें हैं। परदेके भीतर तो नीरवता, स्थिरता, शान्ति और आनन्द व्याप्त है।

२०४७—पीड़ाकी आग तो उसीको सता सकती है जो ईश्वरको नहीं पहचानता। ईश्वरको जाननेवाला तो धधकती हुई आगको भी ठण्ढी और सुखदायक जान पाता है।

२०४८—जो ईश्वरके नज़दीक आ गया उसे किस बातकी

कमी ? सभी पदार्थ और सारी सम्पत्ति उसीकी है । क्योंकि उसका वह परम प्रिय सखा सर्वव्यापी और सारी सम्पत्तिका स्वामी है ।

२०४९—जो अपना परिचय ज्ञानी कहकर देता है वह ज्ञानी नहीं है । जो यह कहता है कि मैं उसे नहीं जानता, वही ज्ञानी है ।

२०५०—सारी दुनिया तुझे अपना ऐश्वर्य और स्वामित्व भी सौंप दे तो तू फूल न जाना और सारी दुनियाकी गरीबी भी तेरे हिस्सेमें आ जाय तो उससे नाराज न होना । चाहे जैसी हालत हो उस एक प्रभुका काम बजानेका ध्यान रखना ।

२०५१—या तो जैसे बाहरसे दिखाते हो वैसे ही भीतरसे बनो, नहीं तो जैसे भीतर हो वैसे ही बाहरसे दिखाओ ।

२०५२—प्रभुमें ही सब लोगोंकी स्थिति और गति देख सकनेपर ही पक्के पायेपर प्रभु-दर्शन हुए जानना ।

२०५३—धर्मकी भूख बादलके समान है । जहाँ वह बराबर जमी और चातककी-सी आतुरताकी गर्मी बढ़ी कि तुरन्त ईश्वरकी कृपाका अमृत बरसने लगा ।

२०५४—तीन बातें ध्यान देने लायक हैं—(१) जब कभी किसी बुरे आदमीसे काम पड़ जाय तो उसके नीच स्वभावको अपने भले स्वभावसे ढक लेना, इससे स्वयं तुम्हें सन्तोष होगा, (२) जब कभी कोई तुम्हें दान दे तो पहले कृतज्ञ होना उस प्रभुका, उसके बाद उस उदारहृदय दाताको धन्यवाद देना, (३) जब कभी विपत्ति आ पड़े तो तुरन्त विनीतभावसे उस विपत्तिको सहनेकी शक्तिके लिये प्रभुसे प्रार्थना करना ।

२०५५—इन असंख्य तारों और नभमण्डलके सिरजनहारकी नजर तू जहाँ कहीं होगा वहीं रहेगी, ऐसा विचारकर सदा-सर्वदा सावधान और पवित्र रहना ।

२०५६—मनुष्यका सच्चा कर्तव्य क्या है ? ईश्वरके सिवा किसी दूसरी चीजसे प्रीति न जोड़ना ।

२०५७—जो यह जानते हैं कि ईश्वर हमारा हर एक काम देखता है, वे ही बुरा काम करनेसे डर सकते हैं ।

२०५८—ईश्वरके भजन-पूजनमें जो दुनियाकी सारी चीजोंको भूल जाते हैं उन्हें सब चीजोंमें ईश्वर-ही-ईश्वर दिखायी पड़ता है ।

२०५९—सभी हालतोंमें प्रभु और प्रभुभक्तोंका दास होकर रहना ही अनन्य और एकनिष्ठ भक्ति करना है ।

२०६०—भीतरसे प्रभुकी गाढ़ भक्ति करना, परन्तु बाहर उसे प्रसिद्ध न होने देना साधुताका मुख्य चिह्न है ।

२०६१—ईश्वरकी उपासनामें मनुष्य ज्यों-ज्यों डूबता जाता है, त्यों-त्यों प्रभुदर्शनके लिये उसकी आतुरता बढ़ती जाती है; यदि एक पलके लिये भी उसे साक्षात्कार हो जाता है तो वह उस स्थितिकी इच्छामें अधिकाधिक लीन हो जाता है ।

२०६२—विशुद्ध प्रभुप्रेम जगत्में एक दुर्लभ पदार्थ है । मनमेंसे कपटबुद्धिको दूर करनेका जब मैंने प्रबल प्रयत्न किया, तब उस प्रभुने अनेक सद्गुणोंके रूपमें आकर मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया ।

२०६३—जो मनकी मलिनतासे रहित, दुनियाके जंजालोंसे मुक्त और लौकिक तृष्णासे विमुख है, वही सच्चा संत है।

२०६४—संत ईश्वरपरायणताकी ऊँची अवस्थामें अपार सुख-शान्ति भोगते हैं। वे संसारसे दूर भागे हुए होते हैं। वे न किसी चीजके मालिक होते हैं और न किसी चीजके गुलाम ही।

२०६५—जो न तो दुनियाकी किसी चीजपर अपना वन्धन ही रखते और न खुद किसी वन्धनमें बँधते हैं, वे ही संत हैं।

२०६६—सच्चे संतका धर्म बाहरी आचार और पण्डिताई दिखानेमें नहीं है। उनका धर्म है पवित्रचरित्र होकर ईश्वरका अनुसरण करना जो बाहरी दिखावे और ज्ञानकी वातें रट लेनेसे नहीं मिल जाता।

२०६७—मुक्त रहना, वीर बनना और बाहरी सुख-वैभवसे अलग रहना, ईश्वरको पानेके लिये पशुवृत्तियोंकी गुलामी छोड़ देना—यह सच्चे संतका स्वभाव है। इस उत्तम स्वभावसे संसार-की मित्रताको छोड़कर ईश्वरसे स्नेह जोड़नेकी शक्ति आती है।

२०६८—जिनकी सदा ईश्वरकी ओर दृष्टि है और जो संसारसे विरक्त हैं वही संत हैं।

२०६९—जो दुराचारियोंके अत्याचारोंसे कभी जरा भी व्यथित नहीं होते, वे ही महापुरुष हैं।

२०७०—परमेश्वरके नामपर लोगोंको अपनी ओर घसीटनेवाले धर्मध्वजी बहुत-से हैं। उनसे बचकर रहना।

२०७१—एक ईश्वरप्रेमीके लिये सभी स्थल मन्दिर हैं, सभी दिन पूजाके दिन हैं और सभी महीने व्रतके हैं। वह जहाँ रहता है, ईश्वरके साथ रहता है।

२०७२—'उस' के अस्तित्वका ज्ञान होते ही मैंने अपने अस्तित्वकी ओर देखा, तो वहाँ भी मुझे उसीका अस्तित्व दिखायी दिया।

२०७३—प्रभु अपने प्रेमियोंको ऐसी जगह रखता है जहाँ साधारण लोग पहुँच ही नहीं पाते। जो लोग उस जगह पहुँच गये हैं उनको जनसाधारण पहचान ही नहीं सकते कि वे प्रभु-प्रेमी हैं। जब कभी मैंने उस प्रभुके सौन्दर्यकी बात लोगोंसे कही तो उन्होंने मुझे पागल बतलाया।

२०७४—जिस किसीने साधु पुरुषोंका सहवास किया है वही ईश्वरको पा सका है।

२०७५—हे प्रभो! तुम जब मेरा सदा स्मरण रखते हो, तो मेरे आखिरी साँसतकके हर एक साँसके साथ तुम्हारा नाम रहे, मन भी सदा तुम्हारे स्मरणमें लगा रहे और तन और जीवन भी तुम्हारा अनुसरण करते रहें।

२०७६—हे प्रभो! तुमने मुझे अपने लिये ही रचा है और तुम्हारे लिये ही मैं जनमा हूँ। कृपाकर अपनी रची हुई किसी भी वस्तुके प्रति मेरे मनमें मोह न उत्पन्न होने देना।

२०७७—मनुष्य ज्यों ही यह मानने लगता है कि मैं कुछ तो जानने लगा, तभीसे उसके ज्ञानके द्वार बंद हो जाते हैं।

२०७८—ईश्वरको पानेके लिये जिसका हृदय तरस रहा है उसीका जन्म धन्य है; कारण, उसका सर्वस्व तो उस ईश्वरमें समाया रहता है।

२०७९—अगर तुम दुनियाकी खोजमें जाओगे, तो दुनिया तुमपर चढ़ बैठेगी, उससे विमुख होओगे तो उसे पार कर सकोगे।

२०८०—संत वह है जिसे आज और कल किसी दिनकी परवा नहीं, जो अपने प्रभुके सम्बन्धके सामने लोक और परलोक दोनोंको तुच्छ समझता है।

२०८१—विना ईश्वरका नाम लिये कोई भी बात विचारने अथवा करनेसे बहुत बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ता है।

२०८२—साधुओंका समागम करनेसे प्रभुप्रेमरूपी सुन्दर बादल उमड़ेंगे और उनसे ईश्वर-अनुग्रहका स्वच्छ जल बरसेगा, किन्तु जब तुम उस प्रभुका ही समागम करने लग जाओगे तब तो उन बादलोंसे प्रेमके अमृतकी वर्षा होने लगेगी।

२०८३—जो ईश्वरकी ओर जाता है उसे वह कुछ ऐसी वस्तु दे देता है जिससे उसका अपना सब कुछ चला जाता है और उसके बदलेमें भजन, भाव, उपासना, प्रार्थना आदि दैवी पदार्थ प्रभुकी ओरसे उसे मिलते रहते हैं।

२०८४—स्वयं ईश्वर जिसका मार्गदर्शक है, उसका रास्ता अपने भरोसे ही चलनेवालेके रास्तेसे कहीं अधिक सुगम और छोटा है; क्योंकि ईश्वर अपने आश्रितको दिव्य दृष्टि प्रदान

करता है, जिससे वह अपने सीधे रास्तेको सरलतासे देख लेता है।

२०८५—रास्ते दो हैं—एक लम्बा, दूसरा छोटा। लम्बा रास्ता भक्तके पाससे शुरू होकर भगवान्‌के पास जाता है और छोटा रास्ता भगवान्‌के पाससे शुरू होकर भक्तके पास आता है।

२०८६—जो उसे पाता है वह अपने रूपमें न रहकर उसके रूपमें समा जाता है।

२०८७—मुँह बंद रक्खो। ईश्वरके सिवा दूसरी बात ही मत करो। मनमें भी ईश्वरके सिवा और किसी बातका चिन्तन न करो।

२०८८—जब तुम पूरी तरहसे अपना विनाश कर लोगे तभी तुम 'पूर्ण' बनोगे।

२०८९—स्वर्ग और मृत्युलोकके सारे जीवनमें किये हुए धर्मानुष्ठानोंकी अपेक्षा पलभरका पवित्र प्रभु-समागम कहीं श्रेष्ठ है।

२०९०—एकान्तमें प्रभुके साथ बैठनेवालेका लक्षण है संसारकी सब वस्तुओं और दूसरे सब मनुष्योंकी अपेक्षा प्रभुको ही अधिक प्यार करना।

२०९१—ईश्वरके प्रेमियोंके लिये है उसका स्नेह और पापियोंके लिये है उसकी दया।

२०९२—जो छोटे-छोटे प्राणियोंसे प्रेम नहीं कर सकता वह ईश्वरसे क्या प्रेम करेगा?

२०९३—जो आदमी अपने संसार और अपने जीवनको प्रभुको अर्पण नहीं कर देता वह दुनियाके इस भयानक जंगलको पार कर नहीं सकता ।

२०९४—पलभरका ईश्वरका सहवास हजारों वर्षोंकी साधनासे कहीं अधिक उत्तम है ।

२०९५—साधुओंका बाना तो बहुत पहन लेते हैं; परन्तु ईश्वर तो चाहता है मनकी शुद्धि और व्यवहारकी सात्त्विकता-का बाना ।

२०९६—ऐसे लोगोंकी ही संगति करना जो ज्ञानाग्निसे शुद्ध होकर प्रभुके ममतारूपी अमृतसागरमें डूबे हैं !

२०९७—ईश्वरका स्मरण करो तो ऐसा कि फिर दूसरी बार उसे याद ही न करना पड़े ।

२०९८—जो श्रोता प्रभुको पानेकी इच्छा नहीं रखता उससे बात मत करो, और जिस वक्ताको प्रभुके दर्शन नहीं हुए उसकी बात मत सुनो ।

२०९९—सच्चे प्रभु-प्रेमी बनकर जिस किसी ओर देखोगे वहीं, ईश्वर ही दिखायी देगा । कारण, ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है ही ।

२१००—शरीर, वाणी, मन तीनों मेरे नहीं; उन्हें तो मैं ईश्वरको सौंप चुका हूँ । मेरा न लोक है न परलोक; दोनोंकी जगह है परमेश्वर ।

२१०१–पूरी लगनसे काम करके उसे ईश्वरको समर्पित कर देनेवाला ही सच्चा साधु है ।

२१०२–प्रभु-प्रेमी ही प्रभुको पाता है और जो प्रभुको पा लेता है, वह अपने-आपको भूल जाता है । उसका अहंभाव नष्ट हो जाता है ।

२१०३–पोथियोंके पण्डित धर्मका उपदेश दूसरोंको सुनानेमें ही लगे रहते हैं, किन्तु सच्चे साधु अपने-आपको सुनाते हैं और स्वयं उसपर आचरण करते हैं ।

२१०४–लोगोंके आगे रोनेकी अपेक्षा प्रभुके आगे रोओगे तो सच्चा लाभ होगा ।

२१०५–तुमने 'उसे' कहाँ देखा ?—जहाँ मैं खुद खो गया ! अपने-आपको मैं नहीं देख पाया वहाँ !

२१०६–मैं नहीं कहता कि काम मत करो । काम जरूर करो; किन्तु अपनी शक्ति और सम्पत्तिके सहारे नहीं उस प्रभुकी शक्ति और सम्पत्तिके सहारे करो । वह करावे तभी करो !

२१०७–साधु पुरुषो ! सावधान रहना । फकीरो ! फकीरी पोशाकसे ही तुम्हें उसके दर्शन नहीं हो सकेंगे । इन बाहरी साधनोंमें ही साधुता मान बैठनेसे तो हानि ही होगी ।

२१०८–अपने सब काम भूलकर सदा ईश्वरका स्मरण करते रहो ।

२१०९–क्या करनेसे जाग्रत् रहा जा सकता है ? हर एक श्वासके साथ यही समझो कि बस यही अन्तिम श्वास है ।

२११०—अगर उस करुणासागरकी करुणाकी एक बूँद भी तुमपर गिर जाय तो संसारके किसीसे कुछ भी माँगनेकी तुम्हें आवश्यकता नहीं रह जायगी।

२१११—इस दुनियाके कँटीले झाड़के नीचे बैठकर प्रभुका ध्यान करना मुझे पसंद है; किन्तु स्वर्गके कल्पतरुके नीचे बैठकर ईश्वरको भूल जाना मुझे पसंद नहीं।

२११२—ईश्वरके मार्गमें पहले व्याकुलता, तीव्र जिज्ञासा और पीछे निर्मलता, पश्चात्ताप, प्रभुकी महिमाका कीर्तन और परमात्म-दर्शन क्रमशः आते हैं।

२११३—पवित्र बनो। ईश्वर स्वयं पवित्र है और वह पवित्रात्मापर ही अपने प्रेमकी वृष्टि करता है।

२११४—सच्चा संत ईश्वरकी गोदमें हँसने, खेलनेवाला सुन्दर बालक है। ईश्वरकी गोदमें संत बिना किसी संकोचके खेलता-कूदता और गाता-बजाता रहता है।

२११५—अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तुको अपने परमप्रिय सखा परमात्माके लिये न्योछावर कर दो, यही प्रभु-प्रेमका लक्षण है।

२११६—गहरे उतरकर तुम उसकी खोज नहीं करते इसीलिये तो उसे नहीं पा सकते।

२११७—मनुष्यने प्रभुको देखा नहीं है इसीलिये वह विषय-भोगोंके पीछे दौड़ता फिरता है। उसने उसे देख लिया होता तो वह दूसरी चीजोंके पीछे क्यों दौड़ता फिरता?

२११८—अपने मनमें सोचकर देखो क्या वास्तवमें तुम्हें प्रभुको प्राप्त करनेकी अभिलाषा है ? यदि यथार्थ ही उन्हें पानेकी अभिलाषा है तो अवश्यमेव पूरी होगी ।

२११९—जिस प्रकार वर्षाऋतुके आनेपर जल बरसता है, बिजली चमकती है, मेघ गर्जना करते हैं, हवा जोरसे चलने लगती है, फूल खिल उठते हैं और पक्षी आनन्दमें डूबकर कूजने लगते हैं, उसी प्रकार परमात्माके दर्शन हो जानेपर आनन्दित होकर नेत्र जलवर्षा करने लगते हैं, ओंठ मृदु हास्य करने लगते हैं, अन्तरकी कली खिल उठती है, आनन्दके झोंकेसे मस्तक हिलने लगता है, प्रतिक्षण उस प्रिय सखाके नामकी गर्जना होने लगती है और प्रेमकी मस्ती प्रभुके गुणगानमें सराबोर कर देती है ।

२१२०—जो मनुष्य ईश्वरके सिवा और किसी चीजमें नहीं रमता वही सच्चा संत है ।

२१२१—प्रभुकी पूजा करना ही सच्चा कर्तव्य है, उसकी खोज करना ही सच्चा रास्ता है, उस परमात्माका दर्शन होना ही एक सच्ची कथा है ।

२१२२—परमात्माके दर्शनमें लीन होकर उसका स्मरण करना भी भूल जाओ, यही ऊँचा-से-ऊँचा स्मरण है ।

२१२३—प्रभुस्मरणके लिये संसारको भूल जाओ और परलोककी बात भी मत सुनो ।

२१२४—सृष्टिमेंसे मनको खींचकर स्रष्टामें लगाना ही वैराग्य है । ईश्वरेतर सब चीजोंसे परे रहना ईश्वरके समीप जाना है ।

२१२५—सृष्टि और स्रष्टा तथा विधान और विधाताको एक समझनेमें ही पूर्णता है ।

२१२६—लोक-कल्याणको अपने कल्याणसे भी अधिक मानना ही सच्ची साधुता, महत्ता और उदारता है ।

२१२७—जिस लोक-कल्याणमें अभिमानका पुट है वह तो मोह है—त्याज्य है ।

२१२८—इस समय तुम्हें जो क्षण प्राप्त है वही तुम्हारा सबसे बढ़कर कीमती धन है । आध्यात्मिक जगत्में काल नामकी वस्तु ही नहीं है, इसीलिये भूत और भविष्य भी नहीं हैं ।

२१२९—जिसका मन खान-पान और गहने-कपड़ेमें ही बसा है उसकी स्थिति पशुसे भी गयी-बीती है ।

२१३०—ईश्वर भीतरकी छोटी-से-छोटी बातको भी देख रहा है इस बातको एक क्षण भी न भूलो ।

२१३१—संसारके सारे पदार्थोंसे मुँह मोड़कर एकमात्र प्रभुकी ओर लग जाओ । इस दुनियाको आज नहीं तो कल छोड़ना ही है ।

२१३२—जिसके मनमें कामवासना प्रबल हो उसके लिये विवाह कर लेना ही उचित है । ऐसा करनेसे वह दूसरे पापों और सङ्कटोंसे बच जाता है । मेरी भी नजरमें अगर दीवार और औरत एक-सी न लगती होती; तो मैंने भी विवाह कर लिया होता ।

२१३३—ईश्वर अपने भक्तसे बार-बार कहता है कि तू दुनियासे विमुख हो जा और मेरी ओर आ । और कुछ चाहे

जितना करता रह, पर याद रख, विना मेरी ओर आये तुझे सच्ची शान्ति और सुख मिलनेका ही नहीं । इसीलिये पूछता हूँ कबतक तू मुझसे भागता फिरेगा ? कबतक मुझसे विमुख रहेगा ?

२१३४—भाग्यशाली कौन ? जो ईश्वरकी भक्ति करके उसके प्रेमका स्वाद चखकर इस लोक और परलोकमें शान्ति पाता है ।

२१३५—सावधान रहना, जो आदमी तुम्हारे आगे दूसरोंकी निन्दा करता है, वह दूसरोंके आगे तुम्हारी निन्दा अवश्य करता होगा । ऐसे आदमीकी बातोंमें मत फँसना, नहीं तो बड़ी भारी विपत्तिका सामना करना होगा ।

२१३६—सदा प्रभुसे डरकर चलना और भूलकर भी किसीका अहित न चाहना, न करना ।

२१३७—ईश्वरपर विश्वास रखकर जो भी काम किया जाता है वही मङ्गलमय हो जाता है । विश्वास मुख्य वस्तु है ।

२१३८—पहनने-ओढ़नेमें सादगीका खयाल रखना ! शौकीनीकी पोशाक और आडम्बरसे परे ही रहना ।

२१३९—सदा सत्पुरुषोंकी सङ्गतिमें रहना ।

२१४०—सावधान ! परस्त्रीकी ओर कभी दृष्टिपात भी न करना ।

२१४१—दिवसका पहला और आखिरी प्रहर प्रभुके गुण-गान, पठन और गुण-श्रवणहीमें बिताना ।

२१४२–ईश्वरोपासनाको परम कर्तव्य मानकर उसीमें लगे रहना।

२१४३–साधनाके लिये निर्जनताका आश्रय बहुत ही उत्तम है।

२१४४–सब बातोंको छोड़कर अपने एकमात्र परम मित्र परमात्मामें लीन होना ही योगकी ऊँची अवस्था है।

२१४५–जो वस्तु—जो स्थिति तुम्हें ईश्वरसे दूर रखती है उससे तुम स्वयं दूर रहो, यही निवृत्ति है।

२१४६–सांसारिक सम्पत्ति छोड़कर परमात्मामें समायी हुई सच्ची शान्ति पाना ही सच्चा वैराग्य है। अध्यात्मज्ञानकी प्राप्ति करना ही सच्चा विलास है।

२१४७–भक्त ज्यों ही सर्वभावसे प्रभुका आश्रय लेता है, त्यों ही परमेश्वर उसकी रक्षा, उसका योग-क्षेम अपने हाथमें ले लेता है।

२१४८–जिसकी दृष्टिमें जन्म और मरण समान हैं वही सच्चा साधु है।

२१४९–लोगोंकी नजरमें जिसका दरजा ऊँचा हो गया है, समझ लो वह बहुत ही हलका मनुष्य है।

२१५०–जिस प्रभु-प्रेमीको दुनियाके लोग नाचीज, पागल और बेसमझ समझते हैं, वह सबसे ऊँचा है। दुनियावी तराजूसे यह तराजू न्यारा है।

२१५१–जो मनुष्य विपत्तिमें भी अपने ऊपर ईश्वरकी कृपाको देख सकता है वह कभी मृत्युकष्टके अधीन नहीं हो सकता।

२१५२–ईश्वरकी सेवासे शरीरमें और श्रद्धासे प्राणोंमें ज्योति प्रकट होती है।

२१५३–जो कुछ भी तुम्हारा है उसका त्याग करो और 'वह' जैसी आज्ञा दे उसका पालन करो।

२१५४–ईश्वरका भय मनका दीपक है। इस दीपकके प्रकाशसे मनुष्य अपने गुण-दोष भलीभाँति देख सकता है।

२१५५–दूसरोंसे लेनेकी अपेक्षा देनेमें जिसे अधिक सुख नहीं मालूम होता वह सच्चा संत नहीं हो सकता।

२१५६–दुनियामें घुसना बहुत आसान है पर उसमेंसे निकलना उतना ही मुश्किल है।

२१५७–ईश्वरके प्रति नम्र होना, उसकी आज्ञाके मुताबिक चलना, उसकी प्रत्येक इच्छाके आगे सिर झुकाना—इसीका नाम ईश्वरके प्रति विनय दिखाना है।

२१५८–प्रभुपर निर्भर और उसके अधीन रहनेवाला वास्तवमें वही है जिसने ईश्वरका दृढ़ आश्रय लिया है और जो किसी भी बातका उसे दोष नहीं देता।

२१५९–एक ईश्वरकी प्राप्तिके लिये ही जिसके मनमें वैराग्य उपजा हो वही सच्चा वैरागी है, स्वर्गके लोभसे जो वैरागी बना हो वह तो असली वैरागी नहीं।

२१६०—अपने पास बहुत-से नौकर-चाकर और भोगोंके सामान देखकर एक अज्ञानी ही फूला नहीं समाता।

२१६१—जिसने अपना अभिमानका बोझ हल्का कर लिया है, वही पार उतर सकता है। जिसने बोझ बढ़ा लिया है वह तो डूबेगा ही।

२१६२—जो मनुष्य संसारको नाशवान् और भगवान्‌को सदाका साथी समझकर चलता है, वही उत्तम गति पाता है। जो नाशवान् चीजोंका मोह छोड़कर, संसारका भार प्रभुपर छोड़कर, भाररहित हो जाता है वह सहज ही संसार-सागरसे तर जाता है।

२१६३—इस दुनियामें इन्द्रियोंको बाँधनेके लिये जैसी मजबूत साँकल चाहिये वैसी मजबूत साँकल पशुओंको बाँधनेके लिये भी नहीं चाहिये।

२१६४—तुम्हारे पूर्वज ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन करते हुए चलते थे। रातको वे उसका चिन्तन करते थे और दिनमें उसीके अनुसार बर्ताव करते थे। परन्तु तुमने वैसा करना छोड़ ही नहीं दिया, उलटे ईश्वरकी आज्ञाओंके उलटे-सुलटे अर्थ लगाकर तुम संसारमें आसक्ति बढ़ानेवाले लेख तैयार कर रहे हो।

२१६५—तुम्हारा चिन्तन तुम्हारा दर्पण है। कारण, तुम्हारे शुभाशुभका हाल वह बता देगा।

२१६६—जिसकी दृष्टि वशमें नहीं, उसे कुमार्गपर जाना पड़ता है।

२१६७—जिसने वासनाओंको पैरोंतले कुचल दिया है, वही मुक्त है ।

२१६८—जबतक हृदय सङ्केत नहीं करता, ज्ञानी मौन रहते हैं । उनकी जीभसे वही बात निकलती है जो उनके हृदयमें होती है ।

२१६९—इस दुनियामें लोगोंकी दोस्ती बाहरसे देखनेमें सुन्दर, पर भीतरसे ज़हरीली होती है ।

२१७०—इस मायावी संसारसे सदा सचेत रहना, यह बड़े-बड़े पण्डितोंके मनको भी वशमें कर लेता है ।

२१७१—जिन्हें ईश्वरकी स्तुति और ईश्वरका स्मरण करनेके बदले लोगोंको शास्त्रवचन सुनाना ही अच्छा लगता है, प्रायः उन सबका ज्ञान बाहरी—नकली है, उनका जीवन सारहीन है ।

२१७२—जो ईश्वरका भरोसा रखते हैं ईश्वर अवश्य उनका निर्वाह करता है ।

२१७३—विपत्तिको सह लेनेमें अचरज नहीं है, अचरज है वैसी हालतमें भी शान्त और आनन्दमग्न रहनेमें । और यही ईश्वर-विश्वासका लक्षण है ।

२१७४—ईश्वरसे डरकर जो काम किया जाता है वह सुधरता है, और जो काम विना उसके डरके किया जाता है वह बिगड़ता है ।

२१७५—जबतक लोक और लौकिक पदार्थोंमें आसक्ति रहेगी, तबतक ईश्वरमें सच्ची आसक्ति न हो सकेगी ।

२१७६–जिसकी जीभ सत्य और हितकर वाणी बोलती है वही वास्तविक वक्ता है ।

२१७७–प्रभु-प्रेम मनुष्यसे प्रभु-प्रेमकी बातें करवाता है । प्रभुकी लज्जा उसे असत् बोलनेमें मौन रखती है और प्रभुका भय उसे पाप करनेसे बचाता है ।

२१७८–दानादि सत्कर्मोंको करते समय होनेवाली अपनी प्रशंसाकी ओर कान भी न दो । वह प्रशंसा तुम्हारी नहीं, उस ईश्वरकी महिमा है ।

२१७९–पहले प्रभुके दास बनो । और जबतक वैसे न बन पाओ, 'अहं ब्रह्मास्मि' 'मैं वही हूँ' ऐसा मत कहो । नहीं तो, घोर नरककी यातना भोगनी होगी ।

२१८०–जो मनुष्य सांसारिक विषयों तथा विषयी लोगोंके संसर्गसे दूर रहता है और साधुजनोंका ही सङ्ग करता है वही सच्चा प्रभुप्रेमी है; कारण, भगवत्-परायण साधुजनोंसे प्रीति करना और ईश्वरसे प्रीति करना एक ही समान है ।

२१८१–सच्चे प्रभु-प्रेमीके दो लक्षण हैं—स्तुति-निन्दामें समभाव रहना और भगवान्‌से कोई भी लौकिक कामना न रखना ।

२१८२–बाहरी आँखोंका नाता बाहरी चीजोंसे है और भीतरी आँखोंका नाता है परमात्माकी श्रद्धासे ।

२१८३–विश्वासके चार लक्षण हैं—सब चीजोंमें ईश्वरको देखना, सारे काम ईश्वरकी ओर नजर रखकर ही करना, हर एक

दुःख-सुखमें उसका हाथ देखना, और हर हालतमें हाथ पसारना तो उस सर्वशक्तिमान्‌के आगे ही ।

२१८४—संत-समागम और हरिकी रहस्यभरी कथा प्रभुमें श्रद्धा उत्पन्न करते हैं । प्रभुके विश्वाससे तीव्र जिज्ञासा, जिज्ञासासे विवेक-वैराग्य, वैराग्यसे तत्त्वज्ञान और तत्त्वज्ञानसे परमात्मदर्शन प्राप्त होता है ।

२१८५—जो मनुष्य दुःखमें प्रभुका आशीर्वाद देखता है, वह महान् है ।

२१८६—जो मनुष्य सुखमें प्रभुका चिन्तन करता है, वह भाग्यवान् है ।

२१८७—ईश्वरसे डरनेवालेका मन ईश्वरको नहीं छोड़ता, उसके मनमें प्रभु-प्रेम दृढ़ रहता है और उसकी बुद्धि पूर्णताको प्राप्त होती है ।

२१८८—बड़प्पनको खोजनेवाला तो हलकाईको ही पाता है ।

२१८९—इस संसारमें एक ईश्वरका भय दूसरे सब भयोंसे मुक्त करता है ।

२१९०—अचरजकी बात है ! तेरा प्यारा मित्र तेरे समीप भी है और अनुकूल भी है, फिर भी तेरी यह हालत ?

२१९१—जिसका बाह्य जीवन उसके आन्तरिक जीवनके समान नहीं है उसका संसर्ग मत करो ।

२१९२—ईश्वरकी कठोर-से-कठोर आज्ञाका पालन करनेमें भी प्रसन्न होना सीखो। ईश्वरका आदेश सुनने-समझनेकी इच्छा हो तो पहले अभिमान छोड़कर, आदेशको सुनकर, उसके पालनमें जुट जाओ। भयानक विपत्तिमें भी हरेक साँसके साथ प्रभुके प्रेमको बनाये रक्खो।

२१९३—मनुष्य कब ईश्वरार्पण हो सकता है? जब कि वह अपने-आपको, अपने हरेक कामको बिल्कुल भूल जाय, सर्वभावसे उसका आसरा ले ले और उसके सिवा किसी दूसरेकी न आशा रक्खे, न किसीसे सम्बन्ध ही रक्खे।

२१९४—जबतक मैं-मेरा है, तबतक तुम उलटी ही राहपर हो। जहाँ निःस्वार्थता और सच्ची श्रद्धा है, वहीं धर्मका बल है।

२१९५—जहाँ उपदेश अधिक होता है, वहाँ गम्भीरता कम होती है। जहाँ गम्भीरता अधिक होती है, वहाँ उपदेश कम होता है।

२१९६—भगवान्‌ने तुम्हारे लिये जो रच रक्खा है, उसका विरोध करना तुम्हारे ओछे स्वभावका परिचय मात्र है।

२१९७—जगत्‌की तमाम चीजोंके रचनेवाले भगवान्‌को प्राप्त करना किसी भी चीजको प्राप्त करनेकी अपेक्षा सहज है। तो भी तुम उससे दुनियावी चीज ही चाहते हो, यह कैसी बात है?

२१९८—जो मनुष्य स्वर्गादि सुखोंके लिये ईश्वरकी पूजा करता है, वह तो अपनी ही पूजा करता है और जो ईश्वरके लिये

ईश्वरकी सेवा करता है, वह भी ईश्वरको नहीं जानता; क्योंकि ईश्वरको न तो तुम्हारेद्वारा सेवा करानेकी जरूरत है, न चाह ही है। जो ईश्वरको प्रेमके लिये पूजता है, जिससे पूजे बिना रहा नहीं जाता, वही यथार्थ पूजता है।

२१९९—साधु पुरुषका यह लक्षण है कि वह जिस किसीसे भी मिलता है—बाहरसे ही मिलता है। भीतरसे तो वह नित्य ईश्वरसे मिलता रहता है।

२२००—जो मनुष्य हर हालतमें अपनेको और तमाम वस्तु-स्थितियोंको भगवान्‌में ही देखता है, वही तमाम वस्तुओंकी इच्छाका त्याग कर सकता है।

२२०१—अपनी दुनियावी स्थिति और शक्तिपरसे विश्वास उठ जाना भी प्रभुकी महत्त्वपूर्ण सेवा है; क्योंकि ऐसा होनेपर ही मनुष्य ईश्वरसेवाकी योग्यता प्राप्त करता है।

२२०२—जो भी भक्त या साधु अपने ज्ञान-वैराग्यके लिये मनमें गर्व रखता है, वह तो ज्ञान-वैराग्यका उपहास ही कराता है; क्योंकि यदि उसके मनसे संसारकी सत्यता और मोह-ममता निकल जाती तो फिर संसारसे वैराग्य करनेपर उसे जरा भी गर्व क्यों होता? तुम अपने किसी भी वैराग्य या निवृत्तिके लिये क्या गर्व करते हो? ईश्वरके निकट तुम्हारा यह सब कुछ मच्छरकी पाँखके बराबर है।

२२०३—जिस मनुष्यका मन प्रभुचिन्तनकी ज्योतिसे प्रकाशित है और जिसमें सदा प्रभुका ही विश्वास भरा है, वही सच्चा ज्ञानी है।

२२०४—इन चार बातोंका पालन करोगे तो तुमसे शुद्ध साधना हो सकेगी—१—भूखसे कम खाना, २—लोकप्रतिष्ठाका त्याग, ३—निर्धनताका स्वीकार, और ४—ईश्वरकी इच्छामें सन्तोष।

२२०५—भोजन अपवित्र होता है तो एकान्तमें भी उत्तम साधना नहीं हो सकती और ईश्वरके अर्पण किये बिना कोई भी वस्तु पवित्र हो नहीं सकती।

२२०६—अन्यायसे प्राप्त की हुई वस्तुका उपभोग करनेवालेके तमाम अङ्गोंमें पाप लिपट जाता है। अपनी इच्छा न होनेपर भी ऐसा आदमी पापमें ही डूबता जाता है। जो मनुष्य न्यायपूर्वक मिली हुई पवित्र वस्तुका उपभोग करता है, उसके तमाम अङ्ग साधनाके अनुकूल ही बर्तते हैं।

२२०७—जो सच्ची निवृत्ति चाहता है उसे चाहिये कि वह तमाम पापोंको और उल्टी समझको छोड़ दे।

२२०८—तुम जो कुछ भी करो अगर वह ईश्वरकी आज्ञाके अनुसार नहीं है तो तुमको दुःख ही मिलेगा।

२२०९—भक्त जबतक परमात्मासे प्रेम नहीं करता और मृत्युको याद नहीं रखता, तबतक उससे सर्वाङ्गसुन्दर तप नहीं हो सकता।

२२१०—जीवनके कार्य जबतक पवित्रतासे न हों, तबतक लोगोंका विश्वास नहीं जमता। सच्ची निवृत्ति तो प्रभुके विशुद्ध प्रेमसे ही उपजती है और विशुद्ध प्रेमकी पूर्णता तभी होती है जब प्रभुके दर्शन होते हैं।

२२११—जिनमें प्रभुका विशुद्ध प्रेम नहीं है वे लोग प्रपञ्चको दोष न समझकर गुण ही मानते हैं।

२२१२—जो मनुष्य समझ-बूझकर अपनी इच्छासे परमात्माकी पूजा नहीं करता उसको तो बाध्य होकर मनुष्योंकी पूजा ही तो करनी पड़ेगी।

२२१३—जो भगवान्‌को छोड़कर दूसरे किसी पदार्थमें सुख मानता है, उसका तो मन ही दूषित है। उसके हृदयमें प्रभु-विश्वास और पवित्रताकी ज्योतिका प्रकट होना कठिन है।

२२१४—जो मनुष्य भगवान्‌को छोड़कर दूसरी बातोंमें फँसा रहता है वह अपने ही हाथों अपना गला काटता है।

२२१५—जो मनुष्य अपने सब पदार्थ मान-प्रतिष्ठा और लोक-परलोक सबकी अपेक्षा भगवान्‌को ही बड़ा समझकर भगवान्‌में ही प्रेम रखता है उसीके हृदयमें सदाके लिये आध्यात्मिक सूर्य उगता है।

२२१६—तुम बाहरसे निर्धन दीखनेवाले सच्चे साधुओंका अभिमानवश अपमान करते हो, पर निश्चय समझना कि सर्वोत्तम सम्पत्तिवान् वे ही हैं।

२२१७—छः चीजोंका आश्रय लेना चाहिये—(१) ईश्वरीय ग्रन्थका अवलम्बन, (२) ऋषि-मुनियोंद्वारा प्रचार की हुई ईश्वरकी आज्ञाओंका पालन, (३) खान-पानकी पवित्रता, (४) दुःख देनेवाले और निन्दा करनेवालेको दुःख न देना और निन्दा न करना, (५) निषिद्ध कामोंसे दूर रहना और (६) जो कुछ देनेका विचार हो तुरन्त दे डालना।

२२१८–धर्मके मूल तीन हैं—(१) विचार और आचरणमें महात्माओंके मार्गपर चलना, (२) खान-पानको पवित्र रखना और (३) सत्कार्यमें ही स्थिति और प्रीति रखना।

२२१९–दो चीजें मनुष्यका विनाश करनेवाली हैं—(१) मान-बड़ाईके लिये दौड़ना और (२) निर्धनतासे डरना।

२२२०–इस जगत्में प्रभुके समान कोई भी सच्चा सहायक नहीं है और प्रभुके भेजे हुए महापुरुषोंके समान अच्छे मार्गका कोई दिखानेवाला नहीं है।

२२२१–मनको अच्छे मार्गपर चढ़ानेके लिये चार सीढ़ियाँ हैं—(१) सत्यका स्वीकार, (२) संसारसे उपरामता, (३) आचरणकी पवित्रता तथा उच्चता और (४) पापोंके लिये भगवान्से क्षमा-प्रार्थना।

२२२२–जिसका मन मलिनतासे मुक्त और सद्विचारोंसे युक्त है, ईश्वरकी समीपतासे जिसके मायाके बन्धन कट गये हैं और जिसकी नजरमें धूल और सोना समान है वही सच्चा ज्ञानी है।

२२२३–अल्प आहारमें, चित्तकी शान्तिमें और लोकसंसर्गके त्यागमें साधुता भरी है।

२२२४–विशेष जरूरतकी भी कोई चीज तुम्हारे पास न हो तो यह विश्वास करो कि तुम्हारे भलेके लिये ही प्रभुने ऐसा किया है। इसीका नाम प्रभुपर निर्भरता है।

२२२५–सारे सम्बन्धों और चिन्तनोंसे रहित होकर ईश्वरसे ही सम्बन्ध जोड़ना और उन्हींका चिन्तन करना, इसीका नाम आन्तरिक निर्भरता है।

२२२६–आत्मसमर्पण किये विना प्रभुपर निर्भर नहीं हुआ जा सकता और स्वार्थ छोड़े विना आत्मसमर्पण नहीं होता ।

२२२७–प्रभुपर निर्भर रहनेके तीन लक्षण हैं—(१) दूसरेसे कुछ भी न माँगना, (२) मिले तो भी न लेना और (३) लेना ही पड़े तो बाँट देना ।

२२२८–प्रभुपर निर्भर करनेवालेको तीन चीजें मिलती हैं—(१) प्रभुके प्रति पूर्ण श्रद्धा, (२) अध्यात्मविद्याका प्रकाश और (३) प्रभुका साक्षात्कार ।

२२२९–ईश्वरने तुमको जो कुछ देना कबूल कर रक्खा है उसमें जरा भी सन्देह न रखना, इसीका नाम निर्भरता है ।

२२३०–जिस चीजकी जरूरत हो उस चीजके लिये उसीसे जान-पहचान करनी पड़ती है कि जिसके पास वह हो । तुमको मोक्ष और सुख चाहिये तो तुम्हें ईश्वरसे ही परिचय करना होगा । क्योंकि ये उन्हींके पास भरपूर हैं, संसारके भाई-बन्धुओंके पास नहीं ।

२२३१–जो मनुष्य पापके विचार रखता है वह प्रभुपर प्रेम नहीं कर सकता ।

२२३२–अपकार करनेवालेका बदला अपकारसे न देकर उपकारसे देना और उसके लिये प्रभुसे क्षमा-याचना करना यही साधुता है ।

२२३३–जिसको भगवान्‌का प्रेम प्राप्त है वह मनुष्य

भयानक-से-भयानक रोगमें, बड़ी-से-बड़ी विपत्तिमें और दारुण अन्न-कष्टमें भी धीरज और कृतज्ञताको अटल रखता है।

२२३४—चार बातोंमें मनुष्यका कल्याण है—(१) वाणीके संयममें, (२) अल्प निद्रामें, (३) अल्प आहारमें और (४) एकान्तके भगवत्स्मरणमें।

२२३५—मनुष्यके सङ्गका क्या भरोसा ? वह मर जाय तो फिर उसका सङ्ग कैसे मिलेगा ? तब भगवान्‌का ही सङ्ग करना होगा। इसलिये पहलेसे ही भगवान्‌का सङ्ग क्यों न किया जाय ?

२२३६—जिसका हृदय भगवान्‌के प्रेमसे कोमल हो गया है उसके पास पापरूपी असुर नहीं आ सकता।

२२३७—जीवनमें पाँच बातें अमूल्य रत्न हैं—(१) ऐसी फकीरी जो अपार आन्तरिक सम्पत्तिका दर्शन करा दे, (२) ऐसा त्याग जो अखण्ड तृप्तिके दर्शन करा दे, (३) ऐसा दुःख जो नित्य प्रसन्नताके दर्शन करा दे, (४) ऐसी वीरता जो शत्रुके प्रति भी मित्रताके दर्शन करा दे और (५) ऐसी साधना तथा ऐसा भगवान्‌का स्मरण जो भगवान्‌के दर्शन करा दे।

२२३८—प्रभु और जीवके बीचमें अभिमानके समान अन्तराय दूसरा नहीं है।

२२३९—जो मनुष्य अभिमानी होता है, वह प्रभु-भक्त नहीं हो सकता, जो ईश्वरसे डरकर नहीं चलता वह विश्वासपात्र नहीं बन सकता और जो विश्वासपात्र नहीं बनता वह प्रभुके अटूट भण्डारकी चाबियोंको नहीं पा सकता।

२२४०—प्रभुकी प्राप्तिके लिये दीनता और हीनताके समान सहज मार्ग नहीं है।

२२४१—जो मनुष्य दूसरोंके हितके लिये लापरवाह और स्वार्थसाधनमें तत्पर होता है, उसमेंसे सत्यकी सुगन्ध नहीं निकलती, झूठकी ही दुर्गन्ध निकलती है।

२२४२—संसारमें रहकर भगवान्‌की आज्ञाका पालन करना संसारमें ही स्वर्गकी प्राप्तिके समान है, इस स्वर्गकी विशेषता है कि इसमें कोई विपत्ति नामकी चीज नहीं रहती।

२२४३—वीरताकी परख तीन बातोंमें होती है—(१) असत्यका आचरण न करके जीवननिर्वाह करना, (२) जरूरी चीज न मिले तब भी प्रभुकी प्रशंसा करना और (३) बिना माँगे दान देना।

२२४४—ईश्वरके आश्रित मनुष्योंके तीन लक्षण होते हैं—(१) उसके विचारोंका प्रवाह ईश्वरकी ओर ही बहता है, (२) ईश्वरमें ही उसकी स्थिति होती है और (३) ईश्वरकी प्रीतिके लिये ही उसके सारे कार्य होते हैं।

२२४५—जिस मनुष्यको अधिकार और मालिकी प्यारी होती है वह भगवान्‌को नहीं पा सकता।

२२४६—मैं एक ऐसा मार्ग जानता हूँ कि जिसपर चलनेसे जल्दी-से-जल्दी ईश्वरके पास पहुँचा जा सकता है। वह मार्ग है किसीसे कुछ भी न चाहना और अपने पास ऐसा कुछ भी न रखना जिसके लिये दूसरेके मनमें चाह हो।

२२४७—अपनी जीभको निन्दा-स्तुतिसे सदा दूर रक्खो। हे युवको ! जबतक तुम बूढ़े और कमजोर नहीं हो जाते तभीतक अपने जीवनके मुख्य कामको पूरा कर लो। बुढ़ापेमें यह काम नहीं होगा।

२२४८—धनवान् पड़ोसी और राजदरबारके पण्डितोंसे दूर रहना। नीचे लिखे परिमाणसे अधिक मिले तो उसको अनावश्यक और बोझरूप मानना चाहिये—(१) प्राण रहे इतना अन्न, (२) प्यास मिटे इतना जल, (३) लाज बचे इतना वस्त्र, (४) रहनेभरका घर और (५) उपयोगी हो उतना-सा ही लौकिक ज्ञान।

२२४९—कहनीके समान रहनी न हो, इसीका नाम ठगी है।

२२५०—अपने दोषोंको न देखना और न सुधारना, इसीका नाम धर्मान्धता है।

२२५१—जिस शक्तिसे इन्द्रिय और मन वशमें किये जा सकें, उसीका नाम शक्ति है।

२२५२—जो मनुष्य सम्पत्तिका सदुपयोग नहीं कर सकता उसकी सम्पत्ति इतनी जल्दी नष्ट होगी कि पता ही नहीं लगेगा।

२२५३—मन तीन प्रकारके होते हैं—(१) पहाड़-जैसा अडिग, जिसको कोई नहीं हिला सकता, (२) पेड़-जैसा जो बाहरके संयोगरूपी हिलोरोंसे हिला करता है और (३) तिनके-जैसा जिसको बाह्य संयोगरूपी हवा कहीं-का-कहीं फेंक देती है।

२२५४–जिस अन्तःकरणमें संसारी लालसाएँ भरी होती हैं उसमें ये पाँच बातें नहीं रह सकतीं—(१) ईश्वरका भय, (२) ईश्वरकी आशा, (३) ईश्वरपर प्रेम, (४) ईश्वरसे लज्जा और (५) ईश्वरके साथ मित्रता ।

२२५५–किसीके आत्मज्ञानका माप वह ईश्वरके समीप कितना पहुँच गया है, इसीसे हो सकता है ।

२२५६–जो मनुष्य सत्यके लिये धीरजको बचा सकता है वही आगे बढ़ता है ।

२२५७–ईश्वर कहते हैं हे भक्त ! जब तेरे मनमें मेरा स्मरण, मनन बहुत बढ़ जायगा तभी मैं तुझपर आसक्त होऊँगा ।

२२५८–प्रभु-प्रेमी मनुष्य जब अपने शरीरके प्रति स्नेह-रहित हो जाता है, तभी उसकी साधना और उसका जीवन सुखरूप बनता है ।

२२५९–जबतक एक गाँवको नहीं छोड़ा जा सकता तबतक दूसरे गाँवमें नहीं पहुँचा जा सकता, इसी प्रकार जबतक मनुष्य संसारका सम्बन्ध नहीं छोड़ सकता तबतक वह प्रभुके स्थानमें नहीं पहुँच सकता ।

२२६०–जो चीज अपनी नहीं है, उसको जो अपनी मानता है वह प्रभुकी दृष्टिमें नीचे पड़ता है ।

२२६१–लोगोंमें जिसका परिचय जितना ही अधिक होता है उसकी सत्यतामें उतनी ही न्यूनता होती है ।

२२६२—केवल अनुमान और शङ्काओंपर निर्भर करके ही किसी उत्तम मनुष्यसे दूर नहीं हटना चाहिये ।

२२६३—जिस मनुष्यको भगवान्‌का प्रेम प्राप्त करना हो, उसे अपना हरेक व्यवहार सर्वज्ञ प्रभुसे डरकर करना चाहिये ।

२२६४—यदि तुम सरलताको वाहन और सत्यको शस्त्र बनाकर चलो तो निश्चय समझना कि भगवान् भी तुम्हारी इच्छा करेंगे ।

२२६५—न तो ईश्वरसे स्वर्गकी कामना करो और न नरकसे ही बचानेकी याचना करो । शरणागतिका यही आदर्श है ।

२२६६—संसारमें ईश्वरके सिवा और जरा भी सार वस्तु नहीं है । जबतक तुम्हारे हृदयमें यह बात धँस न जाती तबतक सच्चा वैराग्य नहीं मिल सकता ।

२२६७—जो वस्तु प्रभुसे दूर रक्खे, उसके छोड़ देनेका नाम ही वैराग्य है । चाहे वह कितनी ही मूल्यवान् और आवश्यक हो ।

२२६८—फकीरीकी शोभा तीन बातोंमें है—(१) हृदयकी विशालता, (२) अन्तःकरणकी शान्ति और (३) निष्पापबुद्धि ।

२२६९—धनके अभिमानी मनुष्यका तीन बातोंसे जरूर सम्बन्ध होता है—(१) क्लेश, (२) अशुभ विचार और (३) पापकी बुद्धि ।

२२७०—बुद्धिमान् कौन है? जो संसारसे प्रेम हटाकर भगवान्‌में प्रेम करे ।

धनवान् कौन है ? प्रभु जो दे, उसीमें सन्तोष करे ।

चतुर कौन है ? जिसको संसारके भोग न फँसा सकें ।

त्यागी कौन है ? जिसके मनमें संसारकी कोई कामना नहीं ।

कृपण कौन है ? जो ईश्वरके दिये हुए धनका उचित दान करनेमें सङ्कोच करे ।

२२७१—चार मनुष्य प्रभुको विशेष प्रिय होते हैं—(१) अहङ्काररहित विद्वान्, (२) तत्त्व जाननेवाले संत, (३) विनयी धनवान् और (४) प्रभुकी महिमा जाननेवाला त्यागी ।

२२७२—चाहे जैसी बुरी-से-बुरी अवस्थामें भी प्रभुपर जरा भी दोषारोप न करो तो समझा जाय कि तुम्हारा प्रभुपर विश्वास है ।

२२७३—यदि दयालु प्रभु मुझे घरसे या देशसे निकाल दें, बिल्कुल दरिद्र बना दें, मोहताज और जन्मरोगी बना दें तो भी मैं तो उनपर प्रेम ही रक्खूँगा ।

२२७४—अगर तुम्हारेमें अवगुण हैं और दूसरे मनुष्य तुम्हें अवगुणी न कहकर सद्गुणी बतलाते हैं और उससे तुमको सन्तोष होता है, यह कैसे आश्चर्यकी बात है ?

२२७५—दो आँखोंसे और अल्पज्ञानसे तुम जितना देख या जान सकते हो, हजारों आँखोंवाले सर्वज्ञ प्रभु तुम्हारे हितकी बात

उससे बहुत अच्छी देख और जान सकते हैं। इस बातको कभी मत भूलना।

२२७६—तुम कभी अपने मनमें यह चिन्ता न करना कि हाय! अमुकने कितने पैसे कमा लिये हैं, पर मैं गरीब हूँ। इसके बदले, यह विचार करना कि हाय! अमुकने भगवान्‌का जितना भजन किया, उसको देखते मैंने तो कुछ भी नहीं किया!

२२७७—जैसे किसी मरे हुए मनुष्यसे कोई डाह नहीं करता, वैसे ही जीवित मनुष्यसे भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस जीवित मनुष्यको और तुमको दोनोंको ही मरना तो है ही।

२२७८—वैराग्यके तीन प्रकार हैं—(१) अपवित्र वस्तुओंका त्याग साधारण वैराग्य; (२) आवश्यकतासे अधिक मिली हुई वस्तुका त्याग विशेष वैराग्य और (३) ईश्वरसे दूर हटानेवाली वस्तुमात्रका त्याग असली वैराग्य है।

२२७९—जो मनुष्य संसारी मनुष्योंका सङ्ग छोड़कर निर्जन स्थानमें रहता है, उसे भगवान्‌का स्मरण और प्रभुकृपाके चिन्तनको छोड़कर और कुछ करना ही नहीं चाहिये। इसके बिना जो एकान्तसेवन किया जाता है, वह तो प्रमाद, विपत्ति और मृत्युतकको बुलानेवाला होता है।

२२८०—अभिमानी और दम्भीकी अपेक्षा सीधा-सादा थोड़ा-बहुत पाप करनेवाला मनुष्य भी श्रेष्ठ है, क्योंकि उसमें अपने पापके लिये कुछ पश्चात्ताप और दीनता होती है अथवा आ सकती है;

परन्तु मिथ्याभिमानी दाम्भिक मनुष्य तो पापकी साँकलोंसे बँधा हुआ दुर्गतिके घोर अँधेरेमें ही गिरेगा ।

२२८१—जो मनुष्य विरक्त पुरुषोंका सङ्ग छोड़कर धनवानोंका सङ्ग करता हैं, उसको तो प्रभु अन्धकार और मरण ही देते हैं ।

२२८२—जो मनुष्य दूसरोंके दोष ही देखा करता है, उसका जीवन क्रमशः दूषित होता चला जाता है । यह निश्चय समझना ।

२२८३—लोग बहुत तरहकी चर्चाएँ करते हैं, परन्तु असली काम तो है, अपने भीतरी और बाहरी जीवनकी जाँच करना और उसपर विचार करना; अपने कार्यों और स्वभावकी ओरसे सदा सजग रहना तथा प्रभुके मार्गको कभी न छोड़ना ।

२२८४—प्रभुकी प्रसन्नताके लिये दरिद्रता और अपमानको सिर चढ़ाना संतोंका काम है ।

२२८५—संसारसे सम्बन्ध तोड़ देना, लोक-संसर्गसे दूर रहना और सदा-सर्वदा सत्य और प्रभुकी तरफ ही झुके रहना सच्चा त्याग है ।

२२८६—जिस मनुष्यमें ईश्वरका स्मरण-चिन्तन करनेकी ताकत है, उस मनुष्यको गरीब या लाचार न समझकर बड़ा धनी समझना और जिसके पास यह सम्पत्ति और शक्ति न हो, वह बड़ा भारी बादशाह होनेपर भी सबसे बड़ा गरीब और अनाथ है ।

२२८७—जो मनुष्य श्रोताओंको मौखिक ज्ञानसे ही ईश्वरप्राप्तिका मार्ग दिखलाता है, वह तो उन्हें दुर्दशामें ही डालता है । जो

मनुष्य अपने उत्तम आचरणद्वारा भगवान्‌का मार्ग दिखलाता है वही सच्चा पथप्रदर्शक है ।

२२८८—हृदयकी सरलता और निर्मलता ईश्वरीय ज्योति है । इनसे ईश्वरका मार्ग दीखता है । क्षमा भगवान्‌की ओर आकर्षित करती है । प्रभुका भय पापसे निवृत्त करता है और प्रभु-महिमाका ध्यान इस सत्यके मार्गको काटता चला जाता है ।

२२८९—किताबोंके पढ़ने-सुननेसे अथवा लिखने-लिखानेसे भगवान् नहीं मिलते । भगवान्‌की प्राप्तिमें तो आत्मनिग्रहसे भरा हुआ भगवान्‌का प्रेम ही महान् कारण है ।

२२९०—निवृत्ति किसे कहते हैं ? भगवान्‌के सिवा सम्पूर्ण विषयोंसे वृत्तियाँ हटा लेनेको ।

२२९१—जो मनुष्य लड़ाईमें दूसरोंको जीतना चाहता है, उसको छत्तीसों हथियारोंके प्राप्त करने और चलानेकी जरूरत पड़ती है, परन्तु अपने मरनेके लिये एक छोटी-सी छुरी काफी है । इसी प्रकार दूसरोंको जीतकर पण्डिताई फैलाने और मान प्राप्त करनेके लिये बहुत-सी विद्याओंकी जरूरत है, परन्तु भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये तो आचरणका सुधार करके उनके नाम जपनेकी विद्या सीख लेना ही काफी है ।

२२९२—जो मनुष्य परमेश्वरको छोड़कर दूसरी बातोंकी चर्चा और चिन्ता करता है, वह अपने कौल-करारको भूला हुआ है ।

२२९३–जो मनुष्य भोगोंके लिये भगवान्‌को बेंच देता है, उससे बढ़कर अभागा और कोई नहीं ।

२२९४–राजा, अफसर और बड़े आदमियोंसे दूर रहना, क्योंकि उनका स्वभाव बालकों-जैसा अस्थिर और उनका प्रताप बौखलाये हुए बाघके समान हानिकारक होता है ।

२२९५–जो मुँहसे बोलना जानता है, वह ठग है; परन्तु जो बोलता है, वैसे ही चलता है, वही पण्डित है ।

२२९६–जो मनुष्य लोगोंके सामने भगवान्‌की बातें करता है, परन्तु हृदयमें मान-बड़ाई और ऐसी-वैसी वस्तुओंको स्थान देता है, उसे देर-सवेर बे-आबरू होकर आफ़तमें पड़ना ही पड़ेगा; फिर जब वह अपनी भूलको देखकर और स्वीकार करके सच्चा पश्चात्ताप करेगा और ऐसे कामोंको छोड़कर प्रभुपरायण बन जायगा, तभी तमाम सङ्कटोंसे छूटेगा ।

२२९७–जो मनुष्य संसार-त्याग और प्रभु-परायणताकी पोशाक पहनकर लोगोंके सामने हाथ फैलाता है, उसमें लोगोंकी श्रद्धा और दया नहीं रह सकती । आखिर, उसे गिरना पड़ता है और उसका जीवन निराशा तथा विपत्तियोंमें ही बीतता है । फिर उसके हाथमें रह जाते हैं—अफसोस और अवगुण ।

२२९८–जो मनुष्य प्रभु और प्रभुके प्रेमियोंका गुण गानेके बदले अपना ही गुण गाना और गवाना शुरू कर देता है, वह बेचारा दयाका पात्र है ।

२२९९—जो मनुष्य अपने चरित्रको सावधानीके साथ जाँच करता है, उसे अपनी बहुत-सी भूलें और पतनके स्थान दिखलायी पड़ने लगते हैं और वह सुधरकर ऊपरकी सीढ़ियोंपर चढ़ सकता है।

२३००—तुम कभी किसी मनुष्यको गिरते-पड़ते देखो तो उसकी ओर तिरस्कार न दिखलाकर दया ही दिखलाना और सावधान रहना कि तुम्हारे जीवनमें कहीं ऐसा मौका न आ जाय।

२३०१—त्याग-वैराग्यका गर्व धनवानोंके धन-मदकी अपेक्षा बहुत अधिक खराब है

२३०२—अपने लिये इस लोक और परलोककी किसी चीजको कभी न चाहना यही सच्ची साधुता है। जिसमें यह साधुता न आ सके, वह तो साधु नामको कलङ्कित करता है।

२३०३—जो मनुष्य भगवत्-प्राप्तिकी साधना न करके संसारकी साधनामें ही डूबा रहता है, उसे लोक-परलोकमें दुःख और नुकसान ही मिलते हैं।

२३०४—उदारताके समान सद्गुण नहीं है और कृपणताके समान कोई अवगुण नहीं है।

२३०५—जीभको काबूमें रक्खो और सारा बल लगाकर मनको वशमें करो।

२३०६—मरे हुए मनुष्य तुम्हारी बाट देख रहे हैं, इसे कभी न भूलना।

२३०७—अगर तुम दुःखसे सर्वथा रहित दशाको प्राप्त करना

चाहते हो तो संसारको प्रणाम करके चल निकलो और स्वर्गसे भी नौ गज दूरसे ही प्रणाम करके हटे रहो। इस लोक और परलोकको छोड़े बिना परमधाम नहीं मिलता।

२३०८–लोग मुझको ईश्वरकी आराधनामें लगा हुआ जानें और देखें तो ठीक है, ऐसे विचारमें कभी न पड़ना। यह दम्भ है और मनका धोखा है। ईश्वरके प्रेममें दिखानेकी क्या जरूरत?

२३०९–लोगोंके सामने अपने दोषोंको स्वीकार करनेमें जिसको जरा भी सङ्कोच नहीं होता। बड़ाईके मौकेपर नहीं, अपमानके मौकेपर भी जो अपने दोषोंके ज़ाहिर हो जानेमें कल्याण देखता है, वही सच्चा साधक है।

२३१०–प्रभुके ही प्रेमपात्र बननेकी ही कोशिश करो। याद रक्खो, संसारके प्रेमपात्र बनने जाओगे तो नरक और अधोगति तैयार है। यह सारकी सार बात है।

२३११–जो भगवान्‌की प्राप्तिके लिये जूझता है, उसकी सहायता करनेमें प्रभुको बड़ा ही आनन्द आता है।

२३१२–साधुओंकी सेवासे तीन गुण मिलते हैं—विनय, प्रभु-भक्ति और उदारता।

२३१३–जिसकी ऐसी इच्छा हो कि प्रभु सदा मेरे साथ रहें, उसको सत्यसे कभी न डिगना चाहिये।

२३१४–प्रभु-प्रेमीके लक्षण क्या हैं? (१) प्रभु-प्रेमीको इस लोक और परलोकके कोई भी पदार्थ अच्छे नहीं लगते, (२)

उसका अन्तःकरण प्रभुकी महिमा और चिन्तनमें डूबा रहता है, (३) उसके मनमें प्रभुकी सेवाको छोड़कर कोई वासना नहीं रहती, (४) अपने परिवारमें रहकर खाता-पीता, बोलता-चालता और उठता-बैठता हुआ भी वह अपनेको विदेशी मेहमान ही मानता है, क्योंकि उसका जिस परम सखा प्रभुके साथ प्रेम है, वह उसे वहाँसे हटने ही नहीं देता इस भेदको कोई अनुभवी ही जानते हैं ।

२३१५—रास्ता खुला है, सत्य चमक रहा है, जो तुम्हें बुला रहा है, वही तुम्हारी प्रार्थना भी सुन रहा है, फिर शङ्काका और वक्त गँवानेका क्या काम ? यह या तो तुम्हारा मोह है अथवा आलसी स्वभाव है ।

२३१६—मनमें बूँदभर भी विषयप्रेम रहे, वहाँतक मनुष्य कैसे कह सकता है कि मैं भगवत्-प्रेमी हूँ, क्योंकि बूँदको समुद्र बनते देर नहीं लगती ।

२३१७—जब भक्त सच्ची निष्ठाके साथ भगवत्-प्रेमकी साधना आरम्भ करता है, तभी उसे उसकी मधुरताका स्वाद आता है ।

२३१८—तुम शान्ति और आनन्द ढूँढ़ते फिरते हो और भटकते हो संसारके विषयोंमें ; मूर्ख, कहाँ पाओगे ? ये दोनों चीजें तो प्रभुके खजानेमें ही मिलती हैं ।

२३१९—तुम अपनेको साधनाके समुद्रमें फेंक दो । सुख-दुःखकी कोई परवा न करो । हिम्मत और धीरज रखना । प्रभु अपने दयाके जहाजको लेकर सदा तुम्हारे साथ हैं ।

२३२०—ईश्वरतक पहुँचनेकी पहली सीढ़ी है—प्रभुकी सत्तापर विश्वास और अन्तिम सीढ़ी है—प्रभुपर विश्वास ।

२३२१—साधक दो प्रकारके होते हैं—संसारी और भगवदीय । संसारी साधक जगत्को ही पहचानते हैं और उसीको खुश करनेमें लगे रहते हैं और भगवदीय साधक प्रभुको पहचानते हैं, इसेलिये वे अपना हर-एक साँस प्रभुकी प्रसन्नताके लिये ही लेते हैं ।

२३२२—उत्तम मनुष्य दो प्रकारके हैं—एक वे जो प्रभुके सिवा और किसी चीजको जानते और चाहते ही नहीं और दूसरे वे जो प्रभुके विधानपर विश्वास करते हैं । इनमें पहले उच्च कोटिके हैं और दूसरे निम्न कोटिके ।

२३२३—ईश्वरभक्तोंकी उत्तम पोशाक तीन तरहकी होती है—पवित्रता, विनय और प्रभुपर दृढ़ विश्वास ।

२३२४—जो मनुष्य भोगोंके सहवासमें रहना चाहता है, वह भगवान्के सहवासके लिये नालायक है ।

२३२५—जब तुम इस बातको समझोगे कि सच्चा कल्याण किस बातमें है और उसीकी खोज करोगे तब तुम्हारा अहङ्कार गलने लगेगा और कमजोरियाँ सामने आ जायँगी । इसी स्थितिमें तुम दीन होकर भगवान्की सहायता चाहोगे । भगवान् तो सहायता देंगे ही ।

२३२६—कौन-सी दीनता ! जो तुम्हारे हृदयको भगवान्के सामने उघाड़ दे, अहङ्कार और घमण्डको चूर-चूर कर दे ।

२३२७—दीनता ईश्वरके प्रति ही होनी चाहिये, भोगोंके प्रति नहीं।

२३२८—जो मनुष्य छोटे पापोंको बहुत मामूली समझकर किये जाता है, वह थोड़े ही समय बाद बड़े-बड़े पापोंसे और अन्तमें महान् विपत्तिसे घिर जाता है।

२३२९—अगर तुम प्रभुके प्रेमी हो अथवा प्रभुकी कृपा प्राप्त करना चाहते हो तो जब भी कोई शुभ कर्म करो तब लोगोंसे वाह-वाही पानेकी, मान मिलनेकी, स्मारक रहनेकी और लोक-प्रतिष्ठाकी किसी भी भावकी और किसी भी वस्तुकी मनमें जरा भी इच्छा न रखना, नहीं तो धोका खाओगे।

२३३०—तुम जो कुछ भी सत्कार्य करो, ऐसा मन लगाकर करो कि सारे जगत्में भगवान्ने वह काम केवल तुमको ही सौंपा है। और सौंपा भी है तुमको अकेले जानकर गुप-चुप करनेके लिये ही।

२३३१—मनुष्यके जीवनमें जितने दिन बाकी हैं, यदि वह उनका भी सदुपयोग करे तो भगवान् उसकी पहलेकी सारी भूलों और पापोंको धोकर उसे क्षमा कर देंगे और अपना लेंगे।

२३३२—आन्तरिक रोगोंके नाशकी पाँच राम-बाण दवाएँ हैं— (१) सत्सङ्ग, (२) सच्छास्त्रोंका अध्ययन, (३) अल्प आहार-विहार, (४) प्रातःकालकी और रात्रिकी एकान्त उपासना और (५) जो कुछ भी साधना करनी हो, उसे बड़ी एकाग्रतासे और सारा बल लगाकर करनेकी पद्धति।

२३३३–सदाचारके दो प्रकार हैं–जनसाधारणके प्रति धर्म और न्यायका व्यवहार–यह वाहरी सदाचार है। और ध्यान, भजन, श्रद्धा, प्रार्थना, सन्तोप, कृतज्ञता, दर्शनके लिये आतुरता, प्रेम और आज्ञापालन तथा ये सब-के-सब केवल प्रभुके लिये ही–यह आन्तरिक सदाचार है।

२३३४–प्रभुप्रेमके चार लक्षण हैं—(१) आडम्बरका अभाव, (२) निरन्तर प्रभुका चिन्तन, (३) एकनिष्ठ अनन्य-प्रेम और (४) मौनभावका सेवन।

२३३५–सच्चा साधक प्रभुप्रेमी नहीं बन जाता वहाँतक लोगोंको मुँह नहीं दिखाता। लोग बुलवाना चाहें तो भी नहीं बोलता, विपत्तिमें खेद नहीं करता, सम्पत्तिमें फ़ूलता नहीं, डरता नहीं और डराता भी नहीं, किसीको वचन देता नहीं और किसीसे वचन माँगता भी नहीं। गुप-चुप अपनी सीधी राह जाता है। यह साधककी बात है, सिद्धकी सिद्ध जानें।

२३३६–बुरे आचरणवाले लंवे जीवनकी अपेक्षा शुभ आचरणवाला थोड़ा जीवन हजार दर्जे बेहतर है।

२३३७–भय कई तरहके हैं; इसलिये जो भय तुमको पापों-से दूर रक्खे, उस भयकी भी इच्छा करनी चाहिये।

२३३८–आशाएँ भी बहुत प्रकारकी हैं, परन्तु जो आशा तुम्हें प्रभुकी राहपर चलावे, उसे तो मित्र ही मानना।

२३३९–जो मनुष्य दुनियाकी बातें सुनता रहता है और

विषय-प्रेमियोंमें बसता है, उसका अन्तःकरण साधनाका स्वाद नहीं ले सकता ।

२३४०—अच्छी स्थिति हो जायगी, दुनियाका कोई दुःख नहीं रहेगा, भगवान् हमारी हर-एक इच्छाको पूर्ण करते रहेंगे तब हम भजन करेंगे, ऐसा मानना तो मनका धोका है । तुम भगवान्‌का भजन तो चाहते नहीं, चाहते हो संसारी आराम ।

२३४१—कोई अगर यों समझता है कि मैं अपने ही साधनके बलपर प्रभुको पा लूँगा तो वह अपनेको मिथ्या अभिमानके गड्ढेमें डालता है; और जो मनुष्य बिना ही साधन किये प्रभुको पाना चाहता है, वह तो दुराशामें ही डूबता है ।

२३४२—संसारकी सारी स्थितियोंसे अन्तःकरणको मुक्त करके सच्चिदानन्द प्रभुमें ही शान्ति खोजना और प्राप्त करना—मनुष्यका सच्चा धर्म यही है ।

२३४३—भगवान्‌के गुणानुवाद तीन प्रकारसे गाये जाते हैं—(१) केवल जीभसे, अन्तःकरणको साथ जोड़े बिना ही, (२) जीभसे अन्तःकरणको साथ जोड़कर, ऐसे ही गुणगानसे शीघ्र प्रभु-कृपा मिलती है, (३) केवल अन्तःकरणसे, मतलब यह कि प्रभुके गुणगानमें मन, बुद्धिका गर्क हो जाना ही सर्वोत्तम गुणगान है । ऐसे गुणगानकी महिमा प्रभु ही जानते हैं।

२३४४—जो ज्ञान तुमको धर्ममें और सदाचारमें प्रेरित करता है, वही सच्चा ज्ञान है और जो विश्वास प्रभुके प्रति अधिक-से-अधिक नम्र बनाता है, वही सच्चा विश्वास है ।

२३४५–जिनमें भगवान्‌को छोड़कर किसी भी वस्तुमें जरा भी अनुराग नहीं रहता, वे ही सच्चे महाजन या महापुरुष हैं।

२३४६–जबतक मनुष्य पश्चात्तापके लिये तैयार न हो, तबतक क्षमाकी याचना न करे और जबतक तन-मनसे उपासना न हो तबतक न तो पाप दूर होते हैं और न मन ही असली राहपर आता है।

२३४७–संसार कुत्तोंकी चाट-जैसा है। बहुत-से कुत्ते एक जगह इकट्ठे होकर पत्तल चाटा करते हैं, परन्तु जो मनुष्य निरन्तर भोग-विलासमें रचा-पचा रहता है वह तो कुत्तोंसे भी अधम है। क्योंकि कुत्ते तो खा लेनेके बाद चाटसे दूर हट जाते हैं, पर यह मनुष्य तो वहाँ-का-वहाँ ही खड़ा रहता है।

२३४८–दैवीसम्पत्तिमें प्रेम होना प्रभुप्रेमका पूर्वरूप है।

२३४९–पैसोंको बुरे उपयोगसे रोकनेकी अपेक्षा जीभको बुरे उपयोगसे रोकना बहुत कठिन है।

२३५०–संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसमें ईश्वर न दीखता हो।

२३५१–खबरदार! एक पैसा भी कमाओ तो न्यायसे कमाना और कहीं कुछ खर्च करना तो अच्छे मार्गमें ही खर्च करना।

२३५२–दो बातोंपर पूरा विश्वास रखना–(१) तुम्हारे लिये जो कुछ रचा हुआ है, तुम दूर भागोगे तो भी वह तुम्हें मिलेगा ही और (२) जो दूसरेके लिये रचा गया है, वह करोड़ों यतन करनेपर भी तुम्हें नहीं मिलेगा।

२३५३–तुम बड़े खराब जमानेमें आ पड़े हो। इस जमानेके आदमी काम नहीं करते, पर बोलते रहते हैं और धर्मका पालन करनेके बदले सूखे ज्ञानके पढ़ने-पढ़ानेमें ही डूबे रहते हैं।

२३५४–जहाँ खुद प्रभुकी प्रसन्नता खोजनी और पानी चाहिये वहाँ आज लोग दुनियाकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये दौड़-धूप कर रहे हैं और चिन्तामणि-जैसी प्रभु-कृपाको भूल रहे हैं।

२३५५–इस जमानेमें चुपचाप भगवान्‌का स्मरण करना और उनकी कृपापर विश्वास करके अपने जीवनको उन्हींपर न्योछावर कर देना उचित है। दयामय आप ही सम्हालेंगे।

२३५६–अधिक परिश्रमसे स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता; स्वास्थ्यको नुकसान पहुँचता है घबड़ाहट, शोक, भय, चिन्ता और असन्तोषसे।

२३५७–जबतक बात तुम्हारे मुँहसे नहीं निकली तबतक तो वह तुम्हारे वशमें है, पर ज्यों ही मुँहसे निकल गयी कि तुम उसके वशमें हो गये।

२३५८–यदि जीभको वशमें कर लो तो दूसरी इन्द्रियाँ सहज ही तुम्हारे वश हो जायँ और दुनियाकी शत्रुतासे तुम बच जाओ।

२३५९–दो आदमी बात करते हों तो उनके बीचमें न बोलो, अपनी बुद्धिमानी दिखलानेका प्रयत्न मत करो; ऐसी बात तो बोलो ही मत जिससे उन लोगोंकी बात कटे या उन्हें नीचा देखना पड़े, अपनी और अपने वंशकी बड़ाई मत करो, दूसरा कोई करता हो तो उसे बुरा मत कहो, चिल्लाकर न बोलो, ऐसी

आवाज और ऐसे भावसे न बोलो जिसमें सुननेवालेको तुम्हारी हुकूमत या अपना तिरस्कार प्रतीत हो।

२३६०–अपने बन्धु-बान्धव और पड़ोसियोंका उनकी सच्ची प्रशंसा करनेके अवसरको छोड़कर जहाँतक बने कभी जिकर ही न करो।

२३६१–मुँहसे झूठ तो कभी बोलो ही मत, पर सत्य भी अनावश्यक न बोलो। बहुत बोलनेसे वाणीकी शक्ति नष्ट होती है।

२३६२–भगवान्‌का नाम और उनके गुणोंकी चर्चा करते रहो और इसको भी कहनेकी अपेक्षा मन-ही-मन करो तो और भी अच्छा है।

२३६३–भगवान्‌ने मनुष्यको आँख और कान तो दो-दो दिये हैं, पर जीभ एक ही। इसलिये उचित है कि चार बातोंको देख-सुनकर एक बात बोलो।

२३६४–जिस तरह वृक्षमें पत्ते बहुत हो जानेपर फल कम लगते हैं, इसी प्रकार जो बहुत बोलता है उससे काम बहुत कम होता है।

२३६५–बहुत प्रश्न करना बुद्धिमानी नहीं है। महात्मासे एक ही बात पूछ लो और जी-जानसे उसका पालन करो।

२३६६–मूर्ख घंटे भरमें इतने प्रश्न कर बैठता है जिनका उत्तर बुद्धिमान् पुरुष सात वर्षमें भी नहीं दे सकता।

२३६७–बिना पूछे न उपदेश करो और न सलाह देने जाओ।

२३६८—जो मनुष्य अच्छी सलाह नहीं सुनता उसको धिक्कार सुनना पड़ता है।

२३६९—मूर्खताके बारह लक्षण हैं—(१) भगवान्‌को भूलना, (२) समयकी कीमत न समझना, (३) अपनेको बड़ा मानना, (४) एकान्तमें बात करते हुए लोगोंके बीच जा बैठना, (५) बड़े लोगोंकी दिल्लगी उड़ाना, (६) अपनी हैसियतसे ज्यादा खर्च करना, (७) सभामें ऊँची जगह बैठनेकी कोशिश करना, (८) बहुत बोलना और ऐसा बोलना जो दूसरोंको अखरे, (९) दूसरोंसे उधार लेना और उसे चुकानेकी चिन्ता न रखना, (१०) किसीके भोजमें बिना न्यौते जा पहुँचना, (११) अतिथि होकर घरके मालिकपर हुकूमत करना और (१२) स्त्रियोंके अङ्ग देखनेकी चेष्टा करना। इन बारह दोषोंसे बचनेवाला मनुष्य बहुत-सी आफतोंसे अनायास ही बच जाता है।

२३७०—जहाँतक हो सके मित्रोंमें लेन-देन मत रक्खो।

२३७१—अपनी कमाईमेंसे दसवाँ हिस्सा, नहीं तो कम-से-कम सोलहवाँ हिस्सा गरीबोंको बाँटनेके लिये जरूर अलग कर रक्खो। नहीं तो कमाई अशुद्ध होगी और उसकी बरकत नहीं होगी।

२३७२—किसीको दान देकर यह मत समझो कि तुमने उसपर कोई अहसान किया है। उसे दिया है भगवान्‌ने ही और वही दिया है जिसके पानेका वह अधिकारी था; तुम तो केवल निमित्त मात्र हो।

२३७३–दरिद्र, अपाहिज, रोगी, अनाथ और विपत्तिमें पड़े हुए जीवोंको अपनेसे छोटा मत समझो, उनसे घृणा न करो, उनकी सेवा करो और उन्हें सुख पहुँचाओ। भगवान् न करें, तुम्हारी भी जीवनमें वैसी ही अवस्था हो सकती है।

२३७४–अपनी तारीफ सुनकर उसका रस न लो और निन्दा सुनकर विषाद अथवा क्रोध न करो।

२३७५–दूसरोंके गुण सुनकर सुखी होओ और उन गुणोंको अपनेमें लानेकी चेष्टा करो।

२३७६–दूसरोंके अवगुण सुनकर खुश न होओ और स्वयं सदा अवगुणोंसे बचते रहो।

२३७७–जो सज्जनोंको देखकर, दूसरोंके सद्गुणोंकी बात सुनकर और दूसरोंको सुखी देखकर प्रसन्न होते हैं, उनपर भगवान्‌की कृपा बरसती है।

२३७८–कामना दासी बनकर रहती है तो सुख देती है और रानी बनकर रहती है तो दुःख देती है।

२३७९–जिसने कामनापर विजय प्राप्त कर ली वह रङ्क होनेपर भी राजा है और जो कामनाका गुलाम है वह बादशाह होनेपर भी कंगाल है।

२३८०–अभिमान बहुत बड़ा शत्रु है। जिसके अंदर अभिमान आ बसता है उसका सद्गुणरूपी धन नष्ट हो जाता है।

२३८१–यह सोचो कि तुम्हारी बिसात ही क्या है, भगवान्-

की दयाके बिना अपने पुरुषार्थसे तुम क्या कर सकते हो ? जो कुछ होता है उन्हींकी शक्तिसे, तुम तो बिल्कुल नाचीज हो । बार-बार ऐसा विचार करनेसे अभिमान चला जाता है ।

२३८२—भगवान्‌को अभिमानसे द्वेष है और दीनतासे प्यार । याद रक्खो, भगवान्‌का नाम दीनबन्धु है, अभिमानी-बन्धु नहीं !

२३८३—बड़ा आदमी वह है कि जिसके गुणोंके कारण दूसरे लोग उसको बड़ा मानते हों । आप ही अपनेको बड़ा मानना तो मूर्खता है ।

२३८४—सबसे बड़े भगवान् हैं; परन्तु उनकी बड़ाई भी तभी फैली जब भृगुजीकी लातको उन्होंने खुशी-खुशी सह लिया ।

२३८५—मन पाँच प्रकारके होते हैं—(१) शत्रु मन जैसे नास्तिकोंका, (२) रोगी मन जैसे पापियोंका, (३) हिंसक मन जैसे कसाइयोंका, (४) अचेत मन जैसे भोगियोंका और (५) शुद्ध मन जैसे संतोंका ।

२३८६—विपत्तिसे घबराओ मत । विपत्ति कड़वी जरूर होती है, पर याद रक्खो, चिरायता और नीम-जैसी कड़वी चीजोंसे ही तापका नाश होकर शरीर निर्मल होता है ।

२३८७—विपत्ति तुम्हारे प्रेमकी कसौटी है । विपत्तिमें पड़े हुए बन्धु-बान्धवोंमें तुम्हारा प्रेम बढ़े और वह तुम्हें निरभिमान बनाकर आदरके साथ उनकी सेवा करनेको मजबूर कर दे, तभी समझो कि तुम्हारा प्रेम असली है ।

२३८८–जिस तरह खरादे बिना सुन्दर मूर्ति नहीं बनती, उसी तरह विपत्तिसे गढ़े बिना मनुष्यका हृदय सुन्दर नहीं बनता ।

२३८९–विपत्तिमें कभी निराश मत होओ । याद रक्खो, अन्न उपजाकर संसारको सुखी कर देनेवाली जलकी बूँदें काली घटासे ही बरसती हैं ।

२३९०–विपत्ति असलमें उन्हींको विशेष दुःख देती है, जो उससे डरते हैं । जिसका मन दृढ़ हो, संसारकी अनित्यताका अनुभव करता हो और हरेक बातमें भगवान्‌की दया देखकर निडर रहता हो, उसके लिये विपत्ति फूलोंकी सेजके समान है ।

२३९१–विपत्ति आनेपर यदि तुम उसके सहन करनेकी शक्ति रखते हो तो घबड़ाओ मत; अपना बल लगाकर उसे निकाल दो, और यदि तुम्हारी ताकत उसे नाश नहीं कर सकती तब भी रोओ मत । जरूर एक बार विपत्ति तुम्हें परेशान करना चाहेगी, परन्तु फिर आप ही नष्ट हो जायगी ।

२३९२–जैसे रास्तेमें दूरसे पहाड़ियोंको देखकर मुसाफिर घबड़ा उठता है कि मैं इन्हें कैसे पार करूँगा, लेकिन पास पहुँचनेपर वे उतनी कठिन नहीं मालूम होतीं; यही हाल विपत्तियोंका है । मनुष्य दूरसे उन्हें देखकर घबड़ा उठता है और दुखी होता है, लेकिन जब वे ही सिरपर आ पड़ती हैं तो धीरज रखनेसे थोड़ी-सी पीड़ा पहुँचाकर ही नष्ट हो जाती है ।

२३९३–विपत्ति पड़नेपर पाँच प्रकारसे विचार करो—
१–तुम्हारे अपने ही कर्मका फल है, इसे भोग लोगे तो तुम कर्मके

एक कठिन बन्धनसे छूट जाओगे। २–विपत्ति तुम्हारे विश्वासकी कसौटी है, इसमें न घबराओगे तो तुम्हें भगवान्‌की कृपा प्राप्त होगी। ३–विपत्ति मङ्गलमय भगवान्‌का विधान है और उनका विधान कल्याणकारी ही होता है। इस विपत्तिमें भी तुम्हारा कल्याण ही भरा है। ४–विपत्तिके रूपमें जो कुछ तुम्हें प्राप्त होता है, यह ऐसा ही होनेको था; नयी चीज कुछ भी नहीं बन रही है; भगवान्‌का पहलेसे रचकर रक्खा हुआ दृश्य सामने आता है। ५–जिस देहको, जिस नामको और जिस नाम तथा देहके सम्बन्धको सच्चा मानकर तुम विपत्तिसे घबड़ाते हो वह देह, नाम और सम्बन्ध—सब आरोपमात्र हैं; इस जन्मसे पहले भी तुम्हारा नाम, रूप और सम्बन्ध था, परन्तु आज उससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं है; यही हाल इसका भी है; फिर विपत्तिमें घबड़ाना तो मूर्खता ही है; क्योंकि विपत्तिका अनुभव देह, नाम और इनके सम्बन्धको लेकर ही होता है।

२३९४–असली बात तो यह है कि विधान और विधाता एक ही हैं; विपत्तिके रूपमें सचमुच भगवान् ही तुम्हारे सामने आते हैं।

२३९५–चार बातोंको याद रक्खो—बड़े-बूढ़ोंका आदर करना, छोटोंकी रक्षा और उनपर स्नेह करना, बुद्धिमानोंसे सलाह लेना और मूर्खोंके साथ कभी नहीं उलझना।

२३९६–चार चीजें पहले दुर्बल दीखती हैं, परन्तु परवा न करनेसे बहुत बढ़कर दुःखके गड्ढेमें डाल देती हैं—अग्नि, रोग, ऋण और पाप।

२३९७—चार चीजोंका सदा सेवन करना चाहिये—सत्सङ्ग, सन्तोष, दान और दया।

२३९८—चार अवस्थाओंमें आदमी बिगड़ता है। इसलिये इनमें सावधान रहना चाहिये—जवानी, धन, अधिकार और अविवेक।

२३९९—चार चीजें मनुष्यको बड़े भाग्यसे मिलती हैं—भगवान्‌को याद रखनेकी लगन, संतोंकी सङ्गति, चरित्रकी निर्मलता और उदारता।

२४००—चार गुण बहुत दुर्लभ हैं—धनमें पवित्रता, दानमें विनय, वीरतामें दया और अधिकारमें निरभिमानता।

२४०१—चार चीजोंपर भरोसा मत करो—बिना जीता हुआ मन, शत्रुकी प्रीति, स्वार्थीकी खुशामद और बाजारू ज्योतिषियोंकी भविष्य-वाणी।

२४०२—चार चीजोंपर भरोसा रक्खो—भगवान्, सत्य, पुरुषार्थ और स्वार्थहीन मित्र।

२४०३—चार चीजें जाकर फिर नहीं लौटतीं—मुँहसे निकली हुई बात, छूटा हुआ तीर, बीती हुई उम्र और मिटा हुआ अज्ञान।

२४०४—चार बातोंको याद रक्खो—दूसरेके द्वारा किया हुआ अपनेपर उपकार, अपनेद्वारा किया हुआ दूसरेका अपकार, मृत्यु और भगवान्।

२४०५—चारके सङ्गसे बचनेकी चेष्टा रक्खो—नास्तिक, अन्यायका धन, जवान स्त्री और दूसरेकी बुराई ।

२४०६—चार चीजें अपने-आप आती हैं—सुख, दुःख, जीविका और मृत्यु ।

२४०७—चारका परिचय चार अवस्थाओंमें मिलता है—दरिद्रतामें मित्रका, निर्धनतामें स्त्रीका, रणमें शूरवीरका और बदनामीमें बन्धु-बान्धवोंका ।

२४०८—धनके साथ दो लुटेरे लगे रहते हैं, जो निरन्तर दैवी गुणोंको लूटते रहते हैं—एक अभिमान और दूसरा खुशामदी ।

२४०९—संसारके लोग चञ्चल लक्ष्मीके पीछे जितने पचते हैं, उससे सवाँ हिस्सा परिश्रम भी यदि परमार्थके लिये करें तो उन्हें अचल सम्पत्ति मिल सकती है ।

२४१०—पापकर्म सभीके लिये बुरा है, परन्तु विद्वान्‌के लिये तो बहुत बुरा है; क्योंकि अन्धा मूर्ख तो आँख न होनेसे राह भूलता है, पर विद्वान् दोनों आँख होते हुए भी कुएँमें गिरता है ।

२४११—तुमसे कोई वैर रखता हो तो तुम केवल इतना देखो कि तुम्हारी किसी क्रियासे उसकी हानि तो नहीं हुई, उसे दुःख तो नहीं पहुँचा । यदि ऐसा नहीं है तो अपने मनको दुखी मत करो और उसपर प्रेम तथा दया बनाये रक्खो ।

२४१२—तुम्हारा कोई पूर्वकर्म जबतक कारण नहीं होगा तबतक तुम्हें कोई दुःख नहीं पहुँचा सकता । अगर किसीके द्वारा

दुःख मिलता है तो यह समझो कि वह बेचारा तो केवल निमित्त बना है और दयाका पात्र है।

२४१३-क्रोध चार तरहका होता है—(१) लोहेमें लकीर-सा, (२) पत्थरमें लकीर-सा, (३) बालूमें लकीर-सा और (४) पानीमें लकीर-सा। लोहमें लकीर-सा तामसी मनुष्योंका होता है जो जन्म-जन्मान्तरतक चलता है। पत्थरमें लकीर-सा राजसी पुरुषोंका होता है जो कुछ दिनोंमें मिट जाता है। बालूमें लकीर-सा सात्त्विक सज्जनोंका होता है जो हवाके झोंकेसे बालूकी लकीरकी भाँति तुरन्त नष्ट हो जाता है और पानीमें लकीर-सा संतोंका होता है जो आता-सा दीखता है, पर वास्तवमें होता नहीं।

२४१४-बुरी बातोंसे बचनेके ये ग्यारह उपाय हैं—भगवान्‌से प्रार्थना करना, सत्सङ्ग करना, कुसङ्गसे सर्वथा दूर रहना, आलस्य और प्रमाद न करना, नाच, तमाशा, नाटकादि न देखना, बुरी किताबें न पढ़ना, मन और इन्द्रियोंको बुरे विषयोंकी ओर जानेसे रोकते रहना, एकान्तमें मन और इन्द्रियोंकी विशेष रखवाली करना, महात्माओंके वचनों और शास्त्रोंकी शिक्षाओंको याद रखना, अपनी स्थितिको सर्वथा देखते रहना तथा मृत्यु, नरकोंकी यन्त्रणा और बुरी योनियोंके कष्टकी बातोंको याद करते रहना।

२४१५-बुद्धिमान् वह है जो जीवनमें सबसे जरूरी कामको सबसे पहले करता है। मनुष्यके जीवनमें सबसे जरूरी काम है—मालिकका चिन्तन।

२४१६—मनुष्यको चाहिये कि वह दूसरेको जो उपदेश करे वैसा पहले अपनेको बना ले।

२४१७—हर्षके साथ शोक और भय इस प्रकार लगे हैं जिस प्रकार प्रकाशके साथ छाया।

२४१८—सच्चा सुखी वही है जिसकी दृष्टिमें हर्ष-शोक दोनों समान हैं।

२४१९—संसारमें तीन बातें बड़ी कठिन हैं, जो संतोंमें ही होती हैं—निर्धनतामें उदारता, एकान्तमें इन्द्रियनिग्रह और भयके स्थानमें सत्य।

२४२०—अच्छे कर्मोंमें लगे रहो। कोरे मनके लड्डुओंमें लीन मत रहो।

२४२१—संसारके सुख क्षणभङ्गुर हैं। तबतक किसीको सुखी नहीं समझना चाहिये जबतक कि वह सुखकी स्थितिमें मर न जाय।

२४२२—मरनेके पहले किसीको महात्मा न समझो। पता नहीं मनुष्य कब गिर जाय। संसारमें जगह-जगह फिसलान भरी है।

२४२३—जिसने कभी दुःख नहीं उठाया वह सबसे बड़ा दुखिया है और जिसने कभी पीर न सही वह सबसे बढ़कर बेपीर है; क्योंकि ऐसा हुए बिना दूसरोंके दुःख और पीड़ाका अनुभव नहीं हो सकता और जो दूसरोंके दुःखका अनुभव नहीं करता उसे परिणाममें दुखी होना ही पड़ता है

२४२४–और सब बातोंको कलपर छोड़ दो, परन्तु भगवान्का स्मरण और परोपकारमें एक मिनिटकी भी देर न करो ।

२४२५–जैसे हम द्वेषके द्वारा जगत्को नरकरूप बना देते हैं वैसे ही प्रेमसे उसे स्वर्गसे भी बढ़कर बना सकते हैं ।

२४२६–क्रोध दिलानेपर भी चुप रहना बुद्धिमानी और महत्त्व है । महिमा जीभके रोकनेमें है और इससे भी बढ़कर महत्त्व मनके वेगको रोकनेमें है ।

२४२७–बदला लेनेका ध्यान छोड़कर क्षमा करना अन्धकारसे प्रकाशमें आने और नरकके स्थानपर सदेह ही स्वर्ग भोगनेके समान है ।

२४२८–मनको सदैव शान्त रक्खो; चाहे तुम्हारे चारों ओर कितने ही विषाद हों और कितने ही क्लेशके कारण मौजूद हों ।

२४२९–तीन काम बड़े महत्त्वके हैं—प्राणिमात्रपर दया करके उनके दुःखोंको दूर करना, निर्बलों और असहायोंकी सहायता करना और शत्रुको भी दुःख तथा निन्दासे बचाना ।

२४३०–जो दूसरोंके दोषोंकी चर्चा करता है वह अपना ही दोष प्रकट करता है ।

२४३१–तीन कार्य मुख्य हैं—पापमें अत्यन्त ग्लानि, धर्मके लिये कभी न बुझनेवाली प्यास और प्राणिमात्रके साथ हृदयकी सहानुभूति ।

२४३२–जैसे जलते हुए पेड़पर पक्षी नहीं रहते वैसे ही

जिस अन्तःकरणमें संसारके भोगोंकी आग सदा जलती रहती है उसमें सत्य, सहानुभूति और प्रेम आदि नहीं टिकते ।

२४३३—आकाशमें उड़ना आदि तो इन्द्रजालके तमाशे हैं । इनसे परलोकमें कोई सहारा नहीं मिलता । महात्माओंकी सच्ची सिद्धि तो यह है कि उनके सङ्ग और उपदेशसे पापी मनुष्य सदाचारी हो जाता है और परमार्थके मार्गपर लगकर संत बन जाता है ।

२४३४—जो मनुष्य पढ़कर उसका धारण नहीं करता उसके लिये विद्या भार है । उसके सङ्गसे किसीको लाभ नहीं होता ।

२४३५—जो मनुष्य अपना कल्याण नहीं चाहता, पापके फल दुःखको नहीं मानता और ईश्वरको माननेमें भी आनाकानी करता है उसको उपदेश करना व्यर्थ है ।

२४३६—कामनाओंका दास भी बना रहे और सुख भी प्राप्त कर ले—यह असम्भव है ।

२४३७—भगवान्‌के प्रेम और भोगोंके प्रेममें इतना ही अन्तर है जितना सूर्य और अन्धकारमें ।

२४३८—ईश्वरकी सत्ता माने बिना धर्मकी जड़ ही सूख जाती है । ऐसा धर्म, जिसमें ईश्वरको स्थान नहीं है, घोर अधर्म है ।

२४३९—जो इच्छाएँ तुम्हारे आडम्बर और बनावटीपनको हटाती हैं वे ही शुभ इच्छाएँ हैं ।

२४४०—अपने नामकी बड़ाई चाहनेमें विरक्त भी फँस जाते हैं और अपना दोष प्रकट करनेवाले फँसे भी छूट जाते हैं ।

२४४१—वर्तमान जीवनको भूलकर भावनामय भावी जीवनपर विश्वास न करो, चाहे वह कितना ही आनन्दमय प्रतीत क्यों न होता हो ।

२४४२—कहनेसे कुछ भी काम नहीं सरता; काम चलता है करनेसे ।

२४४३—कहनेवाले वक्ताके जीवनको मत देखो; वह जो कहता है उसपर गौर करो ।

२४४४—अपना कोई तृणके समान उपकार करे तो उसे पहाड़के समान समझो और तुम पहाड़के समान करो तो भी उसे वालूके कणसे भी कम मानो ।

२४४५—जो काम तुम स्वयं नहीं चाहते वह दूसरोंके लिये भी मत करो ।

२४४६—किसी दूसरेका काम करना स्वीकार कर लो तो उसे वैसे ही उत्साह और लगनसे करो जैसा अपना करते हो ।

२४४७—धनकी प्यास जलकी प्याससे कहीं बढ़कर दुःख-दायिनी है । जलकी प्यास तो जल मिल जानेपर शान्त हो जाती है, परन्तु धनकी तृष्णा धन मिलनेपर और भी बढ़ती है ।

२४४८—सहज ही अपने पास आनेवाले जिज्ञासुओंको अवकाशके अनुसार उपदेश करो, परन्तु उपदेशके लिये ही कमर कसकर न बैठो । ऐसा करना अपने अमूल्य समयको खोना है ।

२४४९—जो धर्मके नामपर छल या पाप करता है अथवा

झूठे मतका प्रचार करके लोगोंको ठगता है उसके समान दूसरा कोई पापी नहीं।

२४५०—दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी होनेवाला लोहेके समान है; दुःखमें भी सुखी रहनेवाला सोनेके सदृश है, दुःख-सुखमें बराबर रहनेवाला रत्नके तुल्य है और जो सुख-दुःखकी भावनासे भी परे है वह सच्चा सम्राट् है।

२४५१—शास्त्रकी बातें यदि भूल जायँ तो फिर याद कर ली जा सकती हैं परन्तु सदाचारसे एक बार भी भ्रष्ट हो जानेपर सम्हलना मुश्किल होता है।

२४५२—अधर्मके द्वारा इकट्ठी की हुई सम्पत्तिकी अपेक्षा सदाचारी पुरुषकी दरिद्रता कहीं अच्छी है।

२४५३—लोगोंको रुलाकर जो सम्पत्ति इकट्ठी की जाती है वह आर्तस्वरसे रोनेकी आवाजके साथ ही विदा हो जाती है। पर जो धर्मके द्वारा सञ्चित होती है वह बीचमें किसी कारणवश क्षीण हो जानेपर भी अन्तमें खूब फूलती-फलती है।

२४५४—जब तुम दिलके मकर छोड़कर सीधे हो जाओगे तब तुम्हारे सारे काम अपने-आप ही सीधे हो जायँगे।

२४५५—ईश्वरका साक्षात्कार तब होगा जब संसारकी दृष्टिसे प्रतीत होनेवाले बड़े-से-बड़े वैरियोंको भी क्षमा करनेका तुम्हारा स्वभाव बन जायगा।

२४५६—देह, बुद्धि, लेख, व्याख्यान, घर, कुटुम्ब, यश और प्रतिष्ठा आदि प्रत्येक दावेका त्याग ही वेदान्त है।

२४५७, . . . (. .) दूसरेकी निन्दाको झूठा समझना और उसकी कहीं चर्चा भी नहीं करना, (२) अपनी प्रशंसाका न सुहाना और दूसरेकी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना, (३) दूसरेको सुख पहुँचाना और उसको अपने सुखसे भी अधिक समझना, (४) छोटोंके प्रति कोमलता और दयाका तथा बड़ोंके प्रति आदरका वर्ताव करना और (५) खेलमें भी किसीके साथ चालाकी न करना।

२४५८–वस्त्र और किसी वस्तुविशेषसे सौन्दर्य उधार लेनेकी चेष्टा न करो, हृदयकी शान्ति और प्रसन्नता, शरीरकी नीरोगता और चेहरेपर सात्त्विक सरल हँसी ही सच्चा सौन्दर्य है।

२४५९–जिस मनुष्यकी अच्छे कर्म करनेपर भी निन्दा होती है, वह बड़ा भाग्यवान् है।

२४६०–जो अपने अच्छे कर्मोंके वदलेमें धन्यवाद, वाहवाही अथवा किसी और फलकी चाह करता है वह अत्यन्त अभागा है; क्योंकि वह वहुमूल्य सत्कर्मोंको थोड़ी कीमतपर वेच डालता है।

२४६१–जिस मनुष्यकी भलाई की हो उसे सुखी देखनेमें प्रसन्नताका होना ही भलाई करनेवालेके लिये पूरा पुरस्कार है।

२४६२–सबके साथ भलाई करो; यदि तुम्हारे साथ कोई बुराई करता है तो उसकी जिम्मेवारी उसपर है, तुम उसकी देखा-देखी अपने मनको कलुषित करके कर्तव्यसे न हटो।

२४६३–दूसरोंको सुख पहुँचाना और उनका हित करना

भगवान्‌ने तुम्हारे जिम्मे दिया है। दण्ड देना तो उनका अपना काम है। किसीको दण्ड देनेकी चाह करके भगवान्‌के आसनको छीननेकी चेष्टा मत करो।

२४६४—शुभ कर्म करनेका स्वभाव ऐसा सुन्दर धन है कि जिसे न शत्रु छीन सकता है और न चोर चुरा सकता है।

२४६५—प्रेम सदा ही सहिष्णु और मधुर है। प्रेममें द्वेष, आत्मश्लाघा, गर्व, अनिष्ट आचरण, स्वार्थ, क्रोध, अपकार और अधर्म नहीं होता।

२४६६—शत्रुपर भी प्रेम रक्खो; भगवान्‌को प्रसन्न करनेका यह बड़ा अच्छा साधन है।

२४६७—वे मनुष्य धन्य हैं जिनमें दया है; क्योंकि परम पिताकी दयाके वे ही भागी हैं।

२४६८—शत्रुको प्यार करो, अपराधीको क्षमा करो, प्रभुके लिये दान दो और अपने लिये कुछ भी न चाहो।

२४६९—प्रभु कहते हैं कि जो नीच-से-नीच मनुष्यकी सेवा करता है वही मेरी सेवा करता है।

२४७०—जो किसीको दुःखमें देखकर उसपर दया नहीं करता, वह मालिकके कोपका पात्र होता है।

२४७१—जो सच्चे हृदयके साधु होते हैं वे मनको पीसकर चाले हुए मैदेके समान कर देते हैं जिसमें मान या गर्वकी किरकिरी नहीं रह जाती।

२४७२—मनकी तरङ्गोंको रोकनेमें बड़ा आनन्द है। इस आनन्दका अनुभव नहीं हुआ इसीलिये मनुष्य विषयोंके आनन्दके पीछे भटकता है।

२४७३—मनकी तरङ्गोंके साथ चलनेवाला वैसे ही बह जाता है जैसे हवाके झोंकोंसे बिना पतवारकी नाव।

२४७४—तुम्हारे बलपर मन वशमें नहीं होगा, भगवान्के बलपर विश्वास करो और चुपचाप उनकी याद करते रहो।

२४७५—भगवान्की यादसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और उनको भूल जानेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है।

२४७६—पापका फल जो करनेवालेको होता है वही प्रायः उसको प्रकट करनेवालेको होता है, इसलिये दूसरेके पापोंको प्रकट न करो।

२४७७—जो पाप प्रकट हो जाते हैं वे बदनामी देकर नष्ट हो जाते हैं इसलिये हिम्मत करके अपने पापोंको प्रकट कर दो और बदनामीको सिर चढ़ाकर सुखी हो जाओ।

२४७८—भजन होता है गरजसे। इसमें प्रारब्ध माननेवाला मूर्ख है।

२४७९—भजन न करके जो विषयोंमें वैराग्य चाहता है वह बड़े धोखेमें है। भजन करो तो विषयोंमें वैराग्य आप ही होगा।

२४८०—भगवान्के प्रेमीकी यह पहचान है कि वह भगवान्के लिये सदा व्याकुल रहता है।

२४८१–विरह-तापसे जबतक हृदय नहीं जलने लगता तब-तक भगवान्‌की मुख-माधुरीके दर्शन नहीं होते ।

२४८२–जैसे भूखा अन्नके लिये और प्यासा जलके लिये जलता रहता है, उससे भी अधिक ताप तुम्हारे हृदयमें भगवान्‌के लिये होना चाहिये ।

२४८३–सच्चा गुरु वही है जो भगवान्‌की प्राप्ति करवा दे । शिष्यको चाहिये कि वह गुरुकी आज्ञाका पालन करे, केवल गुरु कहनेमात्रसे काम नहीं चलता ।

२४८४–भगवान्‌को छोड़कर केवल दैवी गुणोंसे मोक्षकी आशा रखना बच्चोंकी-सी व्यर्थ चेष्टा है । सत्य आदि सद्गुणोंके ठहरनेके लिये भगवद्विश्वासरूपी आधारकी अत्यन्त आवश्यकता है ।

२४८५–मनुष्यको चाहिये कि वह अपना काम देखे, दूसरों-के कामोंकी नुक्ताचीनी न करे ।

२४८६–जो दूसरोंके कामोंकी आलोचनामें ही लगे रहते हैं वे अपना समय तो व्यर्थ खोते ही हैं; दोष देखनेकी उनकी आदत बन जाती है और जिनको दूसरोंमें दोष ही दीखते हैं उनके हृदयकी जलन कभी मिट ही नहीं सकती ।

२४८७–नम्रताके तीन लक्षण हैं—कड़वी बातका मीठा जवाब देना, क्रोधके अवसरपर भी चुप साधना और किसीको दण्ड देना ही पड़े तो उस समय चित्तको कोमल रखना ।

२४८८–जो मनुष्य भगवान्‌से ,कृपा और स्नेहकी आशा

रखता है उसे अपने आश्रितों और अपनेसे छोटोंपर सदा कृपा और स्नेह रखना चाहिये ।

२४८९–अच्छे मार्गसे भटके हुए लोगोंको प्रेमसे समझाकर राहपर लाओ । दुर्जनोंके सुधारके लिये भी कोमल व्यवहार कठोर दण्डसे बढ़कर उपयोगी है ।

२४९०–याद रक्खो, मनुष्य-जीवनकी सच्ची सफलता भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करनेमें ही है ।

२४९१–भगवत्प्रेमकी प्राप्ति किसी भी साधनसे नहीं हो सकती। यह तभी मिलता है जब भगवान् स्वयं कृपा करके देते हैं ।

२४९२–भगवान्‌की कृपा सभीपर है, परन्तु उस कृपाके तब-तक दर्शन नहीं होते जबतक मनुष्य उसपर विश्वास नहीं करता और भगवत्कृपाके सामने लौकिक-पारलौकिक सारे भोगों और साधनों-को तुच्छ नहीं समझ लेता । परन्तु ऐसे विश्वासकी प्राप्ति और सबको तुच्छ समझनेकी स्थिति भी भगवत्-कृपासे ही प्राप्त हो सकती है ।

२४९३–इसलिये भगवत्कृपाकी, एकमात्र भगवत्कृपाकी ही बाट देखते हुए भगवान्‌का भजन करो ।

२४९४–मनके दोष, मनकी चञ्चलता, विषयोंमें आसक्ति आदि न मिटें तो निराश मत होओ, भजनके बलसे सब दोष अपने-आप दूर हो जायँगे ।

२४९५–जो मनुष्य भजन न करके दोषरहित होनेकी चेष्टा करता है और दोषोंके रहते अपनेको भगवत्कृपाका अनधिकारी मानता है वह तार्किकोंकी दृष्टिमें बुद्धिमान् होनेपर भी वस्तुतः भगवान्‌की

अनन्त शक्तिमयी सहज कृपाकी अवहेलना करनेका अपराध ही करता है।

२४९६—जहाँतक वन सके, वाहरके पापोंसे विल्कुल वचकर भगवान्‌का भजन करो। जीवन वहुत थोड़ा है, विचारोंमें ही विता दोगे तो भजनसे वञ्चित रह जाओगे।

२४९७—भजन मन, वचन और तन तीनोंसे ही करना चाहिये। भगवान्‌का चिन्तन मनका भजन है, नाम-गुण-गान वचन-का भजन है और भगवद्भावसे की हुई जीव-सेवा तनका भजन है।

२४९८—भजन सर्वोत्तम वही है कि जिसमें कोई शर्त न हो, जो केवल भजनके लिये ही हो।

२४९९—तन-मनसे भजन न वन पड़े तो केवल वचनसे ही भजन करना चाहिये। भजनमें स्वयं ऐसी शक्ति है कि जिसके प्रतापसे आगे चलकर अपने-आप ही सव कुछ भजनमय हो जाता है।

२५००—और भजनमें आजकलके दुर्वल प्रकृतिके नर-नारियों-के लिये सवसे अधिक उपयोगी और लाभदायक है—भगवान्‌के नाम-का जप और कीर्तन! वस, जप और कीर्तनपर विश्वास करके नामकी शरण ले लो, नाम अपनी शक्तिसे अपने-आप ही तुम्हें अपना लेगा। और नाम-नामीमें अभेद है, इसलिये नामके द्वारा अपनाये जाकर नामी भगवान्‌के द्वारा तुम सहज ही अपनाये जाओगे। याद रक्खो, जिसको भगवान्‌ने अपना लिया, उसीका जन्म और जीवन सफल है, धन्य है!

संत और संत-वाणीकी जय-जय!